

LIB. G. K. V.



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय



विषय संख्या

पुस्तक संख्या

आगत पंजिका संख्या

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना
वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय
तक पुस्तक अपने पास न रखें।

112823

R
-20
प्र ८८ स
आ. 38 व. 1
38-2

34-8-17

यस पुस्तक वितरित न का जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

सक मासिक १९८४-१९८५

gh



विविध विषय-विभूषित सचित्र मासिक पत्रिका



112823

इस पत्रिका में

हाइट पेपर और पार्लियामेंटरी डिबेट—पंडित हृदयनाथ कुंजरू
 हिन्दू धर्म और हरिजन—मुंशी ईश्वरशरण
 बिदेश में भारतीयों से मेरी भेंट—सेंट निहालसिंह
 नया विवाह (कहानी)—मुंशी प्रेमचन्द
 आत्म-निवेदन—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

पुस्तकालय
 परकुल कांगड़ी

● ग्रन्थे शानाह मुक्ति: ●

पुस्तक सं०.....	२२०
भागत सं०.....	२४६९
तिथि.....	

मुख्य कुल ग्रन्थालय कांगड़ी.



इंस्ट्रिप्शन प्रेस, लिमिटेड

संख्या ४

बालों का जीवन यानी कामिनिया आईल (रजिस्टर्ड)

ईश्वर ने मनुष्यों को जो बाल दिये हैं, वे कुछ बेकार नहीं हैं, बल्कि उनकी देख-भाल करने की आवश्यकता रहती है। बालों की देख-भाल करने के लिए बहुत से लोग तेल इस्तेमाल करते हैं। परन्तु उनको यह ख्याल नहीं रहता कि कौन सा तेल फायदा पहुँचाने की ताकत रखता है। जिस तेल में बालों को खुराक पहुँचाने का तत्त्व नहीं है ऐसे तेल बजाय फायदा के नुकसान पहुँचा देते हैं, इसलिए ऐसा निकृष्ट तेल बिना भरोसे का कदापि इस्तेमाल न करना चाहिए। बल्कि जगत्-प्रसिद्ध

कामिनिया आईल (रजिस्टर्ड)

इस्तेमाल करें जो कि बालों की जड़ को पोषण देकर बाल को उगाने में मदद देता है। यह अमूल्य वनस्पतियुक्त तत्व से तैयार किया हुआ अत्यन्त उमदा व दिलखुश तेल है। बाल, दिमाग के लिए इससे सुफीद दूसरा तेल तलाश करने पर भी आपको न मिलेगा। लाखों आदमी हमेशा इस्तेमाल करते हैं। आप भी आज ही मँगकर आजमाइश कर लें।

मूल्य प्रति शीशी १) रु० डाक-व्यय ॥=)

२) तीन शीशी २॥=) डाक-व्यय १)

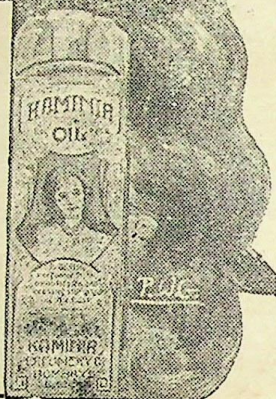
कामिनिया

आईल

(रजिस्टर्ड)

बालों का

जीवन है



ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

पूर्वीय देशों का एक सुप्रसिद्ध सुगन्धित तोहफ़ा

इसके चन्द बूँद अपने रुमाल पर छिड़क लीजिए, फिर इसकी आकर्षक सुगन्धि आपका पीछा न छोड़ेगी! इसमें ताजे फूलों की मीठी खुशबू वहक वहक रहती है!

इस सुन्दर मनोमोहक सुगन्ध की एक बार एक शीशी मँगवा कर आप परीक्षा करें, फिर तो आप इसे हमेशा अपने पास रखेंगे, और दूसरे इत्र का नाम न लेंगे।

मूल्य १/२ शी० २) रु०, पाव शी० १॥) रु०, १ ड्राम शीशी ३॥) आ०, १/२ ड्राम शी० ४॥) आ०, खुशबूदार कार्ड ॥=) दर्जन, डाक-व्यय अलग।



OTTO DILBAHAR

केवल दो आने का टिकट आने पर नमूना शी० मुफ्त भेजी जाती है।

कामिनिया हाईट रोज़ सोप (रजिस्टर्ड)

इस साबुन को बदन में लगाते ही गुलाब की मधुर खुशबू से तबीयत बाग़ बाग़ हो जाती है। एक बार अवश्य आजमाइश करें।

मूल्य प्रति बट्टी १- ३ बट्टी का बक्स ॥=) डा० खर्च अलग।

सोल एजेन्टः—

दिलबहार सोप (रजिस्टर्ड)

यह एक अजीब किस्म का साबुन बदन में लगाते ही, मोगरा, चमेली की मनोमोहक खुशबू से तबीयत सुग्घ हो जाती है। एक बार अवश्य आजमाइश करें।

मूल्य प्रति बट्टी १- ३ बट्टी का बक्स ॥=) डा० खर्च अलग।

दी एंग्लो इन्डियन ड्रग एण्ड केमिकल कम्पनी, २८५, जुमा मसजिद मार्केट, बम्बई नं० २।

प्रकाशित हो गया ।

३४-२

क्या ?

‘प्रेमा’ का करुण-रसाङ्क

इसके सम्पादक हैं—

श्री० पं० केशवप्रसाद पाठक, बी० ए०

यह अंक ‘प्रेमा’ के अब तक प्रकाशित प्रायः सभी विशेषाङ्कों से मौलिक और उपयोगी है । इसे जब जिसने जैसे देखा मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है । छपाई-सफाई और इटिल के चित्र में जो आकर्षण है वह बहुत कम विशेषाङ्कों में मिलेगा ।

इसमें हिन्दी के सभी धुरन्धर कवियों और लेखकों की मधुर और उपयोगी रचनाओं का संकलन है । इसमें करुण-रस के सभी अंगों पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला गया है । इसके सम्पादक स्वयं एक भावुक कवि हैं इसलिए कविताओं के संकलन में अपनी एक नई विशेषता है । विशेषाङ्क धड़ाधड़ विक रहा है । आप भी शीघ्र ही आर्डर दीजिए नहीं तो पछताना पड़ेगा । कीमत १), प्रेमा के ग्राहकों को मुक्त । ४॥) भेजकर वर्ष भर के ग्राहक बन जाइए ।

जिसका आपको इन्तज़ार था वही

“उमर खैयाम”

पुस्तकाकार में छप गया ।

(अनुवादक, पं० केशवप्रसाद पाठक, बी० ए०)

इस पुस्तक के एक एक शब्द में जादू का असर है । पढ़ते जाइए, अपने आप याद होता जायगा । लगभग एक दर्जन मनोमोहक चित्रों ने पुस्तक को चमका दिया है । चित्र क्या हैं—चित्रकार ने हृदय निकाल कर रख दिया है । पुस्तक हाथ में लेकर बिना पूरी पढ़े जी न मानेगा । छपाई और सज-धज में पुस्तक अपनी सानी नहीं रखती । शीघ्र आर्डर दीजिए, नहीं तो वही मसल होगी—“अब पछताये होत का चिड़िया चुग गई खेत” । विलम्ब करने से पछताना पड़ेगा । कीमत ४) चार रुपये ।

मैनेजर—प्रेमा, इंडियन प्रेस, लि०, जबलपुर

डाबर (डा: एस, के, बम्पन) लि:

५० वर्षों से सुप्रसिद्ध अतुल्य देशी पेटेन्ट दवाओं का बृहत् कार्यालय !

“पुदीना-हरा” (Regd.)

(अर्क पुदीना)



बच्चों के उदर

विकार में !

स्टार ट्रेड मार्क

यह हरी पत्तियों से बना है। अजीर्ण, वायु, पेटदर्द आदि बादी के लक्षण इससे शीघ्र मिटते हैं। बच्चों के अजीर्ण, व दूध की उल्टी को दूर करने में इससे बढ़कर दूसरी दवा नहीं है।

बाजारू अन्य पुदीने के अर्क से यह कहीं अधिक गुणकारी है। मूल्य बड़ी शीशी ॥=) चौदह आने। छोटी शीशी ॥=) दस आने। डा० म० ॥=)। नमूने की शीशी ॥=) तीन आने। जो एजेंटों से ही मिल सकती है।

(विभाग नं० १८) पोस्टवक्स नं० ५५४, कलकत्ता

एजेंट:—इलाहाबाद (चौक में) मेसर्स श्यामकिशोर दुवे।

यदि आप हिन्दू-संस्कृति का सच्चा स्वरूप जानना चाहते हैं तो आज ही हमारे यहाँ से प्रकाशित

सचित्र हिन्दी-महाभारत

की ग्राहक-श्रेणी में अपना नाम लिखा लीजिए। इससे आप तथा आपके स्त्री-बच्चों का मनोरञ्जन तो होगा ही साथ ही आपकी ज्ञान-वृद्धि भी होगी। सबसे बढ़कर लाभ यह होगा कि इसके अनुशीलन से आपके परिवार में सदाचार और सद्भावनाओं की वृद्धि होगी। हमारा महाभारत लाखों हाथों में पहुँच चुका है। तमाम भारत में दिनोंदिन इसका प्रचार बढ़ता जा रहा है। इसकी सरसता, सरलता और रोचकता ने हर एक को मोहित कर लिया है। प्रत्येक अङ्क का मूल्य १।), स्थायी ग्राहकों से केवल १।)

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

हिन्दी-प्रेमियों के लिए विशेष सुविधा

हमारे यहाँ की सभी विषयों की समस्त पुस्तकें आपको नीचे लिखे स्थानों से हमारे यहाँ के नियमों के अनुसार ही मिल सकेंगी।

१—हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग-हाउस, चौक, बनारस।

२—इंडियन प्रेस, लि०, ब्रांच, जबलपुर।

३—सिटी बुक हाउस, मेस्टन रोड, कानपुर।

४—इंडियन पब्लिशिंग-हाउस, २२११ कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता।

५—बिहार पब्लिशिंग-हाउस, चौहट्टा, पटना।

६—आगरा पब्लिशिंग-हाउस, आगरा।

७—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, गनपत रोड, अनारकली, लाहौर।

८—इंडियन प्रेस, लि०, १२६/१ए, बहू बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता।

९—फ्रेंड्स ब्रदर्स, चांदनी चौक, दिल्ली।

१०—दत्त ब्रदर्स, बुकसेलर, अजमेर।

निवेदक—इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

श्रीस्वामी सन्तदास बाबाजी ब्रज-विदेही
महन्त-प्रणीत

तीन आध्यात्मिक पुस्तकें

१—वेदान्तदर्शन—(श्रीनिम्बार्काचार्यकृत वेदान्त-पारिजात-सौरभ नामक भाष्य-सहित) इस पुस्तक में द्वैताद्वैत-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इसमें प्रत्येक सूत्र के नीचे संस्कृतभाष्य है और उसके नीचे हिन्दी में विस्तृत व्याख्या है। मूल्य ४)

२—गुरु-शिष्य-संवाद—इस पुस्तक में दर्शन-शास्त्र के गूढ़ प्रश्नों पर बड़ी सरलता के साथ प्रकाश डाला गया है। मूल्य १।)

३—श्रीस्वामी रामदास काठिया बाबाजी—इस पुस्तक में एक महारामा की जीवनी का विवरण है। इसे पढ़ने से हृदय में अनायास ही आध्यात्मिक भावों का सञ्चार होता है। मूल्य १।)

मैनेजर (बुकडिपो),

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

द्विवेदी-अभिनन्दन ग्रंथ

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के समानार्थ उनकी सत्तरवीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने इस ग्रंथ के प्रकाशन का आयोजन किया है।

ग्रंथ का बहिरंग और अंतरंग दोनों ही बहुत उच्च कोटि के हुए हैं। महात्मा गांधी आदि महापुरुषों की सद्भावनाएँ तथा देश एवं विदेश के अनेकानेक विद्वानों के उत्तमोत्तम निबंध इसमें हैं। कितनी ही सुंदर कविताएँ भी हैं। बड़े बड़े कलाशिल्पियों के तीस पैंतिस रंगीन चित्र हैं। कागज दिव्य; छपाई दो रंगों में; सुनहरी रेशमी जिल्द। आकार ११" × ८"; पृष्ठ-संख्या २२० से ऊपर।

जो सज्जन ३०) सभा के पास कास-चेक अथवा मनीऑर्डर-द्वारा भेज देंगे वे ग्रंथ के प्रतिष्ठापक बना लिए जायेंगे। प्रत्येक प्रतिष्ठापक को अभिनन्दन ग्रंथ की एक प्रति भेंट दी जायगी। इन भेंट की प्रतियों की जिल्दबंदी विशिष्ट रूप से की जायगी। प्रतिष्ठापक-वर्ग की संख्या ढाई सौ से अधिक न होगी।

ग्रंथ का मूल्य १५, तथा डाकव्यय आदि अलग।

विक्रयार्थ ग्रंथ की केवल एक हजार प्रतियाँ छपी हैं और इसका पुनर्मुद्रण न होगा।

मिलने का पता—मंत्री, नागरी-प्रचारिणी सभा, बनारस सिटी।

सरस्वती के नियम

१०—पुरस्कार के योग्य लेखों पर लेखकों को यदि वे स्वीकार करेंगे, तो नियमानुसार पुरस्कार भी दिया जायगा।

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

सरस्वती के विज्ञापन-छपाई के रेट

२—डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मूल्य ६॥) है इसका वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक वा जुलाई से जून तक समझा जाता है बीच में ग्राहक होनेवालों को पूरे वर्ष की संख्यायें दी जाती हैं प्रतिसंख्या का मूल्य ॥=) है भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८), छः महीने का ४) और प्रतिसंख्या का ॥=) है बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य १) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ साफ लिख कर भेजना चाहिए, जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास की सरस्वती न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। अगर पता न लगे तो डाकघर से जो उत्तर आवे उसे हमारे पास जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके—अगले महीने की १५ तारीख तक भेजें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जायगा; चाहे वे अगले महीने की १५ ता० के भीतर ही आवें। उन्हें संख्या मूल्य ही पर मिलेगी। सरस्वती यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँच कर रवाना की जाती है। अतएव इस विषय में पहले डाकघर से ही पूछताछ करना अच्छा होगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र “सम्पादक सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग,” के पते से भेजने चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र “मैनेजर सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद”, के पते से आने चाहिए।

७—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने का तथा उसे लौटाने वा न लौटाने का भी अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने-बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंजूर करें उनका डाक और रजिस्टरी खर्च लेखक के जिम्मे होगा। बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा।

८—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक वा अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं।

९—जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे। यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो दिया जायगा।

कवर का दूसरा पृष्ठ ...	...	३६) प्रतिमास
” ” ” एक कालम ...	...	२१) ”
” ” तीसरा पृष्ठ ...	...	३६) ”
” ” ” एक कालम ...	...	२१) ”
” ” चौथा पृष्ठ ...	...	४८) ”
” ” ” एक कालम ...	...	२४) ”
पाठ्य विषय की समाप्ति के सामनेवाला पृष्ठ ३०)	...	”
” ” ” ” ” एक कालम १८)	...	”
कवर के द्वितीय पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ ३०)	...	”
” ” ” ” ” एक कालम १८)	...	”
कवर के तीसरे पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ ३०)	...	”
” ” ” एक कालम १८)	...	”
रङ्गीन चित्र से पहलेवाला पृष्ठ ...	...	३०) ”
” ” ” ” ” एक कालम १८)	...	”

साधारण नियम ये हैं:—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई ...	...	२४) प्रतिमास
$\frac{1}{2}$ ” या १ ” ” ” ...	...	१३) ”
$\frac{1}{4}$ ” या $\frac{1}{2}$ ” ” ” ...	...	७) ”
$\frac{1}{8}$ ” या $\frac{1}{4}$ ” ” ” ...	...	४) ”

१—“सरस्वती” में अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते, अतः कुरुचि-पूर्ण विज्ञापन न भेजिए।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवालों को सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है, औरों को नहीं।

३—छपाई के रेट जो ऊपर दिये हैं वे अकाव्य (FINAL) हैं। इनके लिए लिखा-पढ़ी करना व्यर्थ है।

४—जितने समय तक के लिए कन्ट्रैक्ट किया गया है, उतने समय तक विज्ञापन छपाना होगा। विज्ञापन न छपाने पर भी उसका चार्ज विज्ञापक को देना होगा।

पत्र-व्यवहार करने का पता—

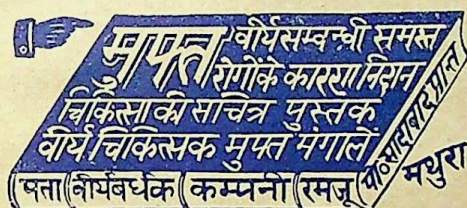
मैनेजर, विज्ञापन-विभाग,
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

शक्ति का खजाना यानी पृथ्वी पर का अमृत

मदन मंजरी

ये दिव्य गोलियाँ दस्त साफ़ लाती हैं, वीर्य-विकार-
संबंधी तमाम शिकायतें नष्ट करती हैं और मानसिक व
शारीरिक प्रत्येक प्रकार की कमजोरी को दूर करके नया
जीवन देती हैं। की० गोली ४० की डिब्बी १ का १)
बंबई ब्रांच:— राजवैद्य नारायणजी केशवजी।
३६३ कालबा { हेड ऑफिस जामनगर (काठियावाड़)
देवी रोड

इलाहाबाद के एजेंट:—युनाइटेड स्टोर्स, चौक
देहली के एजेंट—जमुनादास कं० चौदनी चौक



Prevention is Better than Cure

Read the Useful Popular Books and
Guard Your Health

Indigestion and Constipation	(410 p.)	Rs. 2-0
Constipation	... (92 p.)	As. 12
Personal Hygiene	... (340 p.)	Re. 1-8
Diet of the Indians	... (100 p.)	As. 8
Right Breathing	... (84 p.)	As. 7
Care of the Teeth	... (72 p.)	As. 4
Care of the Eyes	... (148 p.)	As. 12
Care of the Nose	... (52 p.)	As. 4
Care of the Ear	... (32 p.)	As. 3
Tree of Lust	... (a picture)	As. 2
Chart of Lust	...	A. 1

Postage and U.-P. Charges Extra.

Apply to—J. C. BASAK

P. O. Dayal Bagh (Agra).

मुहागरात

लेखक—पण्डित कृष्णकान्त मालवीय

बहुओं को सीख देने के लिए अपने
ढङ्ग की अनोखी पुस्तक है। आज ही
मँगाकर देखिए। मूल्य ४) चार रु० मात्र।
मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड

प्रधान कार्यालय:—नेशनल इंश्योरेंस बिल्डिंग

७, कौंसिल हाउस स्ट्रीट, कलकत्ता

फोन नं० ५७२६ और ५७२७

सन् १९३२ में १,५५,६१,७२०) का नया काम हुआ। प्रोपोजल में प्राप्त हुआ धन—
१,६६,७०,०००)। पालिसी-होल्डर के लिए ज़िन्दगी का बीमा ही उसकी बचत की जमानत है।

ज़िन्दगी का बीमा ही कमानेवाले के न रहने पर विधवा और बच्चों का सहारा है।

पालिसी होल्डरों को दिया गया १,००,००,०००

कम्पनी का मूल धन १,६०,८००,०००

आग और खतरे का बीमा-नेशनल फायर और जेनरल इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड से कराइए,

एस० एन० दास गुप्ता, एम० ए०, चीफ एजेंट

इलाहाबाद सर्किल, नं० ३ क्लाइ रोड, इलाहाबाद।

आर० जी० दास और कं०

मैनेजर

मनुष्य-मात्र के लिए उपयोगी पुस्तक आरोग्यप्रकाश

ग्रन्थ का प्रत्येक अक्षर मूल्यवान् है। एक एक बात हजारों रुपयों का काम देगी। कसरत, भोजन, जलवायु, आहार आदि विषयों को पढ़ के निरन्तर बीमार रहनेवाला रोगी भी बिना किसी दवा के निराग हो जायगा। प्रत्येक रोग का कारण, चिकित्सा, पथ्य आदि सरल भाषा में ऐसे अनुभवसिद्ध लिखे हैं कि मामूली पढ़ा लिखा भी वैद्य-बन सकता है। सुन्दर छपाई एन्टिक कागज ३२० पृष्ठ की पुस्तक की कीमत सिर्फ १), सुनहरी जिल्द १।), डा० खर्च १।३। (३ पुस्तकों का डा० खर्च १।२।)

पता—श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन,
पो० बक्स ६८३५, कलकत्ता
(नोट—बुकसेलरों को काफ़ी कमीशन दिया जायगा)

बालकों के काम की चार पुस्तकें

बाल-रघुवंश	॥)	बाल-रवीन्द्रनाथ	॥)
युधिष्ठिर	१।)	प्रह्लाद	१।)

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

शास्त्रीय हिन्दी हार्मोनियम गाईड

बाजे की पेटी बजाने को सिखलानेवाली पुस्तक, ४० रागों के आरोह अवरोह, लक्षण, स्वरूप, विस्तार, १०४ प्रसिद्ध गायनों के स्वरतालयुक्त नोटेशन, सुरावर्त, तिल्लाने इत्यादि पूरी जानकारी-सहित, द्वितीय आवृत्ति, पृष्ठ-संख्या २००, कीमत १।॥ रुपया, डाक-खर्च १।२। विषयों का और गायनों का सूचीपत्र मुफ़्त मंगाइए।

गोपाल सखाराम एण्ड कम्पनी

भाटिया महाजन बाड़ी के सामने ३९७-९९

कालबादेवो रोड, बंबई नं० २

बालकों के विद्यासागर

महामहोपाध्याय पंडित हरनारायण शास्त्री,
प्रोफ़ेसर हिन्दू कालेज, दिल्ली की सम्मति—

‘बाल-रवीन्द्रनाथ’ आदि उत्तम पुस्तकों के रचयिता श्रीयुत यामिनीकान्त सोम-द्वारा रचित ‘बालकों के विद्यासागर’ नामक बँगला पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद मैंने देखा। पुस्तक बहुत अच्छे ढङ्ग से लिखी गई है। इस पुस्तक में इस युग के महापुरुष श्रीविद्यासागरजी का जीवन-चरित्र बड़े सरल और मार्मिक शब्दों में लिखा गया है। इस पुस्तक से बालकों के हृदय-पटल पर गम्भीर प्रभाव पड़ सकता है और वे अपने जीवन को आदर्श बनाने का प्रयत्न कर सकते हैं। इस प्रकार की पुस्तकें बालकों के लिये नितान्त उपयोगी हैं। मूल पुस्तक लिखनेवाले और हिन्दी में परिमार्जित ढङ्ग से अनुवाद करने वाले, दोनों ही विद्वानों ने छोटे बालकों के लिए बहुत उपकार किया है। मैं इस पुस्तक का प्रचार हृदय से चाहता हूँ। मूल्य सचित्र पुस्तक का ॥) आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

कफ, खाँसो, जुकाम
और गले के सब
प्रकार के रोगों से
अपने को बचाइए—

पिनोलेट

की गोलियाँ

आपके गले तथा फेफड़े के
सब रोगों को दूर करती
हैं। ये बड़ी ही खूबी
और सफाई के साथ
रोगों को दूर करती हैं।
छोटे बच्चों को भी दी जा
सकती हैं।

नमूना मुक्त
मँगाइए।

पाचन-शक्ति और ताकत
बढ़ाने के लिए विटामिन
मिला हुआ काडलिवर
आयल का बना—

कैरे-माल्ट

इस्तेमाल कीजिए। शरीर में शक्ति
और स्फूर्ति पैदा करने के लिए यह
ओषधि अद्वितीय है।

दुर्बलता, रक्त की कमी, क्षीणता
आदि रोगों में यह ओषधि अपूर्व
चमत्कार दिखाती है। इसमें काड-
लिवर आयल अधिक परिमाण में
होते हुए भी इस बात का ज़रा भी
पता नहीं लगता और सब लोग
बड़ी रुचि से इसको पी लेते हैं।

विटामिनमिश्रित स्वादिष्ट पदार्थ

रे-माल्ट

(विटामिन ए, बी, सी और डी युक्त)

छूत के रोगों से दूर रखता है।
बच्चों की हड्डियों को बढ़ाता
है तथा उनके पुष्ट होने में
मदद करता है।

माताओं के लिए अमूल्य
ओषधि है।
कमज़ोर तथा थके हुए शरीर में
स्फूर्ति तथा शक्ति प्रदान करता है।

अधिक परिश्रम या चिन्ता के समय रे-माल्ट अवश्य
व्यवहार में लाना चाहिए। पढ़नेवाले बच्चों को तो
नित्य ही देना चाहिए। इसमें चर्बी ज़रा भी
नहीं होती।

बङ्गाल केमिकल ऐण्ड फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स, लिमिटेड,
कलकत्ता

सूर-सुषमा

(सम्पादक श्रीयुत नन्ददुलारे वाजपेयी, एम० ए०)

इस पुस्तक में भक्तशिरोमणि सूरदास जी के चुने हुए १५१ पदों का संग्रह है। यह संग्रह स्वर्गीय रत्नाकर जी द्वारा सम्पादित सूरसागर के आधार पर विद्यार्थियों के उपयोग के लिए किया गया है। पुस्तक के अन्त में टिप्पणी भी दी हुई है, जिसकी सहायता से विद्यार्थी बड़ा लाभ उठा सकते हैं। मूल्य १) एक रुपया।

छप गई !

छप गई !!

जजवाते विस्मिल

(उर्दू)

प्रयाग के सुप्रसिद्ध उर्दू-कवि

श्रीयुत 'विस्मिल'

की चुनी हुई कविताओं का संग्रह

भूमिका-लेखक

लाहौर हाईकोर्ट के जज

माननीय जस्टिस सर अब्दुल कादिर

इस संग्रह में 'विस्मिल' साहब की सुप्रसिद्ध रचनायें 'रुवाईयात फिलसफाये हस्ती', सरस और भावपूर्ण गजलें, महात्मा गान्धी, पं० मोतीलालजी और पं० जवाहरलालजी आदि के सम्बन्ध में उत्तमोत्तम राष्ट्रीय और व्यङ्ग्य कवितायें प्रकाशित की गई हैं। यह संग्रह सचित्र प्रकाशित होगया है।

मूल्य ४।। साढ़े चार रुपया।

मैनेजर (बुकडिपो),

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

सबके लिए

शक्ति और स्फूर्ति से भरपूर

स्वादिष्ट

भंडु द्राक्षासव

विशेषकर स्त्रियों के लिए

विना विलम्ब सेवन कीजिए

तन्दुरुस्ती और ताकत से भरपूर

प्रदरादि रोगों की
अक्सीर दवा

भंडु अशोकारिष्ट

स्त्रियों की निर्बलता में स्थायी प्रभाव डालनेवाला
—हर एक घर में रहना चाहिए—

सच्ची शक्ति के संग्रह के लिए

भंडु की सुवर्ण मिश्रित

मकरध्वजगुटी

—शक्ति की सर्वोत्तम दवा—
फौरन व्यवहार कीजिए
—तोला एक का ८ रु०—

भंडु फार्मास्युटिकल वर्क्स लि०—बम्बई नं० १४

इलाहाबाद के एजेन्ट—एल० एम० धोलकिया एण्ड ब्रादर्स, ४६ जान्स्टनगंज ।
लखनऊ के एजेन्ट—यशवन्तराय नारायणदास, क्वेमर बिल्डिंग, श्रीरामरोड ।
बिलासपुर के एजेन्ट—कविराज रवीन्द्रनाथ वैद्यशास्त्री ।
दिल्ली के एजेन्ट—कान्तिबाल आर परीख, चाँदनी चौक ।
कानपुर के एजेन्ट—मोहनलाल आर० परीख, ३६।३५ मेस्टन रोड ।
लाहौर के एजेन्ट—वी० योगेन्द्र एण्ड कम्पनी, २२ अनारकली ।

सन्तान का राहु

सूखिया मसान

सन्तान का भयंकर शत्रु सूखा रोग असंख्य घरों के लालों को कोस कोस कर मार डालता है। इस रोग को जीतने के लिए और असंख्य बालकों की प्राण-रक्षा के लिए कविबिनाद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा-वैद्य की आविष्कृत आश्चर्यजनक लाभ करनेवाली जादू के प्रभाववाली चमत्कारिक निम्नलिखित ओषधियों का प्रयोग करें।

फूलो फलो

इस दुष्ट रोग को उत्पन्न करनेवाले तथा बालक की प्राण-शक्ति को चूसनेवाले कृमियों को जादू की तरह शरीर के रोमछिद्रों में से बाहर निकाल देनेवाली यह ओषधि संसार में एक चमत्कार है। वर्षों की अनुभूत है और प्रसिद्धि पा चुकी है। मूल्य १)

सूखा हरा

फूलो फलो के सेवन के पश्चात् इस ओषधि का सेवन शीघ्र बल देता है। यह ओषधि बालकों के सूखा रोग के लिए रामबाण है, ज्वर, उष्णता, दाह, अपाचन इत्यादि को लाभदायक है। मूल्य १)

पत्र तथा तार का पता:—अमृतधारा ११, लाहौर

विज्ञापक:—मैनेजर, अमृतधारा औषधालय, अमृतधारा भवन, अमृतधारा सड़क, अमृतधारा डाकखाना, लाहौर।

सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा

सुधासिन्धु—

अचानक आक्रमण करनेवाली हैजा, प्लेग, इन्फ्लूएन्जा जैसी बीमारियों में और संग्रहणी, अतिसार, शूल, वमन, श्वास, खाँसी आदि दुखदायी रोगों में जादू का काम करता है। मू० ॥) प्रति शी०।

बालसुधा—

चिड़चिड़ाते दुबले-पतले और प्रतिदिन क्षीण होनेवाले बच्चों को पिलाइए। उनकी शिकायतें दूर होंगी और वे दिन-दिन मोटे-ताजे होंगे। मूल्य ॥) प्रतिशीशी।

दद्रुगजकेसरी—

दाद एक ऐसा विषैला रोग है जो सारे शरीर में फैलकर उसे गन्दा और कुरूप बना देता है। परन्तु दद्रुगजकेसरी उसे जड़ से नष्ट कर देता है। जलन या तकलीफ बिलकुल नहीं होती। मूल्य १) प्र० शी०।

द्राक्षासव

क्षय, श्वास, कास, अरुचि, मन्दाग्नि और अनिद्रा को दूर कर शरीर को पुष्ट, चेहरे को सुर्ख बनाता है, बीमारी के बाद की स्नायविक दुर्बलता को नष्ट करता है तथा थके हुए मस्तिष्क को शान्ति प्रदान करता है। गर्भिणी तथा प्रसूता स्त्रियों के लिए यह टानिक है और बालक, वृद्ध, युवा सबके लिए एक-समान हितकारी है। मूल्य छोटी बोतल १), बड़ी २)

च्यवनप्रास

नष्ट हुई शक्तियों को पुनरुज्जीवित करता है, शरीर में नया खून, नया जोश भरता है और क्षय, खाँसी, श्वास जैसी घातक बीमारियों से मनुष्य को सुरक्षित रखता है। मूल्य बीस तोले का १।)

पुस्तक-प्रेमियों के लिए अपूर्व सुविधा

आपके जब कभी किसी भी विषय की पुस्तकों की आवश्यकता हो तो हमसे पत्र-व्यवहार कीजिए। हमारे यहाँ नीचे लिखे स्थानों की पुस्तकें हर समय तैयार रहती हैं।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड

चाँद कार्यालय

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

हिन्दी-पुस्तक-एजेंसी

नागरी-प्रचारिणी सभा

लहरी पुस्तकालय

साहित्य-भवन

सस्ता-साहित्य-मंडल

गङ्गा-पुस्तक-माला

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर

हिन्दी-मन्दिर

हिन्दी-भवन आदि आदि

की वालोपयोगी, स्त्रियोपयोगी, राजनैतिक, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि उत्तमोत्तम पुस्तकें एक ही स्थान से मँगा अपने समय और पोस्ट का हानि से बचिए। हमारे यहाँ स्कूली पुस्तकें तथा लाइब्रेरियों के लिए स्वीकृत पुस्तकें भी हर समय मिलेंगी। इस पर कमीशन भी प्रत्येक खरीदार को दिया जाता है। एक बार परीक्षा कीजिए।

निवेदक—देवेन्द्रचन्द्र विद्याभास्कर, प्रोफाइटर

विद्याभास्कर-बुकडिपो, बनारस-सिटी

दुखी भारत

(स्वर्गीय लाला लाजपतराय)

यह पुस्तक पढ़कर आप केवल भारत के स्वतन्त्रता-सङ्ग्राम में ही आगे न बढ़ेंगे, बल्कि संसार की विजय के लिए आपके हाथ में एक अमोघ अस्त्र आ जायगा। लालाजी की इस कृति ने सारे योरप में तहलका मचा दिया है। मूल्य ५) पाँच रुपये।

विदेश की बात

[श्रीयुत कृपानाथ मिश्र]

इस पुस्तक में योरप-यात्रा का वर्णन बहुत ही रोचक ढङ्ग से किया गया है। विद्वान् लेखक ने योरप के प्रायः सभी मुख्य मुख्य देशों में घूम कर जो कुछ देखा और अनुभव किया है, वही इसमें लिखा है। पुस्तक सचित्र है। मूल्य १।) सवा रुपया।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

चूल्हे में जावे धन

जिसके कमाने में इतने कष्ट भोगे, दिन-रात एक कर दिया, उसके आनन्द भोगने के समय

“स्वास्थ्य”

ही बिगड़ गया। सच है “स्वास्थ्य” के बिना संसार का कुल ऐश्वर्य ही निकम्मा है। कारोवारी दिमागी काम करनेवालों का पुरुषत्व मारा जाता है, इससे उनकी दीन-दुनिया खराब हो जाती है।

गुप्त रोगों में ग्रसित पुरुषो !

निराश न हो। यदि अब भी अपना जीवन आनन्द से विताना चाहते हो, और मेहनत से कमाये हुए धन को भोगना चाहते हो, तो भारत के प्रसिद्ध वैद्य, लाहौर-निवासी कविविनेद वैद्यभूषण पंडित ठाकुरदत्त शर्मा से चिकित्सा करवा लो। चिकित्सा-नियम, पत्र आने पर मुफ्त भेजा जाता है।

निवेदक—मैनेजर ‘अमृतधारा’, ११, लाहौर

कौमुदी

(कविताओं का संग्रह)

लेखक—श्री बालकृष्णराव

(‘लीडर’-सम्पादक श्रीयुत सी० वाई०

चिन्तामणिजी के आत्मज)

सम्मत—

मूल्य केवल ॥१॥ आने

हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान्, काशी-विश्वविद्यालय के रत्न, आचार्य रामचन्द्रजी शुक्ल लिखते हैं—

“श्री बालकृष्णराव की काव्य-कला का मधुर प्रकाश ‘कौमुदी’ में देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। संगृहीत-कवितायें यद्यपि छोटी छोटी हैं पर हृदय में चुभनेवाली हैं। सबसे अधिक आश्चर्य और आनन्द यह जानकर होता है कि मद्रास-प्रान्तवासी होकर भी आपने हिन्दी की काव्यभाषा पर ऐसा विस्तृत अधिकार प्राप्त किया है जैसा आजकल के विरले ही नवयुवक कवियों का पाया जाता है।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

नई पुस्तक !

नई पुस्तक !!

नई पुस्तक !!!

गृह-दाह

प्रसिद्ध उपन्यासलेखक शरद् बाबू का यह विचित्र उपन्यास छप गया। इसमें दो विभिन्न प्रकृतियों के स्त्री-पुरुषों का स्वभाव चित्रित है। कथानक के मुख्य पात्र महिम और अचला हैं। महिम प्रेजुएट है और देहात का रहनेवाला है। उसकी गृहिणी अचला कलकत्ते की शिक्षित ब्राह्ममहिला है जो देहाती समाज से सर्वथा अपरिचित है। इनके विवाह के आरम्भ में सुरेश ने, जो कि मालदार घर का लड़का, डाक्टर और महिम का मित्र है, जिस कार्य का सूत्रपात किया उससे एक बार अचला का सम्बन्ध टूटकर सुरेश से लगभग सम्बद्ध हो ही चुका था कि सुरेश की जल्दबाजी और असंयतता ने बना-बनाया काम बिगाड़ दिया।

लेखक ने अचला का विवाह महिम के साथ ही कराकर, पति के साथ रहने के लिए, उसे देहात भेज दिया है। वहाँ जाने पर अचला का नागरिक मन देहाती जीवनचर्या और समाज से सन्तुष्ट नहीं हुआ। इसी बीच वहाँ मृणाल आ गई। यह हिन्दू-आचार-विचारों की भक्त है। महिम के साथ इसका निस्संकोच मिलना-जुलना देख अचला का माथा ठनका। इसी बीच सुरेश देहात में महिम के घर पहुँचा। दैवयोग से महिम और अचला के बीच कुछ अनबन हो गई। अचला ने रूठ कर, सुरेश के साथ, पिता के घर कलकत्ता जाने की तैयारी की कि रात को घर में आग लग गई। महिम ने अचला को कलकत्ते भेज दिया। वहाँ उसे सन्देह-भाजन बनकर पिता का तिरस्कार सहना पड़ा। इधर युवती मृणाल विधवा हो गई। इसी सिलसिले में महिम बीमार पड़ा। देहात से सुरेश के घर लाया जाकर उसकी चिकित्सा की गई। बीमारी के समय अचला की सेवा-शुश्रूषा से महिम उस पर अनुरक्त हो गया। इस समय मृणाल की तत्परता और उसके स्वभाव का परिचय पाकर अचला ने उससे मेल कर लिया। कुछ अच्छा होने पर महिम, पत्नी के साथ, जल-वायु-परिवर्तन करने के लिए जबलपुर को रवाना हुआ तो स्टेशन पर एकाएक सुरेश भी उनके साथ हो लिया। रास्ते में वह धोखा देकर अचला को दूसरी गाड़ी से दूसरी ओर ले भागा। दोनों में बड़ा झगड़ा हुआ। रास्ते में जहाँ उतरा वहीं बीमार पड़ गया। एक बंगाली सज्जन ने दोनों को अपने घर आश्रय दिया। चङ्गे होने पर यहाँ सुरेश ने घर लिया, गृहस्थी जमाई। घटनाक्रम से महिम भी यहाँ आ गया। सुरेश डाक्टर था, वह देहात की प्लेगप्रस्त जनता को दवा और पथ्य-पानी देने जाकर स्वयं बीमार हो गया। अचला वहाँ उस समय पहुँची जब वह अब-तब में था। चिट्ठी पाकर महिम भी आ गया। उसी ने सुरेश की मिट्टी ठिकाने लगाई।

उपन्यास में मनोविज्ञान की इतनी सामग्री है कि पाठक की बुद्धि चकरा जाती है। कभी अचला और सुरेश की निन्दा करने को जी चाहता है और कभी महिम पर गुस्सा आता है कि क्यों वह ऐसा गम्भीर बना रहा कि अचला को उसके हृदय की थाह ही नहीं मिली।

यह सामाजिक उपन्यास सब प्रकार से अनोखा है। सुन्दर सजिन्द सवा पाँच सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २॥) दो रुपये आठ आने।

पुस्तक मिलने का पता :—

मैनेजर, (बुकडिपो) इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

अयोध्या का इतिहास

(अनेक चित्रों सहित)

पृष्ठ-संख्या ३०० रायल अठपेजी, जिल्दसहित दाम ३) तीन रुपये
डाकमहसूल अलग ।

पांच वर्ष हुए इस प्रान्त के सुप्रसिद्ध विद्वान् रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए० ने अंगरेजी में अयोध्या का एक इतिहास लिखा था । यह ग्रन्थ प्रयागविश्वविद्यालय के वाइस् चान्सलर महामहोपाध्याय डाकूर गङ्गानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट्, एल-एल० डी० की अनुमति से इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज़ (Allahabad University Studies) में छपा । इसकी अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की । अनेक भाषा के पण्डित सर जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है कि यह ग्रन्थ अयोध्या के यात्रियों के लिए बड़ा उपयोगी होगा ।

सर अलक्जेंडर पिम् ने लिखा है, “आपके अनुमान सब तर्क-सिद्ध हैं” । सर रिचर्ड बर्न कहते हैं कि “आपने इस स्थान के विषय में बहुत सी रोचक बातें संगृहीत की हैं, इत्यादि । यह ग्रन्थ छोटा था, इससे कुछ विद्वानों की अनुमति से विस्तृत करके हिन्दी-भाषा में लिखा गया । और इसे हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने प्रकाशित किया । इस ग्रन्थ की भी प्रशंसा अनेक विद्वानों ने की है ।”

अयोध्या के प्रसिद्ध विद्वान् महात्मा बालकराम विनायक लिखते हैं “अयोध्या का इतिहास मिला, उसे बाँच कर चित्त प्रसन्न हो गया । उसके अध्ययन ने मेरे इस मरे हुए दिल में जान डाल दी । बड़ा हर्ष इस बात से हुआ कि आपने उसमें आत्मीयता और अपने सहज अकृत्रिम अनुराग का परिचय स्थान स्थान पर दिया है । इससे शिषितों को इस पुरी के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त होगी ।” रायबहादुर पण्डित काशीनाथजी, एम० ए० स्पेशल मैनेजर कोर्ट आफ् वार्ड्स अयोध्या लिखते हैं कि—“यह स्मारकरूपी (Monumental) ग्रन्थ है और भविष्यकाल में जो लोग इतिहास रचेंगे उनके लिए पथदर्शक होगा ।”

इस विशाल ग्रन्थ के पढ़ने से विदित होगा कि अयोध्या में सूर्यवंशी राजाओं के पीछे शिशुनागवंशी, मौर्यवंशी, शुंगवंशी, गुप्तवंशी राजा हुए थे । जैन-धर्म के आदिनाथ के अतिरिक्त चार और तीर्थंकरों का यहीं जन्म हुआ, बुद्धदेव यहाँ बहुत दिनों तक रहे । उपसंहार में सूर्यवंश की विदेह शाखा आदि चन्द्रवंश की कान्यकुब्ज शाखा आदि का वर्णन है और रघु के दिग्विजय की पूरी व्याख्या की गई है । यह ग्रन्थकर्ता के इतिहास-ज्ञान और कठिन परिश्रम का फल है । आशा है कि देश-प्रेमी इसका यथोचित आदर करेंगे ।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये तो बस "बाल-सखा" लेंगे

एक प्रति का
१५)



साल भर का
२॥)

हिन्दी में इनके लिए यही सबसे बढ़िया और सस्ता पत्र है ।

आप अपने बच्चों के हाथ में

बाल-सखा

दे दीजिए

फिर वे आपसे कुछ न माँगेंगे । इसमें ऐसी ऐसी कहानियाँ, कवितायेँ और लेख रहते हैं कि बालक बड़े चाव से पढ़ते हैं । तस्वीरों का तो कुछ कहना ही नहीं है । हँसानेवाले चुटकुले ऐसे रहते हैं कि बालक पढ़ते ही लोट-पोट हो जाते हैं । जो शिक्षा आप सैकड़ों मास्टर रखकर बच्चों को नहीं दे सकते वह उन्हें केवल बाल-सखा से मिल सकती है ।

मैनेजर बाल-सखा, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

लेख-सूची

- (१) कोयल से (कविता)—[श्रीयुत हितैषी ... १३७
- (२) ह्वाइट पेपर और पार्लियामेंटरी डिबेट—[पण्डित हृदयनाथ कुंजरू ... १३८
- (३) तेरी याद (कविता)—[श्री कुँवर हिम्मतसिंह साहित्यरञ्जन ... ५४१
- (४) नया विवाह—[मुंशी प्रेमचन्द ... १४२
- (५) उपवन (कविता)—[ठाकुर गोपालशरणसिंह ... १४१
- (६) हिन्दू-धर्म और हरिजन—[मुंशी ईश्वरशरण ... १४३
- (७) ज्योत्स्ना—[श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त ... १४८
- (८) मन से (कविता)—[श्रीयुत पद्मकान्त मालवीय ... १६३
- (९) कनाडा की सम्पत्ति और उसके साधन—[श्रीयुत सेंट निहालसिंह ... १६४
- (१०) मुझको न मिला है कभी प्यार (कविता)—[श्रीयुत जयशंकर 'प्रसाद' ... १७४
- (११) रिजर्व बैंक—[श्रीयुत मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, बी० ए० ... १७५
- (१२) प्रभात (कविता)—[श्रीयुत 'गिरीश' बी० ए० ... १७६

- (१३) विविध विषय ... १८०
- (१) यदि—[कुँवर राजेन्द्रसिंह, संयुक्तप्रान्त के भूतपूर्व कृषि-मंत्री ... १८०
- (२) प्रयाग की मनुष्य-गणना—[प्रोफेसर दयाशंकर दुवे, एम० ए० ... १८२
- (१४) गृह-देवता (कविता)—[श्रीयुत रामचरित उपाध्याय ... १८६
- (१५) विचार-विमर्श ... १८७
- (१) 'सतसई' का 'सपर'—[श्रीयुत इकबाल वर्मा 'सेहर' ... १८७
- (२) छन्दोदोष—[श्रीयुत शिवरत्न शुक्ल 'सिरस' ... १८८
- (१६) विदेश में भारतीयों से मेरी भेंट—[श्रीयुत सेंट निहालसिंह ... १९१
- (१७) खदरधारी—[पण्डित मोहनलाल नेहरू ... ६००
- (१८) चारु चयन ... ६०५
- (१९) मातृ-मण्डल—[श्रीमती जयदेवी ... ६०६
- (२०) पथ-भ्रान्त पथिक—[अनुवादक श्रीयुत सुन्दरलाल त्रिपाठी ... ६१३
- (२१) आत्म-निवेदन—[पण्डित महावीर-प्रसाद द्विवेदी ... ६१६
- (२२) सम्पादकीय टिप्पणियाँ ... ६२८

चित्र-सूची

- १—मेवाभिवादन (रङ्गीन) मुखपृष्ठ
- २—पण्डित हृदयनाथ कुंजरू ... १३८
- ३—मुंशी प्रेमचन्द ... १४२
- ४—मुंशी ईश्वरशरण ... १४३
- ५—श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त ... १४६
- ६-१२—कनाडा की सम्पत्ति और उसके साधन-सम्बन्धी ७ चित्र १६४-१७०
- १३—श्रीयुत मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव १७५

- १४—नन्दपरिवार (रङ्गीन) ... १८४
- १५—श्रीयुत सेंट निहालसिंह ... १९१
- १६—पण्डित मोहनलाल नेहरू ... ६००
- १७-२५—चारु-चयन-सम्बन्धी ९ चित्र ६०५-६०८
- २६-२९—मातृ-मण्डल-सम्बन्धी ४ चित्र ६०६-६१२
- ३०—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ... ६१६
- ३१-३२—सम्पादकीय टिप्पणियाँ-सम्बन्धी २ चित्र ... ६३०-६३१

संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर



संक्षिप्त

हिन्दी में अभी तक एक उपयुक्त कोश का बड़ा अभाव था। इस ग्रन्थ के प्रकाशित हो जाने से उस भारी अभाव की पूर्ति हो गई है। इसका शब्द-संग्रह बहुत बड़ा है, परन्तु यह ग्रन्थ एक विशेष प्रकार के पतले और मजबूत ओपीक कागज में छपा गया है, जिससे १२०० पृष्ठों के होने पर भी बैसा भारी नहीं होने पाया है।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी-शब्दसागर

ता०.....

मैनेजर 'बुकडिपो', इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

प्रिय महोदय,

मैं 'संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर' का ग्राहक होना चाहता हूँ।

कृपया नीचे लिखे पते पर उसकी एक प्रति बी० पी० द्वारा भे दीजिए।

भवदीय

नाम _____

पता _____

द्विवेदी ग्रन्थावली की चार * *

* * *

उत्तमोत्तम पुस्तकें

आख्यायिका-सप्तक

इस पुस्तक में द्विवेदी जी ने सात आख्यायिकायें बड़ी ही मनोरञ्जक भाषा में लिखी हैं। मूल्य केवल १॥)

आध्यात्मिको

द्विवेदी जी की इस पुस्तक में आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, कुण्डलिनी, निरीश्वरवाद, जीवन क्या वस्तु है, पुनर्जन्म, ज्ञान, सृष्टि-विचार आदि विषयों के मार्मिक विचारों का सङ्कलन है। मूल्य केवल १॥) रुपया।

कोविद-कीर्तन

इस पुस्तक में भारत के बारह अर्वाचीन महापुरुषों और विद्वानों के चरित्र, उनको कृति और जीवन-सम्बन्धी ज्ञातव्य बातों का सङ्कलन है। मूल्य केवल १) रुपया।

विदेशी विद्वान

इस पुस्तक में विदेशी विद्वानों के चरित्रों द्वारा स्वजाति-सेवा, शिशु-प्रेम, व्यवसाय-नैपुण्य, नूतन धर्म-स्थापना आदि का बड़ा सुन्दर दिग्दर्शन किया गया है। मूल्य केवल १) रुपया।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

मैनेजर (बुकाडिपो),

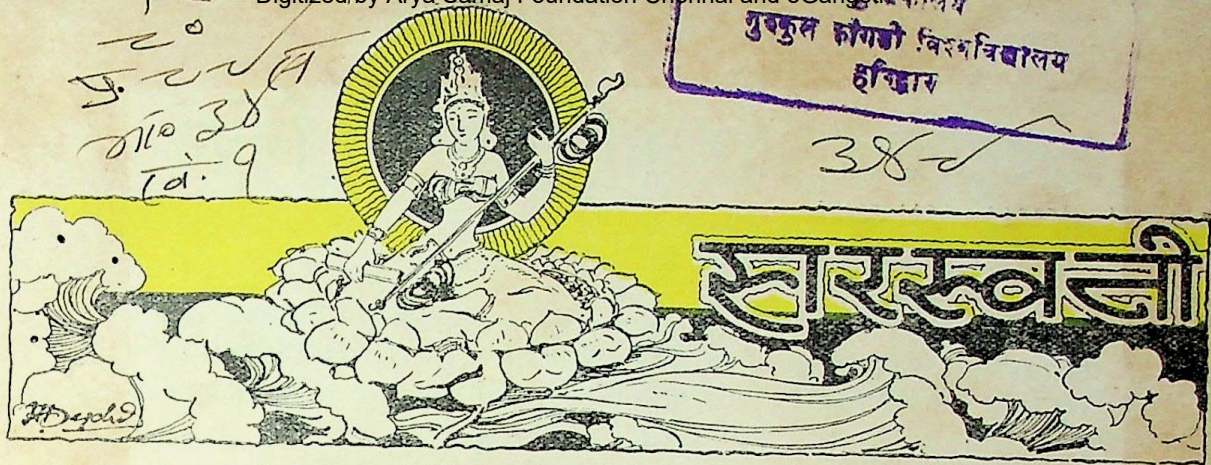
इंडियन प्रेस, लिमिटेड,

इलाहाबाद



मेघाभिवादन

[चित्रकार—श्रीयुत रामगोपाल विजयवर्गीय]



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

मई, १९३३

भाग ३४, खंड १

सं० ५, पूर्ण संख्या ४०१

वैशाख, १९६०

कोयल से

श्रीयुत हितैषी

(१)

कुमुदी क्या सुधांशु से सिञ्चित होगी—
कभी, सुधा बोलनेवाली बता ?
हम सार्थक होंगे चकोरी के क्या—
कुछ भेद की खोलनेवाली बता ?
न संयोग की सूझती राह कोई,
अरी जी की टटोलनेवाली बता ?
कब राका बनेगी हमारी कुहू—
ओ "कुहू" "कुहू" बोलनेवाली बता ?

(२)

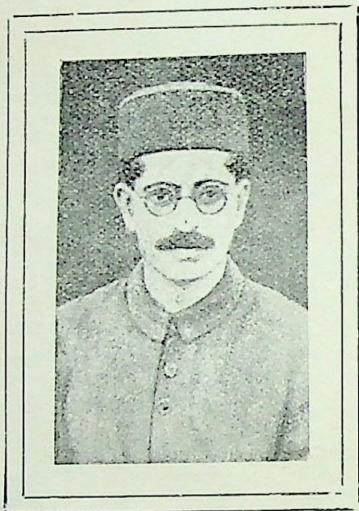
किस व्याकुल-मत्त की मत्तता है—
जो समाकुला औ मतवाली हुई तू ?
किस डोलते चित्त का चित्र है जो,
प्रति डाली पै डोलनेवाली हुई तू ?
कह, कौन अभागी की भाग्य-निशा है,
जो हाय ! सुभाग्य से खाली हुई तू ?
किस दग्ध कलेजे के कोयले से—
—वन के अरी ! कोयल, काली हुई तू ?

ह्वाइट पेपर और पार्लियामेंटरी डिबेट

पंडित हृदयनाथ कुंजरू

लार्ड अर्विन ने सरकार की ओर से वादा किया था कि भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जायगा परन्तु इन शब्दों का न ह्वाइट पेपर में जिक्र है, न पार्लियामेंटरी डिबेट में। अग्य रही ज्वाइंट सेलेक्ट कमेटी। सो उस पर हमारा तभी ज़ोर पड़ेगा जब आपस का वैमनस्य दूर हो।

जब पहली राउन्ड टेबुल कान्फरेंस सन् १९३० में हुई तब उसकी सफलता की अधिक आशा न थी। देश की जो अवस्था उस समय थी वह समाचार पत्रों के पाठकों से छिपी नहीं है। आम तौर पर लोग उसे धोखे की टट्टी समझते थे। और कान्फरेंस के मेम्बर भी समझते थे कि जो कठिनाइयाँ उनके सामने हैं उन पर विजय प्राप्त करना सरल कार्य नहीं है। परन्तु कान्फरेंस के आरम्भ में मेम्बरों पर देश के प्रेम ने इतना प्रभाव डाला कि वे प्रथम अधिवेशन में आपस के झगड़ों को भूल गये। खेद है कि यह उच्च भावना स्थिर नहीं रही, तो भी कुछ दिनों के मेल का यह परिणाम निकला कि भविष्य के लिए आशा बँधी और कांग्रेसवाले कान्फरेंस में सम्मिलित होने के लिए राजी हो गये। विचार यह था कि भावी अधिवेशनों में जो मंजिल पहले अधिवेशन में तय हो चुकी थी उससे आगे बढ़ने का मार्ग निकाला जायगा। परन्तु सन् १९३० में इंग्लैंड में मजदूर-दल की सरकार के स्थान पर अनुदार-दल की सरकार का शासन स्थापित हो गया था। इसके अतिरिक्त दूसरी और तीसरी कान्फरेंसों में आपस की फूट यहाँ तक बढ़ गई कि उन्नति



करना तो दूर रहा, उल्टा यह भय उत्पन्न हो गया कि शत्रु हमें कहीं पीछे न हटा दे। और कान्फरेंस के राष्ट्रवादी सदस्यों को यही गनीमत मालूम हुआ कि पहली कान्फरेंस का फैसला कायम रहे।

ह्वाइट पेपर का शौक से तो कोई भी प्रतीक्षक नहीं था, तथापि जो कुछ प्रकाशित हुआ वह आशा के विरुद्ध और प्रगति का विरोधी सिद्ध हुआ। लार्ड अर्विन ने ब्रिटिश सरकार की ओर से यह

घोषणा की थी कि ब्रिटेन भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य की मंजिल तक पहुँचाने को तैयार है। और डोमीनियन गवर्नमेंट का आवश्यक अङ्ग उत्तरदायी शासन है। ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष को यह उत्तरदायी शासन देना इस शर्त पर स्वीकार किया कि इस देश में फ़ेडरेशन स्थापित हो। इस कारण यदि भारतीयों को सन्तुष्ट करना था तो ह्वाइट पेपर को दो प्रश्नों का अवश्य उत्तर देना चाहिए था। एक तो यह कि फ़ेडरेशन कब स्थापित होगा और दूसरा यह कि हम अपने ध्येय पर कितने समय में पहुँच जायेंगे। दूसरे प्रश्न का उत्तर देने का तो ह्वाइट पेपर में प्रयत्न ही नहीं किया गया

है। और पहले प्रश्न का जो उत्तर दिया गया है उससे अविश्वास और भी बढ़ गया है। पहली राउंडटेबुल कान्फ्रेंस में तो उत्तरदायी शासन देने के लिए एक ही शर्त लगाई गई थी। वह यह थी कि रियासतें केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में सम्मिलित होने के लिए तैयार हों। तीसरी राउंडटेबुल कान्फ्रेंस में सर सैमुअल होर ने एक कैद और लगा दी। उन्होंने कहा, जब तक कि रिजर्व बैंक नहीं कायम होगा, फेडरेशन अस्तित्व में न आ सकेगा।

ह्वाइट पेपर ने हमारी कठिनाइयों को और भी बढ़ा दिया है। उसकी भूमिका में आम तौर पर इन दोनों शर्तों का जरूर जिक्र किया गया है, परन्तु उसी के साथ पहली बार यह भी इशारा किया गया है कि सम्भव है कि राजनैतिक स्थिति के कारण नये विधान का जारी करना सम्भव न हो। प्रस्तावों में देशी राज्यों के सम्मिलित होने का तो जिक्र है, पर तु रिजर्व बैंक का उनमें कोई उल्लेख नहीं है। वहाँ केवल यह लिखा गया है कि फेडरेशन उस समय तक स्थापित न किया जाय जब तक पार्लियामेंट के दोनों भवन सम्राट् को यह एड्रेस पेश न करें कि फेडरेशन कार्य-रूप में परिणत किया जाय। इससे यह भय उत्पन्न होता है कि यदि देशी राज्य हमारे साथ सम्मिलित हो जायँ और रिजर्व बैंक भी स्थापित हो जाय तो भी सम्भव है कि हम फेडरेशन की सूरत न देख सकें। सम्भव है कि सर सैमुअल होर अब भी केवल इन्हीं दोनों शर्तों का पूरा होना आवश्यक समझते हों, परन्तु प्रस्तावों की भाषा ऐसी है कि भारतवर्ष सब शर्तों को पूरा कर दे, तो भी फेडरेशन का स्थापित होना या न होना केवल पार्लियामेंट की इच्छा पर ही निर्भर है। ह्वाइट पेपर के इस दोष पर भारतवर्ष में कड़ी नुक्ता-चीनी हुई। खयाल था कि पार्लियामेंट की बहस में भारतीयों की इस आपत्ति का उत्तर देने का प्रयत्न किया जायगा, मगर न सर सैमुअल

होर ने अपने व्याख्यान में उसका जिक्र किया और न लार्ड सैंकी ने। स्वाधीनता राजनैतिक रोगों की दवा समझी जाती है। राउंडटेबुल कान्फ्रेंस इसी आशा से हुई थी कि भारतीयों को उनके उचित अधिकार दिये जायँगे जिससे यहाँ की राजनैतिक हलचल दूर हो जायगी और भारत और ब्रिटेन के सम्बन्ध उत्तम हो जायँगे। ह्वाइट पेपर में यह कहा गया है कि सम्भव है, राजनैतिक परिस्थितियों के कारण नये विधान की इमारत तैयार न हो सके। क्या अपरिवर्तनवादी सरकार यह समझती है कि बिना स्वाधीनता दिये हुए वह भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति को संभाल सकती है?

इसी सिलसिले में एक और बात भी विचारणीय है। यदि नये विधान के स्थापित करने के लिए पार्लियामेंट के दोनों भवनों की स्वीकृति आवश्यक समझी जायगी तो इसका परिणाम यही निकलेगा कि बिना अनुदारदल की इच्छा के केन्द्रीय सरकार कभी भारतीयों के अधिकार में नहीं की जा सकेगी। हाउस आफ कामन्स में तो नये चुनाव के बाद दूसरी पार्टी का जोर हो जाय; मगर हाउस आफ लार्ड तो अपरिवर्तनवाद का किला है, उस पर स्वाधीनता की सेना कभी अधिकार नहीं कर सकती। अनुदार-दल जिसके हाथ में आज-कल शासन-सूत्र है, कदाचित् ऐसा प्रवन्ध करना चाहता है कि भारतवर्ष के सम्बन्ध में वास्तविक अधिकार उसी के हाथ में रहे।

यह तो ऊपर बताया जा चुका है कि ह्वाइट पेपर में इसका कहीं जिक्र नहीं है कि हमारी परीक्षा कब समाप्त होगी और औपनिवेशिक स्वराज्य का प्रमाणपत्र हमें कब मिलेगा। उसमें डोमीनियन स्टेट्स शब्द का कहीं प्रयोग भी नहीं हुआ है। लेबर पार्टी के स्पीकरों ने पार्लियामेंट में इस प्रश्न को उठाया। वे इस खयाल के हामी हैं कि नये विधान में आत्मविकास का भाव हो। इस सिद्धान्त पर मान्टेग्यू-चेम्स-फोर्ड-रिपोर्ट ने जोर दिया था। और सायमन

कमीशन तक ने उसे स्वीकार किया। मगर हाइट पेपर में भविष्य की उन्नति के लिए कोई मार्ग नहीं बताया गया है। अंडर सेक्रेटरी आफ स्टेट मिस्टर बटलर ने लेबर पार्टी को उत्तर देते हुए यह कहा कि सरकार का यह खयाल है कि जिस विधान को पार्लियामेंट क़ायम करेगी उसका बदलना भी उसी के हाथ में होगा। मगर उन्होंने यह बताने का कष्ट नहीं उठाया कि पार्लियामेंट आगे बढ़ने का कब साहस करेगी। सर सैमुअल होर के व्याख्यान में एक वाक्य है जिससे यह प्रकट होता है कि सरकार का इस सम्बन्ध में क्या इरादा है। वे इस बात से बहुत खुश हैं कि गर्मदलवाले कभी सरकार पर अधिकार न जमा सकेंगे। और उन्होंने यह राय भी प्रकट की कि उनकी तजवीज़ें एक पुश्त के लिए भारतवर्ष के भाग्य का फैसला कर देंगी। भारतवर्ष असाधारण गति से आगे बढ़ रहा है। सरकार की तजवीज़ों से कोई दल सन्तुष्ट नहीं है। गर्मदलवाले और विधानप्रेमी, हिन्दू और मुसलमान सब एक से उनसे असन्तुष्ट हैं। वर्तमान आर्थिक और व्यापारिक संरक्षणों को मानने के लिए कोई तैयार नहीं है। क़ौज और सिविल सर्विस के सम्बन्ध में जो नीति बर्ती गई है उससे समस्त देश में असन्तोष फैला हुआ है। मगर सर सैमुअल होर इतने पर भी यही समझते हैं कि भारतवर्ष में उनकी शासन-व्यवस्था २५ वर्ष तक क़ायम रहेगी। भारतवर्ष और इंग्लैंड दोनों की बेहतरी इसी में है कि नये विधान में इस बात का प्रबन्ध किया जाय कि भारतवर्ष भविष्य में बराबर उन्नति करता चला जाय। मगर पार्लियामेंट की स्पीचों से यह प्रकट होता है कि बिना घोर लड़ाई-झगड़े और आन्दोलन के इंग्लैंड से अधिकार प्राप्त करना सम्भव न होगा।

यह तो सबको आरम्भ से ही मालूम था कि भारतवर्ष पूर्णरूप से हमारे हाथ में नहीं आ जायगा। सब समझते थे कि कुछ विषयों पर अभी सरकार अपना अधिकार बनाये रहेगी। परन्तु यह चिन्ता

सबको थी कि इंग्लैंड के अधिकार अधिक काल तक न बने रहें और हम शीघ्र पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर सकें। मिस्टर राम्से मैकडानल्ड ने मंज़िल को ख़तम होने का कोई समय तो निर्धारित नहीं किया, मगर उन्होंने सरकार की ओर से यह एलान ज़रूर किया कि संरक्षित अधिकार इस तरह बर्ते जायेंगे कि भारत की भावी उन्नति में विघ्न न पड़े। अगर हाइट पेपर की नियत हो तो बावजूद तमाम ऐवों के ब्रिटिश सरकार यह कह सकती थी कि उसने प्राइम मिनिस्टर के वादे को पूरा किया है। परन्तु हाइट पेपर के पढ़ने से यह नहीं प्रकट होता कि उसके रचयिताओं ने भारत की उन्नति को सरल करने का प्रयत्न किया है। इस दावे के प्रमाण में एक ही उदाहरण उपस्थित करना यथेष्ट होगा। पूर्ण स्वाधीनता के लिए क़ौज, सिविल सर्विस और पुलिस सर्विस का हमारे अधीन होना आवश्यक है। अब तक सिविल सर्विस और पुलिस सर्विस दोनों में सरकार ने अपने अधिकार से भारतीयों की संख्या को बढ़ाया है। मिस्टर माटेग्यू ने सन् १९१९ में जब भारतीयों की भर्ती को बढ़ाया तब उन्हें पार्लियामेंट से आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी। इसी प्रकार जब 'ली कमीशन' की सिफारिशों पर अमल किया गया तब भी पार्लियामेंट को मंज़री की आवश्यकता नहीं पड़ी। परन्तु अब हाइट पेपर में यह तजवीज़ की गई है कि इन दोनों नौकरियों में जिनका ज़िक्र ऊपर हो चुका है, भारतीय बिना पार्लियामेंट की इच्छा के उन्नति न कर सकेंगे। इस समय जो भारतीयों और अँगरेज़ों के भर्ती करने के सम्बन्ध में नियम हैं उनमें परिवर्तन तभी हो सकेगा जब पार्लियामेंट के दोनों भवन इसके लिए तैयार होंगे। अगर सरकार को यह मंज़ूर था कि वह अपने संरक्षित अधिकारों को इस प्रकार प्रयोग न करे जिससे भारतीयों की उन्नति रुक जाय तो यह उचित ही था कि उनके मार्ग में नई रुकावटें न पैदा की जातीं। परन्तु नौकरियों के बारे में तो नई बन्दिशें लगाई जा रही हैं। इस समय उनमें भारतीयों की संख्या को

बढ़ाना सरकार की राय पर ही निर्भर है। पर अगर भविष्य में पार्लियामेंट की स्वीकृति आवश्यक समझी गई तो जो अवसर भारतीयों को आगे बढ़ने का इस समय प्राप्त है वह भी कम हो जायगा। और सिविल सर्विसेस का भारतीय करण बहुत समय तक न हो सकेगा। इससे यह प्रकट होता है कि ह्वाइट पेपर के रचयिता अपनी तजवीजों को अस्थायी नहीं समझते, बल्कि इस प्रयत्न में लगे हुए हैं कि जहाँ तक सम्भव हो भारतवर्ष को इस मंजिल से आगे बढ़ना सरल न रहे। सरकार की फौजी नीति और ह्वाइट पेपर के आर्थिक संरक्षणों से सम्पूर्ण भारत असन्तुष्ट है। परन्तु सिविल सर्विसेस के विषय में जो नीति बर्ती गई है वह सबसे अधिक अन्यायपूर्ण और अप्रमाणिक है। स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी ने ७० वर्ष हुए सिविल सर्विसेस के भारतीयकरण के लिए आन्दोलन आरम्भ किया था। पर सरकार अब भी उसको भारतीयों के हाथ में देने के लिए तैयार नहीं है।

लार्ड अर्विन ने सरकार की ओर से हमसे यह

वादा किया था कि भारतवर्ष औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त कर सकेगा। परन्तु इन शब्दों का न ह्वाइट पेपर में चिह्न है, न उसकी डिबेट में है। उन दोनों के पढ़ने से यह प्रकट ही नहीं होता कि सरकार ने कभी डोमोनियन स्टेट्स की नीति को स्वीकार किया है। इस मंजिल की ओर भूल से भी इशारा नहीं किया गया है। इन पर ध्यान देने से प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में यह सन्देह पैदा होगा कि सरकार की नियत ठीक नहीं है। ज्वाइंट सेलेक्ट कमेटी पर भारतीयों के लिए प्रभाव डालना सरल नहीं है। लेकिन अगर उनका कमेटी पर जोर पड़ेगा तो तभी पड़ेगा जब आपस का वैमनस्य दूर हो जायगा। हमारी फूट तीन वर्ष से हमें असफल किये हुए है। अच्छा हो कि अब भी हम जाग उठें और देश की दयनीय दशा से हमारे हृदय को चोट लगे। विभिन्न सम्प्रदाय अपने अपने लाभ और अधिकार के लिए लड़ रहे हैं, परन्तु यदि भारत इस नवविधान-निर्माण के युद्ध में हारा तो किस सम्प्रदाय को यश मिलेगा ?

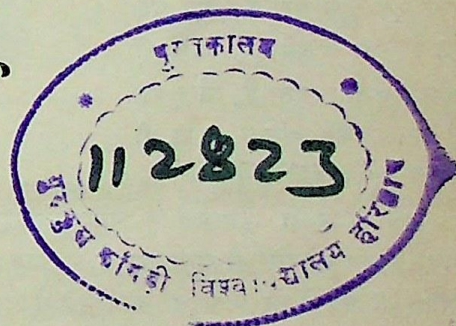
तेरी याद

(वसन्त)

कुँवर हिम्मतसिंह

मधुमय यौवन वसुन्धरा का,
जब खिल उठता है रुचिमान।
प्रकृति देवि को पुलकित करने,
करता व्यजन मलय-पवमान ॥
सुनकर मीठे मृदुल स्वरों में,
मतवाले मधुपों का गान।

प्रेयसि से मिलनातुर होकर,
पथिकों का मन होता म्लान ॥
सुघर सखी-सी तब कहती है -
कूक कूक कोकिल संवाद।
मेरा हृदय सूख जाता है,
आ जाती है तेरी याद ॥



गुरुकुल

गुरुकुल कांगड़ी

एक सामाजिक कहानी

नया विवाह

मुंशी प्रेमचन्द

(१)

हमारी देह पुरानी है, लेकिन इसमें सदैव नया रक्त दौड़ता रहता है। नये रक्त के प्रवाह पर ही हमारे जीवन का आधार है। पृथ्वी की इस चिरंतन व्यवस्था में यह नयापन उसके एक एक अणु में, एक एक कण में, तार में बसे हुए स्वरो की भांति, गूँजता रहता है, और यह सौ साल की बुढ़िया आज भी नवेली दूल्हन बनी हुई है।

जब से लाला डंगामल ने नया विवाह किया है उनका यौवन नये सिर से जाग उठा है। जब पहली स्त्री जीवित थी तब वे घर में बहुत कम रहते थे। प्रातः से दस-ग्यारह बजे तक तो पूजा-पाठ ही करते रहते थे। फिर भोजन करके दूकान चले जाते। वहाँ से एक बजे रात को लौटते और थके-माँदे सो जाते। यदि लीला कभी कहती, ज़रा और सवेरे आ जाया करो तो बिगड़ जाते और कहते—तुम्हारे लिए क्या दूकान छोड़ दूँ या रोज़गार बन्द कर दूँ। यह वह ज़माना नहीं है कि एक लोटा जल चढ़ाकर लक्ष्मी प्रसन्न कर ली जाय। आज-कल उनकी चौखट पर माथा रगड़ना पड़ता है, तब भी उनका मुँह सीधा नहीं होता। लीला बेचारी चुप हो जाती।



अभी छः महीने की बात है। लीला को ज्वर चढ़ा हुआ था। लाला जी दूकान जाने लगे तब उसने डरते-डरते कहा था—देखो, मेरा जी अच्छा नहीं है। ज़रा सवेरे आ जाना।

डंगामल ने पगड़ी उतारकर खूँटी पर लटका दी और बोले—अगर मेरे बैठे रहने से तुम्हारा जी अच्छा हो जाय तो मैं दूकान न जाऊँगा।

लीला हताश होकर बोली—मैं दूकान जाने को तो नहीं मना करती। केवल ज़रा सवेरे आने को कहती हूँ।

“तो क्या मैं दूकान पर बैठा मौज किया करता हूँ?”

लीला इसका क्या जवाब देती। पति का यह स्नेहहीन व्यवहार उसके लिए कोई नई बात न थी। इधर कई साल से उसे इसका कठोर अनुभव हो रहा था कि उसकी घर में कद नहीं है। वह अक्सर इस समस्या पर विचार भी किया करती, पर अपना कोई अपराध वह न पाती। वह पति की सेवा अब पहले से कहीं ज़्यादा करती, उनके कार्यभार को हलका करने की बराबर चेष्टा करती रहती, बराबर प्रसन्नचित्त रहती, कभी उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करती।

अगर उसकी जवानी ढल चुकी थी तो इसमें उसका क्या अपराध था ? किसकी जवानी सदैव स्थिर रहती है ? अगर अब उसका स्वास्थ्य उतना अच्छा न था तो इसमें उसका क्या दोष ? उसे बेकसूर क्यों दण्ड दिया जाता है ।

उचित तो यह था कि २५ साल का सहचर्य अब एक गहरी मानसिक और आत्मिक अनुरूपता का रूप धारण कर लेता, जो दोष को भी गुण बना लेता है, जो पके फल की तरह ज्यादा रसीला, ज्यादा मीठा, ज्यादा सुन्दर हो जाता है । लेकिन लाला जी का वणिक्-हृदय हर एक पदार्थ को वाणिज्य की तराजू से तौलता था । बूढ़ी गाय जब न दूध दे सकती है, न बच्चे, तब उसके लिए गोशाला ही सबसे अच्छी जगह है । उनके विचार में लीला के लिए इतना ही काफी था कि घर की मालकिन बनी रहे, आराम से खाय और पड़ी रहे । उसे अख्तियार है, चाहे जितने जेवर बनवाये, चाहे जितना स्नान व पूजा करे, केवल उनसे दूर रहे । मानव-प्रकृति की जटिलता का एक रहस्य यह था कि डंगामल जिस आनन्द से लीला को वञ्चित रखना चाहते थे, जिसकी उसके लिए कोई ज़रूरत ही न समझते थे, खुद उसी के लिए सदैव प्रयत्न करते रहते थे । लीला ४० वर्ष की होकर बूढ़ी समझ ली गई थी, किन्तु वे पैतालीस के होकर अभी जवान ही थे, जवानी के उन्माद और उल्लास से भरे हुए लीला से अब उन्हें एक तरह की अरुचि होती थी और वह दुखिया जब अपनी त्रुटियों का अनुभव करके प्रकृति के निर्दय आघातों से बचने के लिए रंग व रोगन की आड़ लेती तब लाला जी उसके बूढ़े नखरों से और भी घृणा करने लगते । वे कहते—वाह री तृष्णा ! सात लड़कों की तो मा होगई, बाल खिचड़ी होगये, चेहरा धुले हुए फूलालैन की तरह सिकुड़ गया, मगर आपको अभी महावर, सेंदुर, मेंहदी और उबटन की हवस बाकी ही है । औरतों का स्वभाव भी कितना विचित्र है ! न जाने क्यों बनाव-सिंगार पर इतना जान देती हैं ? पूछो अब तुम्हें और क्या चाहिए । क्यों नहीं मन को समझा लेतीं कि जवानी बिदा होगई और इन

उपादानों से वह वापस नहीं बुलाई जा सकती ? लेकिन वे खुद जवानी का स्वप्न देखते रहते थे । उनकी जवानी की तृष्णा अभी शान्त न हुई थी । जाड़ों में रसों और पाकों का सेवन करते रहते थे । हफ्ते में दो बार खिज़ाब लगाते और एक डाक्टर से मङ्कीग्लैंड के विषय में पत्र-व्यवहार कर रहे थे ।

लीला ने उन्हें असमझस में देखकर कातर स्वर में पूछा—कुछ बतला सकते हो, कं बजे आओगे ।

लाला जी ने शान्त भाव से पूछा—तुम्हारा जी आज कैसा है ?

लीला क्या जवाब दे ? अगर कहती है कि बहुत खराब है तो शायद ये महाशय वहीं बैठ जायें और उसे जली-कटी सुनाकर अपने दिल का बुखार निकालें । अगर कहती है कि अच्छी हूँ तो शायद निश्चिन्त होकर दो बजे तक कहीं खबर लें । इस दुविधा में डरते-डरते बोली—अब तक तो हलकी थी, लेकिन अब कुछ कुछ भारी हो रही है । तुम जाओ दूकान पर लोग तुम्हारी राह देखते होंगे । हां, ईश्वर के लिए एक-दो न बजा देना । लड़के सो जाते हैं, मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगता, जी घबराता है ।

सेठ जी ने अपने स्वर में स्नेह की चाशनी देकर कहा—बारह बजे तक आजाऊंगा ज़रूर ।

लीला का मुख धूमिल हो गया । उसने कहा—दस बजे तक नहीं आ सकते ?

“साढ़े ग्यारह से पहले किसी तरह नहीं ।”

“नहीं, साढ़े दस ।”

“अच्छा ग्यारह बजे ।”

लाला जी वादा करके चले गये, लेकिन दस बजे रात को एक मित्र ने मुजरा सुनने के लिए बुला भेजा । इस निमन्त्रण को कैसे इनकार कर देते । जब एक आदमी आपको खातिर से बुलाता है तब यह कहां की भलमनसाहत है कि आप उसका निमन्त्रण अस्वीकार कर दें ।

लाला जी मुजरा सुनने चले गये, दो बजे लौटे । चुपके से आकर नौकर को जगाया और अपने कमरे

में जाकर लेट रहे। लीला उनकी राह देखती, प्रतिक्षण विकल वेदना का अनुभव करती हुई न जाने कब सो गई थी।

अन्त को इस बीमारी ने अभागिनी लीला की जान ही लेकर छोड़ा। लाला जी को उसके मरने का बड़ा दुःख हुआ। मित्रों ने समवेदना के तार भेजे। एक दैनिक पत्र ने शोक प्रकट करते हुए लीला के मानसिक और धार्मिक सद्गुणों का खूब बढ़ाकर वर्णन किया। लाला जी ने इन सभी मित्रों को हार्दिक धन्यवाद दिया और लीला के नाम से बालिका-विद्यालय में पाँच वज्रोफे प्रदान किये और मृतक-भोज तो जितने समारोह से किया गया वह नगर के इतिहास में बहुत दिनों तक याद रहेगा।

लेकिन एक महीना भी न गुज़रने पाया था कि लाला जी के मित्रों ने चारा डालना शुरू कर दिया और उसका यह असर हुआ कि छः महीने की विधुरता के तप के बाद उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया। आखिर बेचारे क्या करते? जीवन में एक सहचरी की आवश्यकता तो थी ही, और इस उम्र में तो एक तरह से वह अनिवार्य हो गई थी।

(२)

जब से नई पत्नी आई, लाला जी के जीवन में आश्चर्य-जनक परिवर्तन होगया। दूकान से अब उन्हें उतना प्रेम नहीं था। लगातार हफ़ों न जाने से भी उनके कार-बार में कोई हर्ज नहीं होता था। जीवन के उपभोग की जो शक्ति दिन दिन क्षीण होती जाती थी, अब वह छींटे पाकर सजीव हो गई थी, सूखा पेड़ हरा होगया था, उसमें नई-नई कोपलें फूटने लगी थीं। मोटर नया आ गया था, कमरे नये फ़र्नीचर से सजा दिये गये थे, नौकरों की भी संख्या बढ़ गई थी, रेडियो आ पहुँचा था, और प्रतिदिन नये नये उपहार आते रहते थे। लाला जी की बूढ़ी जवानी जवानों की जवानी से भी प्रखर हो गई थी, उसी तरह जैसे बिजली का प्रकाश चन्द्रमा के प्रकाश से ज्यादा स्वच्छ और नेत्ररञ्जक होता है। लाला जी को उनके मित्र इस

रूपान्तर पर बधाइयाँ देते तब वे गर्व के साथ कहते— भई, हम तो हमेशा जवान रहे और हमेशा जवान रहेंगे। बुढ़ापा यहाँ आये तो उसके मुँह में कालिख लगाकर गधे पर उलटा सवार कराके शहर से निकाल दें। जवानी और बुढ़ापे को न जाने क्यों लोग अवस्था से सम्बद्ध कर देते हैं। जवानी का उम्र से उतना ही सम्बन्ध है, जितना धर्म का आचार से, रुपये का ईमानदारी से, रूप का शृङ्गार से। आज-कल के जवानों को आप जवान कहते हैं? मैं उनकी एक हज़ार जवानियों को अपने एक घंटे से भी न बदलूँगा। मालूम होता है, उनकी ज़िन्दगी में कोई उत्साह ही नहीं, कोई शौक ही नहीं। जीवन क्या है, गले में पड़ा हुआ ढोल है।

यही शब्द कुछ घटा-बढ़ाकर वे आशा के हृदय-पटल पर अङ्कित करते रहते थे। उससे बराबर सिनेमा, थियेटर और दरिया की सैर के लिए आग्रह करते रहते। लेकिन आशा को न जाने क्यों इन बातों से ज़रा भी रुचि न थी। वह जाती तो थी, लेकिन बहुत टाल-टूल करने के बाद। एक दिन लाला जी ने आकर कहा—चलो आज बजरे पर दरिया की सैर करें।

वर्षा के दिन थे, दरिया चढ़ा हुआ था, मेघ-मालायें अन्तर्राष्ट्रीय सेनाओं की भाँति रङ्ग-बिरङ्गी वर्दियाँ पहने आकाश में कवायद कर रही थीं। सड़क पर लोग मलार और बारहमासा गाते चलते थे। बागों में भूले पड़ गये थे।

आशा ने वेदिली से कहा—मेरा जी तो नहीं चाहता।

लाला जी ने मृदु प्रेरणा के साथ कहा—तुम्हारा मन कैसा है, जो आमोद-प्रमोद की ओर आकर्षित नहीं होता? चलो, ज़रा दरिया की सैर देखो। सच कहता हूँ, बजरे पर बड़ी बहार रहेगी।

“आप जायँ। मुझे और कई काम करने हैं।”

“काम करने को आदमी हैं। तुम क्यों काम करोगी?”

“महाराज अच्छे सालन नहीं पकाता। आप खाने बैठेंगे तो योंही उठ जायँगे।”

लीला अपने अवकाश का बड़ा भाग लाला जी के लिए तरह-तरह का भोजन पकाने में ही लगाती थी। उसने किसी से सुन रक्खा था कि एक विशेष अवस्था के बाद पुरुष के जीवन का सबसे बड़ा सुख रसना का स्वाद ही रह जाता है।

• लाला जी की आत्मा खिल उठी। उन्होंने सोचा कि आशा को उनसे कितना प्रेम है कि वह दरिया की सैर को उनकी सेवा के लिए छोड़ रही है। एक लीला थी कि मान-न-मान चलने को तैयार रहती थी। पीछा छुड़ाना पड़ता था, खामखाह सिर पर सवार हो जाती थी और सारा मज़ा किरकिरा कर देती थी।

स्नेह-भरे उलहने से बोले—तुम्हारा मन भी विचित्र है। अगर एक दिन सालन फीका ही रहा तो ऐसा क्या तूफान आ जायगा। तुम तो मुझे बिलकुल निकम्मा बनाये देती हो। अगर तुम न चलोगी तो मैं भी न जाऊँगा।

आशा ने जैसे गले से फन्दा छुड़ाते हुए कहा—आप भी तो मुझे इधर-उधर घुमा-घुमाकर मेरा मिजाज़ बिगाड़े देते हैं। यह आदत पड़ जायगी तो घर का धन्धा कौन करेगा ?

“मुझे घर के धन्धे की रस्ती भर भी परवा नहीं—बाल की नाक बराबर भी नहीं। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा मिजाज़ बिगड़े और तुम इस गृहस्थी की चक्की से दूर रहो। और तुम मुझे बार बार आप क्यों कहती हो ? मैं चाहता हूँ, तुम मुझे तुम कहो, तू कहो, गालियाँ दो, धौल जमाओ। तुम तो मुझे ‘आप’ कहकर जैसे देवता के सिंहासन पर बैठा देती हो। मैं अपने घर में देवता नहीं, चंचल बालक बनना चाहता हूँ।

आशा ने मुसकिराने की चेष्टा करके कहा—भला मैं आप को ‘तुम’ कहूँगी। तुम बराबरवालों को कहा जाता है कि बड़ों को !

मुनीम ने एक लाख के घाटे की ख़बर सुनाई होती, तो भी शायद लाला जी को इतना दुख न होता जितना आशा के इन कठोर शब्दों से हुआ। उनका सारा

उत्साह, सारा उल्लास जैसे ठंडा पड़ गया। सिर पर बाँकी रक्खी हुई फूलदार टोपी, गले में पड़ी हुई जोगिये रंग की चुनी हुई रेशमी चादर, वह तंजेब का बेलदार कुर्ता जिसमें सोने के बटन लगे हुए थे, यह सारा ठाट जैसे उन्हें हास्य-जनक जान पड़ने लगा, जैसे वह सारा नशा किसी मंत्र से उतर गया हो।

निराश होकर बोले—तो तुम्हें चलना है या नहीं ?

“मेरा जी नहीं चाहता।”

“तो मैं भी न जाऊँ ?”

“मैं आपको कब मना करती हूँ।”

“फिर ‘आप’ कहा !”

लीला ने जैसे भीतर से ज़ोर लगाकर कहा—‘तुम’, और उसका मुखमण्डल लज्जा से आरक्त हो गया।

“हाँ, इसी तरह ‘तुम’ कहा करो। तो तुम नहीं चल रही हो ? अगर मैं कहूँ तुम्हें चलना पड़ेगा तो ?”

“तब चलूँगी। आपकी आज्ञा मानना मेरा धर्म है।”

लाला जी आज्ञा न दे सके। आज्ञा और धर्म जैसे शब्द उनके कानों में चुभने सा लगे। खिसियाये हुए बाहर को चल पड़े। उस वक्त आशा को उन पर दया आ गई। बोली—तो कब तक लौटोगे ?

“मैं नहीं जा रहा हूँ।”

“अच्छा तो मैं भी चलती हूँ।”

जैसे कोई ज़िद्दी लड़का रोने के बाद अपनी इच्छित वस्तु पाकर उसे पैरों से ठुकरा देता है, उसी तरह लाला जी ने मुँह बनाकर कहा—तुम्हारा जी नहीं चाहता तो न चलो। मैं आग्रह नहीं करता।

“आप...नहीं तुम बुरा मान जाओगे।”

आशा गई, लेकिन उमंग से नहीं। जिस मामूली भेष में थी, उसी तरह चल खड़ी हुई। न कोई सजीली साड़ी, न जड़ाऊ गहने, न कोई सिंगार, जैसे कोई विधवा हो।

ऐसी ही बातों पर लाला जी मन में झुंझला उठते थे। व्याह किया था जीवन का आनन्द उठाने के लिए, मिलमिलाते हुए दीपक में तेल डालकर उसे और

चटक करने के लिए। अगर दीपक का प्रकाश तेज न हुआ तो तेल डालने से लाभ? न जाने इसका मन क्यों इतना शुष्क और नीरस है, जैसे कोई ऊसर का पेड़ हो, कितना ही पानी डालो, उसमें हरी पत्तियों के दर्शन न होंगे। जड़ाऊ गहनों से भरी पेटारियाँ रखी हुई हैं, कहाँ कहाँ से मँगवाये, दिल्ली से, कलकत्ते से, फ्रांस से! कैसी-कैसी बहुमूल्य साड़ियाँ रखी हुई हैं! एक नहीं सैकड़ों। पर केवल संदूक में कीड़ों का भोजन बनने के लिए। दरिद्र घर की लड़कियों में यही ऐव होता है। उनकी दृष्टि सदैव संकीर्ण रहती है। न खा सकें, न पहन सकें, न दे सकें। उन्हें तो खजाना भी मिल जाय तो यही सोचती रहेंगी कि इसे खर्च कैसे करें।

दरिया की सैर तो हुई, पर विशेष आनन्द न आया।

(३)

कई महीने तक आशा की मनोवृत्तियों को जगाने का असफल प्रयत्न करके लाला जी ने समझ लिया कि इसकी पैदाइश ही मुहर्रमी है। लेकिन फिर भी निराश न हुए। ऐसे व्यापार में एक बड़ी रकम लगाने के बाद वे उससे अधिक-से-अधिक लाभ उठाने की वणिक्-प्रकृति को कैसे त्याग देते? विनोद की नई नई योजनायें पैदा की जाती—ग्रामोफोन अगर बिगड़ गया है, गाता नहीं, या साफ़ आवाज़ नहीं निकालता, तो उसकी मरम्मत करानी पड़ेगी। उसे उठाकर रख देना, यह तो मूर्खता है।

इधर बूढ़ा महाराज एकाएक बीमार होकर घर चला गया था और उसकी जगह उसका सत्रह-अठारह साल का जवान लड़का आ गया था—कुछ अजीब गँवार था, बिलकुल झंझड़, उजड़। कोई बात ही न समझता था। जितने फुलके बनाता उतनी तरह के। हाँ, एक बात समान होती। सब बीच में मोटे होते और किनारे पतले। दाल कभी तो इतनी पतली जैसे चाय, कभी इतनी गाढ़ी जैसे दही। नमक कभी इतना कम कि बिलकुल फीकी, कभी इतना तेज़ कि नाँव का शाकीन। आशा मुँह-हाथ धोकर चौके में पहुँच जाती और इस ढपोरसंख को भोजन पकाना सिखाती। एक दिन उसने कहा—तुम कितने नालायक आदमी हो

जुगल। आखिर इतनी उम्र तक तुम घास खोदते रहे या भाड़ मोंकते रहे कि फुलके तक नहीं बना सकते। जुगल आँखों में आँसू भरकर कहता—बहू जी, अभी मेरी उम्र ही क्या है! सत्रहवाँ ही तो पूरा हुआ है।

आशा को उसकी बात पर हँसी आगई। उसने कहा—तो रोटियाँ पकाना क्या दस-पाँच साल में आता है?

“आप एक महीना सिखा दें बहू जी, फिर देखिए, मैं आपको कैसे फुलके खिलाता हूँ कि जी खुश हो जाय। जिस दिन मुझे फुलके बनाने आ जायेंगे, मैं आपसे कोई इनाम लूँगा। सालन तो अब मैं कुछ-कुछ बनाने लगा हूँ, क्यों न?”

आशा ने हौसला बढ़ानेवाली मुसकिराहट के साथ कहा—सालन नहीं, वह बनाना आता है। अभी कल ही नमक इतना तेज़ था कि खाया न गया। मसाले में कचाहँद आ रही थी।

“मैं जब सालन बना रहा था तब आप यहाँ कब थीं?”

“अच्छा, तो जब मैं यहाँ बैठी रहूँ तब तुम्हारा सालन बढ़िया पकेगा?”

“आप बैठी रहती हैं तब मेरी अक्ल ठिकाने रहती है।”

आशा को जुगल की इन भोली बातों पर खूब हँसी आ रही थी। हँसी को रोकना चाहती थी, पर वह इस तरह निकली पड़ती थी, जैसे भरी बोतल उँडेल दी गई हो।

“और मैं नहीं रहती तब?”

“तब तो आपके कमरे के द्वार पर जा बैठती है।”

“वहाँ बैठकर क्या किया करती है?”

“वहाँ बैठकर अपनी तकदीर को रोती है।”

आशा ने हँसी को रोककर पूछा—क्यों, रोती क्यों है?

“यह न पूछिए बहू जी, आप इन बातों को नहीं समझेंगी।”

आशा ने उसके मुँह की ओर प्रश्न की आँखों से देखा। उसका आशय कुछ तो समझ गई, पर न समझने का बहाना किया।

“तुम्हारे दादा आ जायँगे तब तुम चले जाओगे?”

“और क्या करूँगा बहू जी। यहाँ कोई काम दिलवा दीजिएगा तो पड़ा रहूँगा। मुझे मोटर चलाना सिखवा दीजिए। आपको खूब सैर कराया करूँगा। नहीं नहीं बहू जी, आप हट जाइए, मैं पतीली उतार लूँगा। ऐसी अच्छी साड़ी है आपकी कहीं कोई दाग पड़ जाय तो क्या हो?”

आशा पतीली उतार रही थी। जुगल ने उनके हाथ से सँझसी ले लेनी चाही।

“दूर रहो। फूहड़ तो तुम हो ही। कहीं पतीली पाँव पर गिराली तो महीनों मीँकोगे।”

जुगल के मुख पर उदासी छा गई।

आशा ने मुसकराकर पूछा—क्यों, मुँह क्यों लटक गया सरकार का?

जुगल रुआसा होकर बोला—आप मुझे डाँट देती हैं, बहू जी, तब मेरा दिल टूट जाता है। सरकार कितना ही घुड़कें, मुझे बिल्कुल दुख नहीं होता। आपकी नज़र कड़ी देखकर मेरा खून सर्द हो जाता है।

आशा ने दिलासा दिया मैंने तुम्हें डाँटा तो नहीं, केवल यही तो कहा कि कहीं पतीली तुम्हारे पाँव पर गिर पड़े तो क्या हो?

“हाथ ही तो आपका भी है। कहीं आपके हाथ से ही छूट पड़े तो?”

लाला डंगामल ने रसोई-घर के द्वार पर आकर कहा—आशा, ज़रा यहाँ आना। देखो तुम्हारे लिए कितने सुंदर गमले लाया हूँ। तुम्हारे कमरे के सामने रखे जायँगे। तुम यहाँ धुएँ-धक्कड़ में क्यों हलाकान होती हो। इस लड़के से कह दो, जल्दी महाराज को बुलाये। नहीं, मैं कोई दूसरा आदमी रख लूँगा। महाराजों की कमी नहीं है। आखिर कब तक कोई रिआयत करे। गधे को ज़रा भी तमीज़ नहीं आई। सुनता है जुगल, लिख दे आज अपने बाप को।

चूल्हे पर तवा रक्खा हुआ था। आशा रोटियाँ बेलने में लगी थी। जुगल तवे के लिए रोटियों का इंतज़ार कर रहा था। ऐसी हालत में भला आशा कैसे गमले देखने जाती? उसने कहा—जुगल सारी रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेल डालेगा।

लाला जी ने कुछ चिढ़कर कहा—अगर रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेलेंगे तो निकाल दिया जायगा।

आशा अनसुनी करके बोली—दस-पाँच दिन में सीख लायगा। निकालने की क्या ज़रूरत है?

“तुम आकर बतला दो, गमले कहीं रखे जायँ।”

“कहती तो हूँ, रोटियाँ बेलकर आई जाती हूँ।”

“नहीं, मैं कहता हूँ, तुम रोटियाँ मत बेलो।”

“आप तो खाम खाह ज़िद करते हैं।”

लाला जी सन्नाटे में आगये। आशा ने कभी इतनी रुखाई से उन्हें जवाब न दिया था। और यह केवल रुखाई न थी। इसमें कटुता भी थी। लज्जित होकर चले गये। उन्हें ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन गमलों को तोड़कर फेक दें और सारे पौधों को चूल्हे में डाल दें।

जुगल ने सहमें हुए स्वर में कहा—आप चली जायँ बहू जी, सरकार बिगड़ जायँगे।

“बको मत। जल्दी जल्दी फुलके सेंको, नहीं निकाल दिये जाओगे। और आज मुझसे रुपये लेकर अपने लिए कपड़े बनवा लो। भिखमँगों की सी सूरत बनाये घूमते हो। और बाल क्यों इतने बढ़ा रखे हैं? तुम्हें नाई भी नहीं जुड़ता?”

जुगल ने दूर की बात सोची। बोला—कपड़े बनवा लूँ तो दादा को हिसाब क्या दूँगा?

“अरे पागल, मैं हिसाब मैं नहीं देने कहती। मुझसे ले जाना।”

जुगल काटिलपन की हँसी हँसा।

“आप बनवायेंगी तो अच्छे कपड़े लूँगा। खहर के मलमल का कुर्ता, खहर की धोती, रेशमी चादर, अच्छा सा चप्पल।”

आशा ने मीठी मुसकान से कहा—और अगर अपने दाम से बनवाने पड़ें?

“तब कपड़े ही क्यों बनवाऊँगा ?”

“बड़े चालाक हो तुम ।”

जुगल ने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन किया—
आदमी अपने घर में रूखी रोटियाँ खाकर सो रहता है,
लेकिन दावत में तो अच्छे अच्छे पकवान ही खाता
है। वहाँ भी रूखी रोटियाँ मिलें तो वह दावत में जाय
ही नहीं।

“यह सब मैं नहीं जानती। एक गाढ़े का कुर्ता
बनवा लो और एक टोपी लेलो, हजामत के लिए दो
आने पैसे ऊपर से लेलो।

जुगल ने मान करके कहा—रहने दीजिए। मैं नहीं
लेता। अच्छे कपड़े पहनकर निकलूँगा तब तो आपकी
याद आवेगी। सड़ियल कपड़े पहनकर तो और
जी जलेगा।”

“तुम बड़े स्वार्थी हो। मुझ के कपड़े लोगे और
उसके साथ ही बढ़िया भी।”

“जब यहाँ से जाने लगूँ तब आप मुझे अपना एक
चित्र दीजिएगा।”

“मेरा चित्र लेकर क्या करोगे ?”

“अपनी कोठरी में लगाऊँगा और नित्य देखा करूँगा।
बस वही साड़ी पहनकर खिंचवाना जो कल पहनी
थी, और वही मोतियों की माला भी हो। मुझे नंगी
नंगी सूरत नहीं अच्छी लगती। आपके पास तो
बहुत गहने होंगे। आप पहनती क्यों नहीं ?”

“तो तुम्हें गहने बहुत अच्छे लगते हैं ?”

“बहुत।”

लाला जी ने फिर आकर जलते हुए मन से कहा—
अभी तक तुम्हारी रोटियाँ नहीं पकीं ? जुगल, अगर
कल से तूने अपने आप अच्छी रोटियाँ न पकाईं तो मैं
तुम्हें निकाल दूँगा।

आशा ने तुरन्त मुँह-हाथ धोया और बड़े प्रसन्न
मन से लाला जी के साथ गमले देखने चली। इस
समय उसकी छवि में प्रफुल्लता का रोगन था, बातों में
भी जैसे शक्कर घुली हुई थी। लाला जी का सारा
खिसियानापन मिट गया।

उसने गमलों को लुब्ध आँखों से देखा। उसने
कहा—मैं इनमें से कोई गमला न जाने दूँगी। सब
मेरे कमरे के सामने रखवाना, सब ! कितने सुन्दर
पौधे हैं, वाह ! इनके हिन्दी नाम भी मुझे
बतला देना।

लाला जी ने छेड़ा—सब गमले लेकर क्या करोगी ?
दस-पाँच पसंद करलो। शेष मैं बाहर रखवा दूँगा।

“जी नहीं। मैं एक भी न छोड़ूँगी। सब यहीं
रक्खे जायँगे।”

“बड़ी लालचिन हो तुम”

“लालचिन सही। मैं आपको एक भी न दूँगी।”

“दो-चार तो देदो। इतनी मेहनत से लाया हूँ।”

“जी नहीं, इनमें से एक भी न मिलेगा।”

(४)

दूसरे दिन आशा ने अपने को आभूषणों से खूब
सजाया और फीरोजी साड़ी पहनकर निकली तब लाला
जी की आँखों में ज्योति आ गई। समझे, अवश्य ही
अब उनके प्रेम का जादू कुछ कुछ चल रहा है। नहीं
उनके बार बार आग्रह करने पर भी, बार बार याचना
करने पर भी, उसने कोई आभूषण न पहना था। कभी
कभी मोतियों का हार गले में डाल लेती थी, वह भी
ऊपरी मन से। आज वह आभूषणों से अलंकृत
होकर फूली नहीं समाती, इतराई जाती है, मानो कहती
हो, देखो, मैं कितनी सुन्दर हूँ !

पहले जो बंद कली थी वह आज खिल गई थी।

लाला जी पर घड़ों का नशा चढ़ा हुआ था। वे
चाहते थे, उनके मित्र और बन्धुवर्ग आकर इस सोने
की रानी के दर्शनों से अपनी आँखें ठंडी करें। देखें
कि वह कितनी सुखी, संतुष्ट और प्रसन्न है। जिन
विद्रोहियों ने विवाह के समय तरह तरह की शंकायें
की थीं वे आँखें खोलकर देखें कि उंगामल कितना सुखी
है। विश्वास, अनुराग और अनुभव ने क्या चमत्कार
किया है !

उन्होंने प्रस्ताव किया—चलो कहीं घूम आयें।
बड़ी मजेदार हवा चल रही है।

आशा इस वक्त कैसे जा सकती थी ? अभी उसे रसोई में जाना था। वहाँ से कहीं बारह-एक बजे फुर्सत मिलेगी। फिर घर के दूसरे धन्धे सिर पर सवार हो जायेंगे। सैर-सपाटे के पीछे क्या घर चौपट करदे ?

• सेठ जी ने उसका हाथ पकड़ लिया, कहा—नहीं, आज मैं तुम्हें रसोई में न जाने दूँगा।

“महाराज के किये कुछ न होगा।”

“तो आज उसकी शामत भी आ जायगी।”

आशा के मुख पर से वह प्रफुल्लता जाती रही। मन भी उदास हो गया। एक सोफा पर लेटकर बोली—आज न जाने क्यों कलेजे में मीठा मीठा दर्द हो रहा है। ऐसा दर्द कभी नहीं होता था।

सेठ जी घबरा उठे।

“यह दर्द कब से हो रहा है ?”

“हो तो रहा है रात से ही, लेकिन अभी कुछ कम हो गया था। अब फिर होने लगा है।

“रह-रहकर जैसे चुभन हो जाती है।”

सेठ जी एक बात सोचकर दिल ही दिल में फूल उठे। अब वे गोलियाँ रंग ला रही हैं। राजवैद्य जी ने कहा भी था कि ज़रा सोच-समझकर इनका सेवन कीजिएगा। क्यों न हो ! खानदानी वैद्य हैं। इनका बाप बनारस के महाराज का चिकित्सक था। पुराने और परीक्षित नुस्खे हैं इनके पास ! उन्होंने कहा—तो रात से ही यह दर्द हो रहा है ? तुमने मुझ से कहा नहीं। नहीं वैद्य जी से कोई दवा माँगवाता।

“मैंने समझा था, आप ही आप अच्छा हो जायगा, मगर अब बढ़ रहा है।”

“कहाँ दर्द हो रहा है ? ज़रा देखूँ। कुछ सूजन तो नहीं है ?”

सेठ जी ने आशा के अंचल की तरफ हाथ बढ़ाया। आशा ने शर्माकर सिर झुका लिया। उसने कहा—यही तुम्हारी शरारत मुझे अच्छी नहीं लगती। मैं अपनी जान से मरती हूँ, तुम्हें हँसी सूझती है। जाकर कोई दवा ला दो।

सेठ जी अपने पुंसत्व का यह डिप्लोमा पाकर उससे कहीं ज्यादा प्रसन्न हुए, जितना रायबहादुरी पाकर होते। इस विजय का डंका पीटे बिना उन्हें कैसे चैन आ सकता था ? जो लोग उनके विवाह के विषय में द्वेषमय टिप्पणियाँ कर रहे थे उन्हें नीचा दिखाने का कितना अच्छा अवसर हाथ आया है और इतनी जल्दी ?

पहले पंडित भोलानाथ के पास गये और भाग्य ठाँक कर बोले—भई, मैं तो बड़ी विपत्ति में फँस गया। कल से उनके कलेजे में दर्द हो रहा है। कुछ बुद्धि काम नहीं करती। कहती हैं, ऐसा दर्द पहले कभी नहीं हुआ था।

भोलानाथ ने कुछ बहुत हमदर्दी न दिखाई।

सेठ जी यहाँ से उठकर अपने दूसरे मित्र लाला फागमल के पास पहुँचे और उनसे भी लगभग इन्हीं शब्दों में यह शोक-संवाद कहा।

फागमल बड़ा शोहदा था। मुसकराकर बोला—मुझे तो आपकी शरारत मालूम होती है।

सेठ जी की बाँखें खिल गईं। उन्होंने कहा—मैं अपना दुख सुना रहा हूँ और तुम्हें दिल्लगी सूझती है। ज़रा भी आदमियत तुम में नहीं है।

“मैं दिल्लगी नहीं कर रहा हूँ। भला इसमें दिल्लगी की क्या बात है ? वे हैं कमसिन, कोमलांगी, आप ठहरे पुराने लठैत, दंगल के पहलवान। बस। अगर यह बात न निकले तो मूँछें मुँड़ा लूँ।”

सेठ जी की आँखें जगमगा उठीं। मन में यौवन की भावना प्रबल हो उठी और उसके साथ ही मुख पर भी यौवन की झलक आगई। छाती जैसे कुछ फैल गई। चलते समय उनके पग कुछ अधिक मज़बूती से ज़मीन पर पड़ने लगे, और सिर की टोपी भी न जाने कैसे बाँकी होगई। आकृति से बाँकेपन की शान बरसने लगी।

(५)

जुगल ने आशा को सिर से पाँव तक जगमगाते देखकर कहा—बस बहू जी, आप इसी तरह पहने-ओढ़े रहा करें। आज मैं आपको चूल्हे के पास न आने दूँगा।

आशा ने नयन-बाण चलाकर कहा—क्यों, आज यह नया हुकम क्यों ? पहले तो तुमने कभी मना नहीं किया ।

“आज की बात दूसरी है ।”

“ज़रा सुनूँ, क्या बात है ।”

“मैं डरता हूँ, आप कहीं नाराज़ हो जायँ ।”

“नहीं नहीं कहो, मैं नाराज़ न होऊँगी ।”

“आज आप बहुत सुन्दर लग रही हैं ।”

लाला उंगामल ने असंख्य बार आशा के रूप और यौवन की प्रशंसा की थी, मगर उनकी प्रशंसा में उसे बनावट की गन्ध आती थी । वह शब्द उनके मुख से निकलकर कुछ ऐसे लगते थे, जैसे कोई पंगु दौड़ने की चेष्टा कर रहा हो । जुगल के इन सीधे-सादे शब्दों में एक उन्माद था, एक नशा था, एक चोट थी । आशा की सारी देह प्रकम्पित हो गई ।

“तुम मुझे नज़र लगा दोगे जुगल । इस तरह क्यों घूरते हो ?”

“जब यहाँ से चला जाऊँगा तब आपकी बहुत याद आयेगी ।”

“रसेई पकाकर तुम सारे दिन क्या किया करते हो ? दिखाई नहीं देते ।”

“सरकार रहते हैं, इसी लिए नहीं आता । फिर अब तो तुम जवाब मिल रहा है । देखिए भगवान् कहीं ले जाते हैं ।”

आशा की मुख-मुद्रा कठोर हो गई । उसने कहा—कौन तुम्हें जवाब देता है ?

“सरकार ही तो कहते हैं, तुम निकाल दूँगा ।”

“अपना काम किये जाओ । कोई नहीं निकालेगा । अब तो तुम फुलके भी अच्छे बनाने लगे ।”

“सरकार हैं बड़े गुस्सेवर ।”

“दो-चार दिन में उनका मिज़ाज ठीक किये देती हूँ ।”

“आपके साथ चलते हैं तो आपके बाप-से लगते हैं ।”

“तुम बड़े मुँहफट हो । खबरदार, ज़बान सँभाल कर बातें किया करो ।”

किन्तु अप्रसन्नता का यह मीना आवरण उसके मनोरहस्य को न छिपा सका । वह प्रकाश की भाँति उसके अन्दर से निकला पड़ता था ।

जुगल ने फिर उसी निर्भीकता से कहा—मेरा मुँह कोई बन्द कर ले । यहाँ तो सभी यही कहते हैं । मेरा ब्याह कोई ५० साल की बुढ़िया से कर दे तो मैं तो घर छोड़कर भाग जाऊँ । या तो खुद ज़हर खा लूँ या उसे ज़हर देकर मार डालूँ । फाँसी ही तो होगी ।

आशा उस कृत्रिम क्रोध को कायम न रख सकी । जुगल ने उसकी हृदय-वीणा के तारों पर मिजराब की ऐसी चोट मारी थी कि उसके बहुत ज़ब्त करने पर भी मन की व्यथा बाहर निकल आई । उसने कहा—भाग्य भी तो कोई वस्तु है ।

“ऐसा भाग्य जाय भाड़ में ।”

“तुम्हारा ब्याह किसी बुढ़िया से ही करूँगी । देख लेना ।”

“तो मैं भी ज़हर खा लूँगा । देख लीजिएगा ।”

“क्यों ? बुढ़िया तुम्हें जवान स्त्री से ज़्यादा प्यार करेगी, ज़्यादा सेवा करेगी । तुम्हें सीधे रास्ते पर रक्खेगी ।”

“यह सब मा का काम है । बीबी जिस काम के लिए है उसी काम के लिए है ।”

“आखिर बीबी किस काम के लिए है ?”

मोटर की आवाज़ आई । न जाने कैसे आशा के सिर का अंचल खिसककर कंधे पर आ गया था । उसने जल्दी से अंचल सिर पर खींच लिया और यह कहती हुई अपने कमरे की ओर लपकी—लाला भोजन करके चले जायँ तब आना ।

उपवन

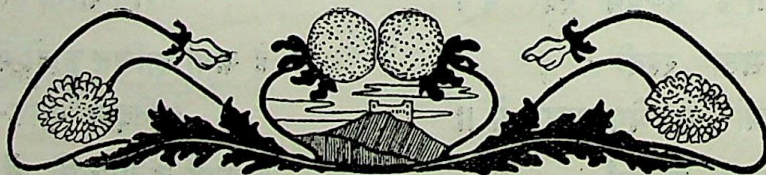
ठाकुर गोपालशरणसिंह

खिलती हैं गृह-उपवन में
 कल कोमल कोमल कलियाँ ।
 खेला करती हैं उनसे
 सुन्दर सुकुमार तितलियाँ ॥
 है हवा डोलती रहती
 फूलों की डाली डाली ।
 होती है कभी न खाली
 उनकी मदिरा की प्याली ॥
 हैं मधुप मचाते ऊधम
 क्या उनका हाल बतायें ।
 मृदु पल्लव-पाणि हिलाकर
 करती हैं मना लताये ॥
 वृक्षों से लिपटी बेलें
 हैं फूली नहीं समाती ।
 बढ़ती हो जाती हैं वे
 जब तक मुँह चूम न पाती ॥
 कोयलें बैठ डालों पर
 गाती हैं पञ्चम स्वर में ।
 है सुधा बरसती रहती
 तरुओं के प्रेम-नगर में ॥
 जो रङ्ग-विरङ्गी छवियाँ
 थीं छिपी हरित वसनों में ।

वे ही हो गई पकट हैं
 सुन्दर सुन्दर सुमनों में ॥
 सौरभ का कोश अपरिमित
 है पुष्पों के परिमल में ।
 कोमलता का आलय है
 नव कोमल किसलय-दल में ॥
 है खिंचा लोक सुखमा का
 लघु कलिका के नयनों में ।
 इतिहास अनेक छिपे हैं
 मृदु सुमनों के सु-मनों में ॥
 है अठखेलियाँ मचाती
 मलयानिल सर के जल में ।
 हिलती-डुलती रहती है
 सर की शोभा पल पल में ॥
 सर में शत-शत शतदल हैं
 सर की शोभा शतदल में ।
 हँसती-सी रवि की किरणें
 तैरा करती हैं जल में ॥
 है कभी ललित कुञ्जों में
 द्युतिदाम दमक-सा जाता ।
 है कभी लतापुञ्जों में
 चन्द्रमा चमक-सा जाता ॥

बादल-से काले-काले
 केशों को देख निराले ।
 नाचा करते हैं हरदम
 पालतू मोर मतवाले ॥
 हर फूल और पत्ते में
 हैं छिपी मञ्जु प्रतिमायें ।
 सीखा करती हैं उनसे
 लतिकाये सदा अदायें ॥
 तरु-शाखाओं पर नर्तन
 सीखती विहग-बालायें ।
 लगती हैं शून्य गगन में
 संगीत-पाठशालायें ॥
 क्रीड़ा करती हैं निशि में
 शशि की किरणें उपवन में ।
 होती है आँखमिचौनी
 मृदु मुकुलों के मधुवन में ॥
 है सुघर सुमन-शय्या पर
 सोती शोभा उपवन की ।

चाँदनी खड़ी हँसती है,
 प्रतिमा-सी भोलेपन की ॥
 खिलती हैं चम्पक-कलियाँ
 जलती हैं दीप-शिखायें ।
 कोमल गुलाब के दल पर
 होती हैं प्रेम-कथायें ॥
 वेला से वेला मिल कर
 खिल जाता है पल भर में ।
 हीरों का हार पहन कर
 है खड़ी चमेली घर में ॥
 मृदु गुञ्जन ही बस धन है
 काले काले अलियों का ।
 कोमलता ही जीवन है
 कोमल कोमल कलियों का ॥
 हैं भरी अतुल शोभायें
 सुन्दर सुरभित उपवन में ।
 तरु-तरु में, लता-लता में,
 तृण-तृण में, सुमन-सुमन में ॥

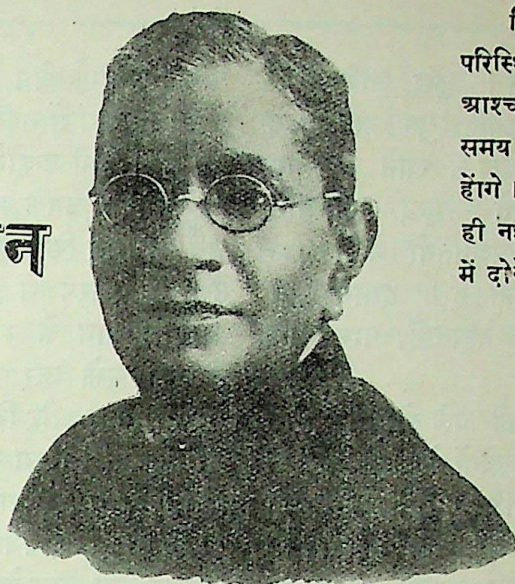


हिन्दू-धर्म

और

हरिजन

मुंशी ईश्वरशरण



हिन्दू-धर्म में अपने आपको परिस्थितियों के अनुकूल बना लेने की आश्चर्यजनक शक्ति है। उसमें समय-समय पर परिवर्तन हुए हैं और होंगे। डोम और ब्राह्मण बराबर ही नहीं हैं, बल्कि हिन्दू-धर्म की दृष्टि में दोनों एक हैं।

फारसी में एक कहावत है कि बुद्धिमान शत्रु मूर्ख मित्र से अच्छा होता है। बहुत से हिन्दू ऐसे हैं जिनकी वास्तविकता

की ओर उँगली उठाने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि हिन्दू-धर्म के लिए जिस प्रेम का वे दावा करते हैं उससे लाभ के बदले हानि ही अधिक है। हिन्दू-धर्म के ये हितैषी उस अपने धर्म की धाक को गिराते और उसकी प्रतिष्ठा को जोखिम में डालते हैं। ये बाल-विवाह का समर्थन करते हैं, विधवा-विवाह का विरोध करते हैं, समुद्र-यात्रा की निन्दा करते हैं और अन्तर्जातीय विवाह का चाहे वह एक ही जाति की विभिन्न उपजातियों में क्यों न हो, मज्जाक उड़ाते हैं। इतना ही नहीं, प्रत्येक उपयोगी सुधार को ये लोग हिन्दू-धर्म का घातक बताते हैं और प्रत्येक विचारणीय अवसर पर 'धर्मदूबा' 'धर्मदूबा' की पुकार मचाते हैं। नाम-मात्र की कट्टरता के ये स्तम्भ सरकार का दरवाजा भी खटखटाते हैं और उसको अपने पक्ष में लाने के लिए सब तरह के काल्पनिक सिद्धान्तों की दुहाई देते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह सारा दृश्य बहुत ही दुःखद है।

ये लोग यह भूल जाते हैं कि हिन्दू-धर्म का रहस्य उसके लचीलेपन में है। वह न कठोर है और न

सङ्कुचित। यह बढ़ता और फैलता हुआ धर्म है। आज का हिन्दू-धर्म सौ वर्ष पूर्व के हिन्दू-धर्म से सर्वथा भिन्न है। हिन्दूत्व के इस महान्

उद्देश में पूर्ण विश्वास रखने के कारण उसकी इस अद्भुत क्षमता का अनुमान करके मैं आनन्दित हो उठा हूँ। हिन्दू-धर्म में अपने आपको परिस्थितियों के अनुकूल बना लेने की आश्चर्यजनक शक्ति है। समय-समय पर इसमें परिवर्तन होते आये हैं। फिर भारतवर्ष के समस्त भागों में यह एक-सा है भी नहीं। उदाहरण के लिए संयुक्त-प्रान्त में इसके बहुत-से नियम मद्रास-प्रान्त में सर्वथा भिन्न रूप में मिलेंगे। संयुक्त-प्रान्त में कट्टर ब्राह्मण शूद्र के हाथ का पानी ग्रहण करता है और उससे अपना चौका-बर्तन भी कराता है, परन्तु दक्षिण में उसे इन सब बातों के करने की आज्ञा नहीं है। और उदाहरण मैं नहीं दूँगा। वे अगणित हैं।

यदि हम हिन्दू-धर्म के तात्त्विक और बाह्य रूपों को ध्यान में रखें तो हमें इस भेद का कारण तुरन्त विदित हो जायगा। बाह्य रूप परिस्थितियों के अधीन हैं, इसलिए वे बराबर बदलते रहते हैं। वे बदलते आ रहे हैं और हमारे कट्टर मित्रों की निना कुछ परवा किये हुए बराबर बदलते रहेंगे। मैं दो-एक उदाहरण देता हूँ। बम्बे का पानी लेने से अब कोई

जातिच्युत नहीं किया जाता। कुछ जातियों में समुद्र-यात्रा करने पर लोग जाति-च्युत नहीं किये जाते। कुछ जातियों में होटल में खाने से लोग जाति-बहिष्कृत नहीं किये जाते। कुछ जातियों में लोग अपनी ही जाति की उपजातियों में बालक-बालिकाओं का व्याह कर सकते हैं। हमारे कट्टर मित्र इन परिवर्तनों पर आँसू बहाते हैं, परन्तु मुझे इनसे प्रसन्नता होती है।

यदि हमारे कट्टर भाइयों की चले तो वे समस्त प्रतिभावान् और बुद्धिमान् लोगों को हिन्दू-धर्म से निकाल बाहर कर दें। यदि हिन्दू-धर्म-सम्बन्धी उनकी धारणा का मान किया जाय तो कोई भी व्यक्ति समुद्र पार करने पर या अपनी कन्या का सोलह वर्ष की अवस्था में व्याह करने पर जाति-च्युत कर दिया जा सकता है। इसी प्रकार समस्त ब्राह्मण भी व्यवसाय और व्यापार से हटा दिये जा सकते हैं। ये कट्टर पन्थी लोग तर्क की भी परवा नहीं करते। इनका इस बात से भी कोई प्रयोजन नहीं कि हमारे पवित्र धर्म के महान् उद्देशों का सभ्य संसार में कैसा स्वागत होता है। ये जिस कूप के मंझूक हैं उससे बाहर निकलने के लिए तैयार ही नहीं हैं।

यदि हिन्दू-धर्म जैसा कि वे कहते हैं, प्रगति-विरोधी है तो उसका नाश अवश्यम्भावी है। यदि हिन्दूत्व चौका, अस्पृश्यता, बाल-विवाह, विधवा-विवाह-विरोध और जात-पाँत की कड़ाई में कैद है तो यह स्पष्ट जानिए कि बहुत-से महामना और सच्चे हिन्दुओं का उससे विश्वास उठ जायगा और वे यह नहीं स्वीकार करेंगे कि उस धर्म में मानवता के लिए कोई उत्साह-वर्द्धक बात मिलेगी।

और आगे बढ़ने से पूर्व मैं अपने कट्टर भाइयों से दो-एक प्रश्न करना चाहता हूँ। वे अपनी शक्ति को व्यभिचार, घूसखोरी आदि बुराइयों के दूर करने में क्यों नहीं लगाते? क्या उन्होंने कभी किसी उच्च वर्ण के हिन्दू के विरुद्ध जिसे चोरी या जालसाजी में सजा मिली है, आवाज उठाई है। सुधारकों पर ही

अपना सम्पूर्ण क्रोध वे क्यों उतारते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर यहाँ मैं नहीं दूँगा।

क्या कभी उन्होंने इस बात पर विचार किया है कि संसार में उनके कार्यों के परिणाम-स्वरूप हिन्दू-धर्म का चित्र किस रूप में उपस्थित किया जा रहा है। मैं योरप में रह आया हूँ और मैं उस दुःख और अपमान के भाव को कभी भूल न सकूँगा जिसका मुझे उस समय कटु अनुभव होता था जब मेरे बुद्धिमान् और शिक्षित योरपीय मित्र मुझसे यह प्रश्न करना आरम्भ करते थे कि क्या यह सत्य है कि कुछ हिन्दू धर्म के नाम पर दूसरे हिन्दुओं को चाहे वे कितने ही स्वच्छ क्यों न हों, छूने से इनकार करते हैं। मैं उन्हें क्या उत्तर देता? वे पूछते थे—“मान लीजिए, नीची जाति के लोगों में से कोई खूब स्नान करके स्वच्छ और सुन्दर वस्त्र धारण करके चले तो क्या तब भी कुछ लोग उसका स्पर्श करना पसन्द न करेंगे। इसमें बुद्धि की बात क्या है? इसमें तर्क क्या है?” एक उच्च कोटि के धर्म के संसार की दृष्टि में इस प्रकार तिरस्कृत होते देखना बड़ा कष्टकर होता था। परन्तु कदाचित् हमारे कट्टर भाइयों को इससे कोई प्रयोजन नहीं कि सभ्य संसार हिन्दू-धर्म की प्रशंसा करता है या निन्दा।

सबसे बड़े अपमान की बात तो यह है कि हिन्दू-धर्म के सुन्दर सिद्धान्तों को वे कीचड़ में घसीटे लिये जा रहे हैं। अभी उस दिन वे हिज एक्सेलेन्सी वायसराय के पास एक डेपुटेशन लेकर गये थे और उनसे कहा था कि हिन्दुओं के कर्म के सिद्धान्त के अनुसार हरिजन के भाग्य में सुधार नहीं हो सकता। वे अपने पूर्व-कर्मों के फलस्वरूप इस अवस्था को प्राप्त हुए हैं और इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। ऐसे व्यक्तियों-द्वारा जो प्रत्यक्षतः उत्तरदायी जान पड़ते हैं, इस प्रकार की काल्पनिक आपत्तियों का उपस्थित किया जाना असह्य है। आत्म-तुष्टि के इस सिद्धान्त को या तो वे समझते हैं या नहीं समझते। यदि इसका उन्हें कोई बौद्धिक ज्ञान नहीं है तो उनका कर्तव्य

यह है कि वे इसकी चर्चा करना छोड़ दें। यदि वे इसे समझते हैं, पर जान-बूझ कर इसका मिथ्या अर्थ लगाते हैं तो इसके लिए उनकी जितनी निन्दा की जाय, थोड़ी है। एक मनुष्य बीमार पड़ता है। यह बीमारी उसके पूर्व-जन्म का फल बताई जाती है। क्या हम उस मनुष्य को कर्म के नाम पर कष्ट सहने दें? इसका तार्किक परिणाम यह होगा कि सब अस्पताल बन्द हो जायेंगे और वैद्यों तथा डाक्टरों को दूसरे काम ढूँढ़ने पड़ेंगे। प्रत्येक पुरुष या स्त्री को पूर्व-जन्म के कर्म के मतानुसार फल मिलता है। डेपुटेशन ले जानेवालों के अनुसार इसमें किसी पुरुष या स्त्री को सुधार करने का प्रयत्न न करना चाहिए। भूखे मनुष्य को आप भोजन क्यों देते हैं? कोई दान आप क्यों करते हैं? हमारे कट्टर भाइयों के विश्वास के अनुसार इससे कर्म के मार्ग में बाधा पड़ती है। यह स्थिति कितनी हास्यास्पद है, यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है।

फिर वे सरकार से एक ऐसा कानून पास करने के लिए क्यों नहीं कहते कि कोई ब्राह्मण किसी प्रकार का रोजगार न करने पावे। कोई वैश्य क्यों प्रोफेसर हो। कोई क्षत्रिय हल क्यों चलावे? कर्म के सिद्धान्त के अनुसार जो मनुष्य जिस जाति में उत्पन्न हो वह उसी के कार्य को करे। क्या डेपुटेशन ले जानेवाले यही चाहते हैं? भारत अपने पूर्व-कर्म की बदौलत ब्रिटेन के अधीन हो गया है। वह स्वाधीन होने का प्रयत्न क्यों करे? परन्तु कदाचित् हमारे ये दक्षियानूसी भाई भारत की स्वाधीनता के लिए ज़रा भी चिन्तित नहीं हैं।

फिर वे किसी पवित्र या धार्मिक मामले में कानून बनवाने के विरुद्ध हैं। कोई भी समझदार व्यक्ति यह नहीं कहता कि बिना सोचे-विचारे या एक तरफ से सभी पवित्र और धार्मिक मामले कानून के अधीन कर दिये जायें। उदाहरण के लिए कोई पर्दे के या वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध कानून नहीं बनवाता। परन्तु इसके साथ ही यह भी सत्य है कि जहाँ अमानुषिक

कार्य्य हो रहे हों, वहाँ कोई भी समझदार व्यक्ति सरकार से हाथ पर हाथ धर कर बैठने का आग्रह नहीं कर सकता। क्या सरकार सती की निर्दय प्रथा को न रोकती तो उसकी प्रशंसा होती? क्या सरकार बाल-विवाह न रोक कर उचित करती? धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति का एक सीमा के बाहर समर्थन नहीं किया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात भी है, जो दृष्टि से दूर नहीं की जा सकती। यदि मार्ग में कुछ कानूनी रुकावट हैं तो यह स्पष्ट है कि वे कानून-द्वारा ही दूर की जा सकती हैं। आश्चर्य्य की बात तो यह है कि धार्मिक या पवित्र मामलों में जहाँ वे प्रचलित कानून से लाभ उठाने के लिए तैयार हैं, वहाँ वे किसी कानून के उठाने के प्रश्न का विरोध यह कह कर करते हैं कि सरकार को धार्मिक या पवित्र मामलों में हस्तक्षेप न करना चाहिए। लेजिस्लेटिव असेम्बली में जो बिल इस समय उपस्थित हैं वे प्रतिबन्ध-मूलक नहीं हैं। वे किसी को अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई भी कार्य्य करने के लिए विवश नहीं करते। डेपुटेशनवालों की माँग है—“मीठा मीठा गप्प कडुवा कडुवा थू।” प्रत्येक पक्षपात-रहित, विवेकशील, दूरदर्शी और धर्मप्रेमी हिन्दू को इन बिलों का समर्थन करना चाहिए। अपनी धार्मिक और सामाजिक व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में मैं अपनी शक्ति भर सरकार के हस्तक्षेप का विरोध करने को तैयार हूँ। परन्तु कुछ मामले ऐसे हैं जिनमें सरकार की सहायता प्राप्त करना अनिवार्य्य रूप से आवश्यक है। उक्त बिल इसी प्रकार के हैं।

क्या हमारे मित्र यथा नामा तथा गुणः हैं? वे अँगरेज़ी अदालतों में गोद लेने, उत्तराधिकार और विवाह आदि का प्रश्न क्यों हल करवाते हैं? वे अँगरेज़ी अदालतों में इस बात का फैसला क्यों करवाते हैं कि किस मन्दिर का कौन महन्त है? ये प्रश्न सर्वथा धार्मिक हैं, तो भी ब्रिटिश अदालतों में इन पर सबैव

विचार होता रहता है। परन्तु इसके विरुद्ध इन भले मानुसों के मुख से एक शब्द भी नहीं निकलता।

सच बात यह है कि इस दिशा में सरकार के उदासीन रहने की चिल्लाहट इसलिए मची हुई है कि अछूतोंद्वारा का कार्य रुक जाय। हमारे दकियानूसी मित्र चाहते हैं कि हमारे ये अभागे सहधर्मी सदैव इसी प्रकार की निर्दय कठिनाइयों में पड़े रहें। वर्तमान सामाजिक प्रथा ने उनके अन्तःकरण को मुर्दा कर दिया है। परम्परा ने उनकी न्याय-भाषना को नष्ट कर दिया है। दलित वर्णों की दयनीय दशा का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हरिजनों की कष्टकर दशा से उनका हृदय नहीं हिलता, यद्यपि वे भी उतने ही हिन्दू हैं जितने कि डेपुटेशन ले जानेवाले।

उनकी अवस्था अत्यन्त दुःखद है। प्रयाग के गत माघमेले में अपने एक मित्र के साथ मैंने घूम घूमकर मेहतरों के कैम्प देखे और उनसे बातें कीं। पहले तो उन्हें हम पर सन्देह हुआ, पर जब उन्हें यह ज्ञात हो गया कि हम लोग उनकी सेवा करने के भाव से निकले हैं तब वे दिल खोल कर हमसे बातें करने लगे। वे कहते थे—“हमारे लिए आप क्यों चिन्तित हैं? हमें अपने भाग्य के भरोसे पड़ा रहने दीजिए। हम ठोकरें खाने के लिए और गालियाँ सुनने के लिए पैदा हुए हैं। हमारा जीवन इसी अवस्था में बीतेगा और हम इस दयनीय दशा में मरेंगे। हमारे लिए कोई आशा नहीं है।” उनकी इस असमर्थता और दुःखद अवस्था का हम पर जो प्रभाव पड़ा उसका हम न तो वर्णन ही कर सकते हैं और न उसे कभी भूल ही सकते हैं। जो देश और जो धर्म इस हृदयहीनता के साथ इस कष्ट और असमर्थता को बने रहने देता है उसकी उन्नति के लिए क्या मार्ग है?

हरिजनों की हिन्दू-धर्म में कितनी श्रद्धा है। इस विषय में जो लिखा जाय, थोड़ा है। इन सम्पूर्ण कठिनाइयों और विपत्तियों के होते हुए भी वे हिन्दू-धर्म का पल्ला पकड़े हुए हैं। इस धर्म के प्रति उनका

विश्वास सराहनीय है और उनकी भक्ति अकाट्य है। हरिजनों की अपील सुनने से कोई हिन्दू कैसे इनकार कर सकता है? इस अस्पृश्यता के अभिशाप से कोई हिन्दू अपने धर्म को कब तक कलङ्कित रख सकता है? जब तक हरिजनों पर इस प्रकार के अत्याचार हो रहे हैं तब तक कोई हिन्दू चुप कैसे रह सकता है?

दूसरे धर्मों की ओर देखिए। ईसाई मत को लीजिए। संयुक्त-प्रान्त में यदि कोई मेहतर ईसाई हो जाय तो किसी भी गिर्जे का द्वार उसके लिए बन्द नहीं किया जायगा। इस्लाम अत्यन्त प्रजातन्त्रवादी धर्म है ही।

यदि कोई मेहतर मुसलमान-धर्म ग्रहण करके पवित्र मक्का में जाय और पहले पहुँचने से नमाज के लिए सबसे आगे की कतार में खड़ा हो जाय और उसके पश्चात् किसी स्वाधीन देश का बादशाह आवे तो वह उस मेहतर के पीछे की ही कतार में खड़ा होगा और उससे यह कहने का साहस न करेगा कि वह उसके सामने से हट जाय। तब यदि ये दोनों धर्म फैल रहे हैं और इनके माननेवालों की संख्या बढ़ रही है तो इसमें आश्चर्य की बात क्या है? हिन्दू-धर्म की क्या अवस्था है? कदाचित् हमारे दकियानूस मित्र उसकी वर्तमान अवस्था से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होंगे। पर मैं नहीं हूँ।

हिन्दू-धर्म का मान और भक्ति करने में मैं किसी से कम नहीं हूँ। परन्तु मेरा हिन्दू-धर्म उन लोगों के हिन्दू-धर्म जैसा नहीं है जो महात्मा गांधी और उनके सहयोगियों के विरुद्ध चिल्ल-पों मचा रहे हैं। मेरा हिन्दू-धर्म अन्धविश्वास से मुक्त है। बाह्य नियमों या क्रियाओं का धर्म से मैं कोई सम्बन्ध नहीं मानता। मैं चूल्हे-चौके के नियमों को न मानते हुए भी हिन्दू रह सकता हूँ। मैं जिस देश में चाहूँ वहाँ जाकर और जितने समुद्र चाहूँ उतने पार करके भी हिन्दू बना रह सकता हूँ। जिसे मैं पसन्द करूँ उसके साथ ब्याह करके भी मैं हिन्दू रह सकता हूँ। मैं उस

हिन्दू-धर्म में विश्वास करता हूँ जो मुझे स्वाधीनता प्रदान करता है और मेरे कार्यों में रुकावट नहीं डालता। मेरे हिन्दू-धर्म ने भारत के ही नहीं, बल्कि समस्त सभ्य संसार के शिक्षित व्यक्तियों को आध्यात्मिक शान्ति दी है, दे रहा है और देगा। भारतवर्ष ने संसार को जो सबसे बड़ी वस्तु दी है वह है उसका उच्च और शान्ति-प्रदायक हिन्दू-धर्म। यही कारण है कि जब मैं अपने पवित्र धर्म के माननेवालों के साथ धर्म के नाम पर बोझा ढोनेवाले पशुओं से भी अधिक बुरा व्यवहार होता हुआ देखता हूँ तब मेरी आत्मा को वर्णनातीत कष्ट पहुँचता है। हिन्दूत्व का विनाश करना भारतवर्ष की आत्मा का हनन करना है। संसार उत्सुकता के साथ हिन्दू-धर्म के व्यावहारिक सन्देश की प्रतीक्षा कर रहा है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हमारे ये कट्टर भाई उसे अपने चंगुल से निकलने दें। वह सन्देश क्या है? हिन्दू-धर्म यह शिक्षा नहीं देता कि अपने पड़ोसी को अपनी भाँति प्यार करो, बल्कि यह शिक्षा देता है कि मैं और मेरा पड़ोसी दोनों एक ही हैं। यह मैं और तुम का भेद मिटाता है। हिन्दू-धर्म का सत्य सन्देश यदि सबके श्रवणों तक पहुँचाया जा सके तो संसार में युद्ध ही नहीं, बोलशेविज्म भी अनावश्यक वस्तु हो जाय। यह संसार में प्रेम और सहिष्णुता के राज्य को स्थापित करेगा और जातियों के संघर्ष को मिटा देगा। इस हिन्दूत्व के लिए मैं अपने भाइयों के हरिजनों के प्रति बुरे भाव को कष्ट के साथ अनुभव करता हूँ।

संसार में ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसमें इस प्रकार के दुर्व्यवहार से पूर्ण बातों का समर्थन किया गया हो। यह सच है कि अमरीका में हबिशियों की अवस्था दयनीय है। परन्तु वहाँ भी एक बात ध्यान देने की यह है कि कोई ईसाई-धर्म के नाम पर हबिशियों के साथ अनुचित व्यवहार नहीं करता।

परन्तु हिन्दू-धर्म में हरिजनों के साथ अनुचित व्यवहार करने की व्यवस्था बताई जाती है। धर्म के नाम पर यहाँ सुधार का विरोध किया जा रहा है और उसी धर्म के नाम पर सरकार को ललकारा जा रहा है कि वह हरिजनों को दवाना जारी रखे। हिन्दू होने के कारण इन बातों से मैं कष्ट ही नहीं, अपमान का भी अनुभव करता हूँ। ओह! कितनी लज्जा की बात है!

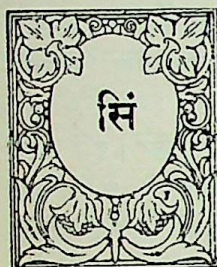
हमारे दकियानूसी भाई जो चाहें करें। हमें उनके कार्यों के लिए दुःख है। परन्तु हमने अस्पृश्यता का नाश करके समस्त हिन्दू-जाति की सेवा करने का निश्चय किया है। हमें सब हिन्दू बराबर प्यारे हैं। जब हिन्दू धर्म से अस्पृश्यता और अन्य बुराइयाँ निकल जायँगी तब यह संसार को सबसे महान आत्मिक शक्ति का परिचय देगा। तब सम्पूर्ण सभ्य जगत् के लोग इससे शान्ति और उत्साह प्राप्त करेंगे। तब यह संसार में इस बात की घोषणा करेगा कि डोम और ब्राह्मण बराबर ही नहीं हैं, बल्कि हिन्दू-धर्म की दृष्टि में दोनों एक हैं।

इसलिए मैं विनम्रता-पूर्वक उन समस्त लोगों से जो हिन्दू-धर्म और हरिजनों की उन्नति के इच्छुक हैं, निवेदन करूँगा कि वे महात्मा गान्धी के अछूतोद्धार के कार्य में योग दें। इस समय इसके लिए हमारे सामने एक अपूर्व अवसर उपस्थित है। महात्मा गान्धी के समान महापुरुष किसी देश या काल में प्रतिदिन नहीं पैदा होते। उनके कटु से कटु विरोधी भी यदि वे न्यायी हैं, उनके आश्चर्य-जनक व्यक्तित्व को स्वीकार करेंगे। जेल के भीतर से ही इतने कम समय में उन्होंने अस्पृश्यता को भयङ्कर रूप से हिला दिया है। इसका अन्त निश्चित है, यद्यपि वह केवल समय का प्रश्न है। इसके अन्त-काल को हम जितने निकट ला सकें, हमें लाना चाहिए।



ज्योत्स्ना

श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त



दूरी रंग के अस्ताचल पर, गेरू की ईंटों से निर्मित सन्ध्या का एकान्त-निवास, उत्तर, दक्षिण, पूर्व की ओर तीन बड़े बड़े वृत्तचूड़ झरोखे, जिनमें हलके धानी रंग के परदे दूरवर्ती दिगन्त का आभास दे रहे हैं। पश्चिम की

ओर प्रवाल का विशाल प्रवेश-द्वार, जिसके ऊपरी भाग में अर्धवृत्ताकार लाल पोतों की लड़ियाँ झूल रही हैं। आसमानी रेशम की छत पर, इधर-उधर, साँझ के बादलों की टुकड़ियों की तरह, रेशमी गुलाबी जालियाँ लटक रही हैं; बीच बीच में दो-तीन उड़ते हुए पक्षियों के चित्र भी कढ़े हैं।

मूँगे के फर्श पर, धुनी हुई रुई की तरह, ढेर का ढेर कोमल सुनहला प्रकाश पड़ रहा है; जिस पर गेरूवे मलमल की धोती पहने प्रौढ़ उम्र की सन्ध्या, निष्कम्प दीप-शिखा की तरह, दत्तचित्त बैठी है। मृणाल-सी लम्बी, पतली, खुली बाँहें; वक्षस्थल के साँझ के सरोजमसृण सुनहली कन्चुकी से कसे; दमकते हुए भाल पर दो-एक चिन्ता की रेखायें; भौंहें पतली, कुछ अधिक झुकी हुई; स्निग्ध, शारद आनन; शान्त, गम्भीर मुद्रा; कपोलों, कन्धों एवं पृष्ठभाग पर रुपहले-सुनहले बाल बिखरे हुए।

सामने एक बड़ा-सा नीले रेशम का चँदोवा फैला

है, जिस पर वह, कुछ चिन्तितभाव से, चाँदी के तार से सितारे काढ़ती एवं उत्सुक-दृष्टि से, बार-बार, बाहर की ओर देखती जाती है।

प्रवेश-द्वार के सामने दूर तक फैला हुआ आँगन, जिसमें यत्र-तत्र कुन्द, बेला, जुही, चमेली की अधखिली कलियाँ महक रही हैं। एक ओर खूँटे पर बँधी, गेहूँ के रंग की गाय, आराम से लेटे लेटे जुगाली कर रही है, दूसरी ओर सोने की किरणों का एक बड़ा-सा खाली पिंजड़ा पड़ा है। चहारदीवारी के बाहर चारों ओर आम्र, अशोक, वट, पीपल आदि वृक्षों की श्रेणी, क्षितिज-रेखा की तरह, फैली है, जिसके अन्तराल से अस्तमित किरणें स्वर्ण-निर्झर की तरह फूट पड़ रही हैं।

नेपथ्य से संगीत-ध्वनि सुनाई पड़ती है; सिर से पाँव तक लटकते हुए बारीक, ढीले, जाली के लबादे की तरह, एक असाधारण लम्बी और दुबली स्त्री-आकृति, वृक्षों के झुरमुट से बाहर निकल कर, गाती हुई आँगन में इधर-उधर टहलने लगती है। यह स्त्री-आकृति छाया है, जो दोपहर की धूप को सह सकने में असमर्थ होने के कारण,

दिन भर पेड़ों के नीचे सो रहने के बाद, इस समय स्निग्ध-सन्ध्या का उपभोग करने के लिए बाहर निकल पड़ी है और बहुत प्रसन्न जान पड़ती है। दोपहर के आलस्य की शिथिलता को मिटाने के लिए, बार-बार अपने कुम्हलाये हुए अङ्गों को खींच कर ही मानो उसने अपनी

आकृति इतनी लम्बी बना ली है। वह अपनी स्वच्छन्दता के सुख को कभी गा कर, कभी ताली देकर, कभी हँसकर, कभी कलियों की माला गूँथ कर, तरह-तरह से प्रकट करती है।

गीत, पीलू, ताल दादरा।

अलस-पलक, सघन-अलक,

श्यामल-छवि छाया।

स्वमिल मन, तन्द्रिल तन,

शिथिल वसन भाया।

जीवन में धूप-छाँह,

सुख-दुख के गले बाँह;

मिटती सुख की न चाह

अमिट मोह-माया।

जग के मग में उदास,

आओ यदि पान्थ! पास,

हूँ सकल ताप-त्रास,

शीतल हो काया।

[छाया गाती एवं

माला गूँथती हुई प्रवेश-

द्वार से अन्दर प्रवेश

करती है।]

सन्ध्या—कौन, छाया?

छाया—(सन्ध्या के

खुले बालों में बेला

की कलियों की माला

पहनाती हुई नमस्कार-

पूर्वक) हाँ, मैं हूँ जीजी!

सन्ध्या—(प्रसन्नता-

पूर्वक छाया की ओर आँख उठाकर) आज का वेश तो तेरा बड़ा विचित्र है री!

छाया—(चाटु तुष्टि से) मेरे लबादे को कहती है?

यह वसन्त के नये कोपलों की परछाई है जीजी!

सुबह मैं उठी तब देखा कि मेरे अङ्गों में नया लबादा

झूल रहा है! घर की छत के छिद्र एक हरी-भरी

मरमराहट से भर गये हैं, उनसे अब धूप नहीं टपकती।

इधर-उधर छितरी हुई शिशिर की धन्त्रियों और कड़ियों में सर्वत्र हरियाली छा गई है। पैरों के नीचे कोमल कोमल नया फर्श अङ्कुरित हो उठा है। मारे खुशी के मेरे कुम्हलाये हुए अङ्ग जैसे खिल उठे। उन पल्लवों की अस्फुट मर्मर से स्वर मिला कर मैं कब तक गाती रही, कब दोपहर हुआ, कब सो गई—कुछ भी याद नहीं। दिन भर नये बौरों की सुगन्ध के साथ भौरों की गूँज ने मन में

पैठकर कितने ही स्वप्नों की सृष्टि कर डाली! दिन ढल चुकने पर जब आँखें खुलीं तब किसी तरह आलस की थकान को दूर कर आपसे मिलने चली आई।

सन्ध्या—मैं पहले ही समझ गई थी री, तेरे स्वर में अब चिकने पत्तों का मर्मर और नये वसन्त का उल्लास आ गया है।

छाया—मैं कभी एक-सी नहीं रह सकती जीजी! प्रत्येक घड़ी बदलती रहती हूँ! जब जैसी हवा चलती है, अपने को वैसा ही पाती हूँ। मैं क्या हूँ, यह मैं स्वयं नहीं जानती।

सन्ध्या—(स्नेहयुक्त तिरस्कार से) इसी लिए तो तुम्हें मायाविनी कहते हैं।

छाया—(हँसती है) किन्तु आपको सदैव एक ही सा देखती आई हूँ जीजी! शिशिर-वसन्त, शीत-ताप, बाल्य-यौवन से परे, इस कर्म और आकांक्षामय विश्व के अस्ताचल पर आपका आसन पहले ही से अटल है। आपके इस तापसी-वेश और सेवा-मूर्ति के सम्मुख सूर्य



श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त

का प्रकाश भी मन्द पड़ जाता है। और वे इस विश्व-चक्र के साथ भ्रमित होते रहने पर भी आपके श्रीचरणों में विनत-पद्म की अञ्जलि देना नहीं भूलते।

सन्ध्या—(सितारे काढ़ती हुई) तू आज-कल वाक्-चतुर भी हो रही है।

छाया—(ध्यानपूर्वक नीले रेशम के चँदोवे को देखती हुई, उसका एक सिरा हाथ में लेकर) लेकिन, आज यह क्या देख रही हूँ जीजी? तुम्हारे छत्र की छाया तो अपनी ही नीरव शान्ति के लिए विख्यात है। उसमें यह लोलुप आँखों की उत्सुकता कहाँ से आगई? मेरी ओर कोई इस तरह आँखें फाड़ फाड़ कर देखे तो मैं सहमकर मर जाऊँ। इसी लिए रजनी जीजी के यहाँ—

सन्ध्या—तुम्हें नहीं मालूम क्या, आज चैत की पूनो है? तू तो इन्दु को जानती ही है। आज—

छाया—जानती क्यों नहीं, रजनी जीजी के अनुरूप ही उनका लाड़ला लड़का है, जिसे तुलार से चन्दो चन्दो कहकर उन्होंने आसमान पर चढ़ा दिया है। विलास की सजीव प्रतिमा! उसके कलङ्क की बात भला संसार में किससे छिपी है?

सन्ध्या—दुर, पगली! तू कला के महत्त्व को क्या समझे! इन्दु का सौन्दर्य-बोध और कला-प्रेम तो स्वर्ग में भी प्रसिद्ध है। इसी से उसे कलाधर, कलानाथ की उपाधि मिली। संसार को उसी ने पहले सौन्दर्य की सम्मोहन-शक्ति का परिचय दिया। उसी ने जड़, निश्चेष्ट जीवन के समुद्र में उच्चाकाङ्क्षाओं की तरङ्गें उठाईं। मनुष्य का हृदय अनन्त-काल से इच्छाओं में लहराता रहा है, इन्दु ने ही प्रवृत्ति के सौन्दर्य को पहचान कर उसे अपनी कला से सजीव किया।

छाया—मैं क्या जानूँ, जीजी! जीवन क्या है, कला क्या है। मैं तो पूछ रही थी—

सन्ध्या—वही तो तुम्हें समझा रही थी। सुन, आज चैत्र-पूर्णिमा है। आज इन्द्र अपने शासन की बागडोर अपनी बहू ज्योत्स्ना को देनेवाला है। उसी के राज्याभिषेक के लिए मैं यह छत्र बना रही हूँ। आज से संसार में आदर्श साम्राज्य स्थापित होगा। ज्योत्स्ना के

जीवन का ध्येय विलास नहीं, प्रेम है। वह अपने साम्राज्य में स्नेह, सहानुभूति, सौन्दर्य आदि उन्नत भावनाओं का प्रचार करेगी।

छाया—(आश्चर्य से) ज्योत्स्ना का राज्य? वही जिसे गाँव भर में जुन्हाई, जन्हाई न जाने क्या कहते हैं। उसी ज्योत्स्ना का आदर्श साम्राज्य?

सन्ध्या—हाँ, आदर्श साम्राज्य! वह मनुष्य के हृदय में नवीन कल्पना, नवीन उच्छ्वास, उसके पलकों में नवीन सौन्दर्य, नवीन स्वप्नों की सृष्टि करेगा। पशु-प्रवृत्तियों से मनुष्य को ऊपर उठा कर उसके स्वभाव को परिमार्जित बनायेगा। चारों ओर स्नेह, सुख, सौन्दर्य, और संगीत का सागर उमड़ उठेगा। एक शब्द में, संसार में स्वर्ग उतर आयेगा।

छाया—(सुख और आश्चर्य से) संसार में स्वर्ग? क्या ऐसा सम्भव हो सकता है जीजी?

सन्ध्या—संसार कभी से आदर्श स्थिति के स्वप्न देखता आ रहा है। मनुष्य अपनी उर्वरा बुद्धि के अनेक वाद-विवादों, हृदय की अनेक भावनाओं-कल्पनाओं से निर्मित एक सब प्रकार से पूर्ण एवं आदर्श परिस्थितियों के लोक में रहना चाहता है। समय समय पर उसने जीवन की पूर्णता को अनेक स्वरूप दे डाले हैं। एक बार वह आदर्श स्थिति का भी अनुभव कर ले। (गम्भीर होकर) विधाता के विधान का रहस्य अज्ञेय है। छाया! मैं अनादि-काल से देखती आई हूँ कि संसार में चिरकाल तक कोई भी 'वाद' नहीं ठहर सकता, इससे सृष्टि के स्वतन्त्र विकास में बाधा पड़ती है।

[सहसा दक्षिण की खिड़की का परदा हिलने लगता है। पवन झरोखे से कूद कर अन्दर आता है। पवन सुन्दर, स्वस्थ, स्मितमुख युवक, वदन में हलके आसमानी रंग की जाली पड़ी है, जिसमें झंझर-उधर फूलों का केसर लगा है? घुँघुराली अलकों में कलियाँ उलझीं; हाथ में आम की मञ्जरी; गले में धनुष। पवन के प्रवेश करते ही कमरा सुगन्ध से भर जाता है, वह गहरी गहरी साँसें ले रहा है।]

पवन—(स्नेह-मिश्रित स्वर में) चाची! ओ चची!

अपने
उन्नत
वही
कहते
हृदय
को में
पशु-
व को
नीन्दर्य,
संसार
स्वर्ग ?
स्वप्न
अनेक
ओं से
थितियों
उसने
हैं।
र ले।
अज्ञेय
संसार
इससे
लगता
पवन
समानी
हों का
उलझी;
वन के
गहरी
चची।

[छाया पवन को देखकर सहसा कांपने लगती है। पवन अट्टहास कर छाया को डराने के अभिप्राय से अपने दोनों हाथ उसे पकड़ने के लिए फैलाकर उसके चारों ओर घूमने लगता है। छाया भयभीत होकर द्वार की ओर भागती है।]

सन्ध्या—ओ गँवार, ओ धूर्त !—

छाया—(आँगन की ओर दौड़ती हुई) जाती हूँ, जाती हूँ !

सन्ध्या—(आर्द्र स्वर में) अच्छा, छाया ! जाओ। तुम दोनों तो एक साथ रह ही नहीं सकते !

छाया—(रुष्ट होकर) धूर्त अन्धड़ का कुपूत ! संसार भर के कूड़े की टोकरी ढोनेवाला !

[पेड़ों की आड़ में जाकर ओझल हो जाती है।]

पवन—(सन्ध्या के अञ्चल-छोर को मकोरता हुआ) थक गया हूँ, चाची ! थक कर चूर चूर हो गया हूँ।

सन्ध्या—(स्नेह के उपालम्भ से) थकेगा नहीं तो क्या होगा ! एक जगह तेरे पाँव भी रहते हैं ? दिन भर धूप में अवारा की तरह फिरता है !

पवन—(हाथ पर हाथ मार कर) आज दिन भर शिकार के पीछे जंगलों में भटकता रहा ! जिधर निकला, उसी ओर भयभीत हिरनों के झुण्ड की तरह डेर के डेर पत्तों को मार उड़ाया ! वन की भोली-भाली प्रजा डर से धरधर कांप कर पीली पड़ जाती थी ! बड़ा आनन्द रहा ! मारे प्यास के गला सूख गया तब एक बड़ी-सी झील में कूद पड़ा। लहरों के फनों पर सवार होकर उन्हें नचाया। इस कालीदमन के बाद घण्टों फेन की गोलियाँ बना बनाकर मछलियों को छुकाता रहा। जब जी ऊब गया तब बहुत देर तक पके हुए गोहूँ और सरसों के खेतों में जाकर झूलता रहा। अभी घर को लौट रहा था, रास्ते में दक्षिण की ओर, नदी के किनारे, कुछ बादलों के दल, बगुलों की तरह पल्ल फैलाये कृतार बाँधे उड़ रहे थे; उनका पीछा किया। ऐसे छक्के छुड़ाये कि सिर पर पैर रख कर भागते नज़र आये ! [अट्टहास]

सन्ध्या—तेरा लड़कपन न जाने कब छूटेगा ! खेलने-कूदने के सिवा कोई चिन्ता ही नहीं ! जा, अब

F. 4

बहुत हुआ, उस पीपल के पेड़ पर जाकर आराम कर ! अब कहीं मत जाना।

पवन—पीपल के पेड़ में मैं नहीं सो सकता चाची ! नये नये चिकने पत्तों के झूलने में झूलने को जी करता है।

सन्ध्या—पागल कहीं का ! जा ग्राम में नये बौर आये हैं, उनकी गन्ध पीकर तू झूमने लगेगा, बड़ी जल्दी पलकें झँप जायँगी।

पवन—वहाँ भौरों का जो डर रहता है। गाना क्या आता है, बस हर घड़ी गुनगुनाते रहते हैं। मेरी तरह सीटी बजायें तो जानूँ। मैं बरगद के पेड़ पर जाकर सोता हूँ चाची !

[प्रस्थान]

[पवन कभी गाता, कभी सीटी बजाता, कभी ताली देता हुआ आँगन में बट के पेड़ के पास जाकर अट्टश्य हो जाता है]

गीत, सारंग, तीन ताल (द्रुतलय)

मर् मर्, सर् सर्, रुन् रुन्, सन् सन्,
गाता कभी गरजता भीषण,

पवन, प्रभञ्जन,

मेरी चपल डँगुलियों पर चल
लोल लहरियाँ करती नर्तन,
अधर अधर पर धर चल चुम्बन,
बाँह बाँह में भर आलिङ्गन,
मर् मर् ०

मेरा चाबुक खा, केशरि-सा
आहत-पन करता गुरु गर्जन,
अट्टहास कर, चपला पर चढ़,
जब मैं नभ में करता विचरण,
[प्रस्थान]

[दूर से उड़ता हुआ सुग्गा आकर गाय की पीठ पर बैठता और पुकारता है]

सुग्गा—अम्मा, अम्मा !

सन्ध्या—(प्रसन्नभाव से दरवाजे के पास खड़ी होकर) आगया तू ? सब कुशल से तो हैं ?

[सुग्गा दस साल का लड़का, हरे वस्त्र, गले में लाल रेशमी रूमाल बाँधे, दिन भर के बाद शाम को घर लौट

आने की प्रसन्नता में, कुन्द की झाड़ियों पर इधर से उधर फुदकता गरदन मटका मटका कर कहता है]

सुग्गा—आ गया, मैं आगया।

सन्ध्या—(स्नेहमिश्रित उपालम्भ के साथ) क्यों रे, तुम्हें घर आने की बड़ी उतावली रहती है न ? मुनियाँ को कहां छोड़ आया ?

[पूर्व-दिशा से पक्षियों के चहकने का स्वर सुनाई पड़ता है]

सुग्गा—वह सुनो, भैया हरियल सबको लिये आ रहे हैं।

सन्ध्या—अच्छा, सबको आ जाने दे। समय भी हो गया। मैं ठाकुर जी के द्वार में दिया जला आती हूँ।

[सन्ध्या भीतर जाती है]

सुग्गा—सत्यं, शिवं, सुन्दरम्, सत्यं, शिवं, सुन्दरम् !
[रटता है]

[सन्ध्या छत पर नीली रेशमी डोरी से टँगे चाँदी के छोटे से डिब्बे को नीचे उतारती, और उसका ढँकना खोल, रस्सी को फिर ऊपर चढ़ा देती है। चमचमाते हुए हीरे की तरह शुक्र का प्रकाश कमरे में फैल जाता है। सन्ध्या घुटनों के बल बैठ, आँखें मूँद, हाथ जोड़, ईश्वर की वन्दना करती है।

बाहर झुण्ड के झुण्ड पक्षी आकर आँगन में बैठकर चहकने लगते हैं। सन्ध्या बाहर आती है। मुनियाँ, फुलसुँही, खंजन, चटक आदि उसके चारों ओर पंख फड़फड़ा कर मँढ़राने लगते एवं कन्धों, बाँहों और गोद में बैठकर एक साथ पुकारते हैं]

पक्षी—अम्मी, अम्मी !

[मुनियाँ, खंजन, फुलसुँही, कुररी, श्यामा, हरियल, कपोत, कोयल, चटक, नीलकण्ठ, आदि सब रङ्ग-विरङ्गे वस्त्रों से भूषित, छोटे-बड़े बालक-बालिकाओं के रूप में स्टेज पर अभिनय करते हैं]

सन्ध्या—(वात्सल्य भाव से) सब बच्चे आगये ? आ गई मुनियाँ ? आ गये खंजन ? (फुलसुँही के ऊपर हाथ फेर कर) तू भी आ गई फूलकुमारी, मेरी रानी बिटिया। (प्यार करती है)।

फुलसुँही—मैं रानी बिटिया हूँ। सूँघो अम्मा, मेरा सुँह सूँघो। बताओ, किस फूल का पराग है। अच्छा मेरे पक्षों को सूँघो—आती है गुलाब की महक ?

सन्ध्या—पगली—

गुलदुम—फूल अम्मा से क्यों पूछती है। अम्मा को गन्धमकरन्द की बिलकुल भी पहचान नहीं। आ, मैं बतलाऊँ।

(दोनों उड़कर बेला, चमेली, गुलाब की झाड़ियों के पास जाते हैं)

चटक—(सामने आकर) अम्मी, अम्मी !

सन्ध्या—क्या है रे चिरोंटे ! थक गया क्या ? बड़ा चञ्चल, बड़ा नटखट है !

[कुररी की ध्वनि]

“वह कौन ? कुररी आ रही है क्या ?”

सुग्गा—अम्मा, यह हमेशा पिछड़ जाती है, बड़ी बोदी है।

[आम की डाल पर कोयल कूक उठती, मोर आकर सन्ध्या के पाँवों से लिपटता है]

सन्ध्या—(मोर की पीठ पर हाथ फेरती हुई) अच्छा, सब बच्चे आ गये ? आरती का समय टल रहा है। आओ मिलकर आरती गा लो।

[सब पक्षी दो पाँतों में अर्धवृत्ताकार खड़े होकर आरती गाते हैं]

गीत भूपाली, तीन ताल (मध्यलय)
जीवन का श्रम-ताप हरो हे !

सुख-सुखमा के मधुर-स्वर्ण से

सूने जग-गृह-द्वार भरो हे ! जी०

लौटे गृह सब श्रमित चराचर,

नीरव तरु-अधरों पर मर्मर,

करुणानत निज कर-पल्लव से

विश्व-नीड प्रच्छाद्य करो हे ! जी०

उदित शुक्र, अब अस्त भानु-बल

स्तब्ध पवन, नत-नयन पद्म-दल,

तन्द्रिल पलकों में निशि के शशि !

सुषुप्त-स्वप्न बन कर विचरो हे ! जी०

[आरती समाप्त कर चुकने पर कुछ पत्नी पट्टों में मुँह छिपाकर सोने का उपक्रम करते, कुछ अपनी चोंचें बच्चों के मुँह में डाल कर खिलाते हैं ।]

कोयल—अम्मा, मैं आम की डाल पर सोऊँगी ।

[प्रस्थान]

हरियल-नीलकण्ठ—हम पीपल के पेड़ पर सोयेंगे, वहाँ ठण्डी ठण्डी हवा मिलती है ।

[प्रस्थान]

चटक-खज्जन—हम बांसों के झुरमुट में जाकर छिप जाते हैं ।

[प्रस्थान]

सुग्गा, मुनियाँ आदि—हम तो पिँजड़े में ही सोयेंगे ।

[मैना, श्यामा, सुग्गा, लाल, मुनियाँ, अग्नि आदि पिँजड़े में सो जाते हैं]

कुररी—मैं भी जाती हूँ, कहीं तुम लोगों पर आसमान न टूट पड़े, हवा में टँग कर उसे रोकती हूँ ।

[सबका प्रस्थान]

[सन्ध्या आँगन की चहारदीवारी से सटा हुआ आवनूस का बड़ा-सा किवाड़ बन्द कर लेती है । अन्धकार के काले परदे में सारा दृश्य ओझल हो जाता है ।]



मन से

श्रीयुत पद्मकान्त मालवीय

भूलकर वह भोली चितवन ।

पोंछ ले तू अब निज लोचन ॥

व्यर्थ शोक करना है उसका,
जिसका आदि न अन्त ।
क्या जाने कब होगा इसका,
पतझड़ और वसन्त ॥

यही कहलाता है जीवन ।

है आनन्द यहाँ का तब तक,
जब तक है अज्ञान ।
सुख ही सुख है जब तक दुख का,
हो न किसी को ज्ञान ॥

इसी से रहतू नित अब मगन ।

कुछ भी नहीं, जिसे कहते हैं,
यहाँ पुण्य या पाप ।
दीवाने शासन करते हैं,
अपने ऊपर आप ॥

भूमि अपनी है अपना गगन ।

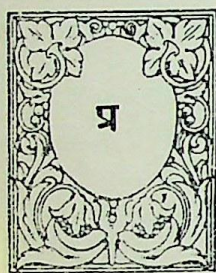
अपने को खोना है जग में,
सब कुछ ही पा जाना ।
जान लिया दुनिया को जिसने,
अपने को पहचाना ॥

चलो जैसे चलता है पवन ।

— कनाडा की सम्पत्ति और उसके साधन

सेंट निहालसिंह

स्वराज्य प्राप्त करने पर भारतवर्ष की कैसी उन्नति हो सकती है इसका अनुमान श्रीयुत सेंट निहालसिंह के इस लेख से सहज ही किया जा सकता है। कनाडा की यह आश्चर्य-जनक उन्नति उसी समय से आरम्भ हुई है जब से उसे 'डोमिनियन स्टेट्स' प्राप्त हुआ है।



प्रकृति ने कनाडा को समृद्धपूर्ण करने में उदारता से काम लिया है। सत्ताईस वर्ष पहले मैंने उस देश को देखा था, परन्तु जो यह पते की बात उस समय मेरे मन में उठी थी, आश्चर्य है, अभी तक तिरोहित

कनाडा को प्रकृति ने अनेक प्रकार की सम्पत्तियों से अलंकृत किया है। ऐसी दशा में एक छोटे लेख में उसके सम्बन्ध में न्याय करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यदि यह देश स्वयं बड़ा भी न होता तो भी यह बात सम्भव न होती। परन्तु यह बहुत बड़ा देश भी है। यह महासमुद्र से महासमुद्र तक-अटलांटिक से पैसिफिक तक फैला हुआ है। इसकी

सीमाओं के भीतर की भूमि का क्षेत्रफल तैंतीस लाख वर्ग-मील से भी अधिक है। यदि इसकी भिन्न भिन्न म्मीलों तथा दूसरे जलाशयों का रकबा भी इससे मिला दिया जाय तो एक लाख अस्सी हजार वर्ग-मील इसमें जोड़ने पड़ेंगे।

इन कठिनाइयों को ध्यान में रखकर मैं यहाँ उसके एक प्रान्त का ही संक्षिप्त विवरण देकर संतोष करूँगा।

इस प्रान्त के अधिकांश निवासी आज भी प्रारम्भिक यात्रा की है, प्रत्येक बार मेरे इस भाव में वृद्धि ही हुई है। धन्धों के ही द्वारा अपना निर्वाह करते हैं। वे लकड़ी,



['न्यू बर्न्सविक के जङ्गल में काटे गये वृक्ष । इनके तख्ते बहुत बढ़िया बनते हैं ।] नहीं हुई है। और जब जब मैंने इस 'डोमिनियन' की यात्रा की है, प्रत्येक बार मेरे इस भाव में वृद्धि ही हुई है।

खान, मछली, खेती का तथा ऐसे ही अन्य धन्धे करते हैं। इस वर्णन में मैं यथास्थान उन बातों का भी उल्लेख करूँगा जो दूसरे प्रान्तों में या सारे कनाडा में समानरूप से जारी हैं।

(२)

इस लेख के मतलब के लिए मैं कनाडा के धुर पश्चिमी प्रान्त कोलंबिया को चुनता हूँ। भाग्य ने इसे प्राकृतिक समृद्धियों से विशेष रूप से पूर्ण किया है। इस डोमीनियन के इसी भाग में मैं पहले-पहल गया था।

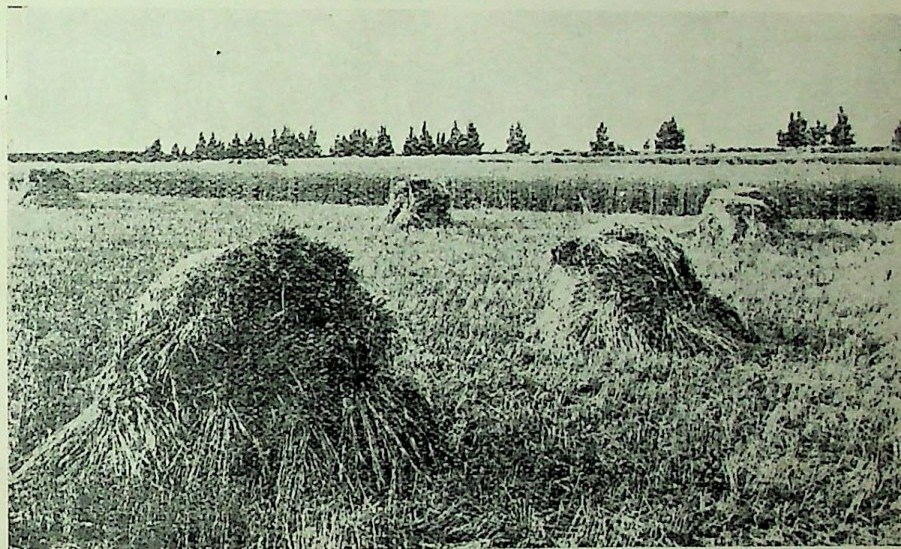
जो पाठक कनाडा से परिचित नहीं हैं उनके लिए मैं बताता हूँ कि ब्रिटिश कोलंबिया के दो भाग हैं—वानकूवर द्वीप और उत्तरी अमरीका के महाद्वीप में एक भूखण्ड। द्वीप जो लम्बा और कुछ कुछ तंग है, पैसिफिक महासागर में स्थित है और महाद्वीप से एक जलखण्ड-द्वारा विभक्त है। इस जलखण्ड को पार करने में तेज़ स्टीमर को कोई चार घंटे लगते हैं।

प्रान्त की राजधानी

विक्टोरिया है। इसका नामकरण महारानी विक्टोरिया के नाम पर किया गया था। यह नगर उन्हीं के शासन-काल में बसा था। यह विक्टोरिया टापू पर बसा हुआ है। यह नगर करीब करीब निवासस्थान ही है। प्रान्तिक शासन से सम्बन्ध रखनेवाले अधिकारी यहाँ रहते हैं। पेंशनयाफ़्राओं तथा पूँजीपतियों ने (इंडियन सिविल सर्विस और दूसरी इंडियन सर्विसों के पेंशन पाये हुए लोगों के सहित) यहाँ अपने लिए घर बनवा लिये हैं, क्योंकि यहाँ का जलवायु मृदुल और स्वास्थ्यप्रद है।

प्रान्त का सबसे बड़ा नगर वानकूवर है। यह महाद्वीप के पश्चिमी किनारे पर बसाया गया है और एक फलता-फूलता बन्दरगाह है। इसकी जन-संख्या अब २,४५,००० से भी अधिक हो गई है। प्रान्त का बड़ा भाग इस नगर के उत्तर, दक्षिण और पूर्व की ओर फैला हुआ है।

ब्रिटिश कोलंबिया की आबादी में अधिकतर ब्रिटिश लोग ही हैं और वे यहाँ के जीवन में एक बड़ी हद तक ब्रिटिश रंग-ढंग बनाये हुए हैं। यहाँ के निवासी बड़े



[कनाडा के पश्चिमी प्रदेश सस्केचवान के इंडियन हेड नामक स्थान में गेहूँ का एक खेत। यहाँ कोई कोई खेत ६,६ वर्ग-मील के हैं]

बुद्धिमान, परिश्रमी और दृढ़ निश्चयवाले हैं। जिस प्रान्त को उन्होंने या उनके पूर्वजों ने आबाद किया उसके अपार विभिन्न साम्पत्तिक साधनों के विकसित करने में उन्होंने अधिक शक्ति लगा दी है।

(३)

लकड़ी इस प्रान्त की सबसे बड़ी सम्पत्तियों में से है। वानकूवर का टापू आज भी जंगल से आवृत है। यही बात प्रान्त के अवशिष्ट भाग के लिए भी कहनी ठीक है। आबादी की वृद्धि से बाध्य होकर कहीं कहीं

वृत्त काट डाले गये हैं और लोगों के बसने, खेती करने और उद्योग-धन्धे खोलने के लिए भूमि तैयार कर ली गई है। यहाँ के लोगों को अपने जंगलों की अनेक प्रकार की लकड़ियों का गर्व है। वे उन्हें मोटे हिसाब से दो श्रेणियों—कड़ी और नर्म—में विभक्त करते हैं। नर्म लकड़ी कड़ी की अपेक्षा अधिक टिकाऊ नहीं होती, अतएव वह अधिक सस्ती है।

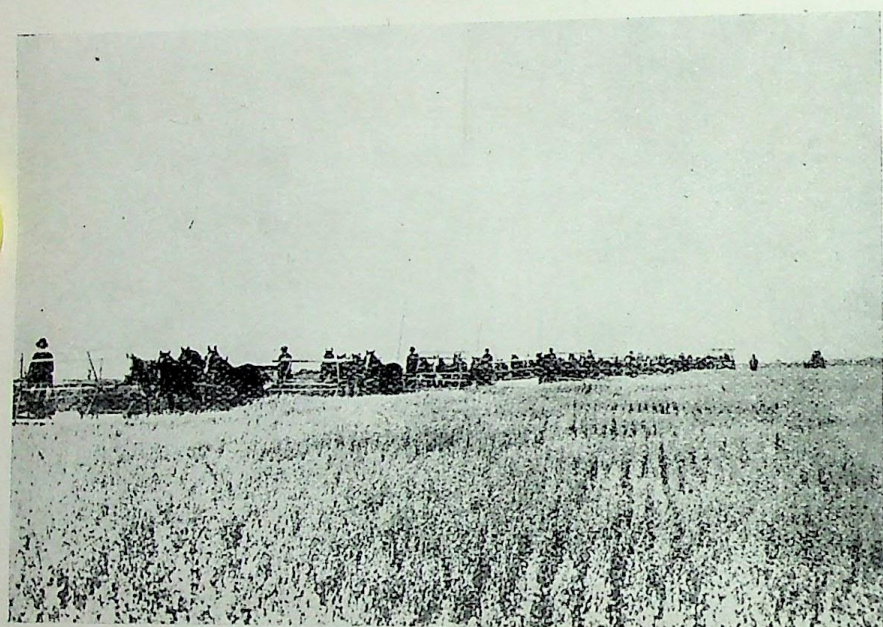
यहाँ की कड़ी लकड़ी बहुत अधिक मूल्यवान् होती है, वह आम तौर से चिकनी भी बहुत होती है। फरनीचर

का जीवन व्यतीत करते हैं। इसकी बदौलत हजारों आदमियों को समृद्धि-पूर्ण हो जाने की चमत्ता प्राप्त हुई है।

सन् १९०६ में जब मैं ब्रिटिश कोलम्बिया को गया था तब जङ्गल में काम करनेवाले प्रतिदिन दो डालर मज़दूरी पाते थे। उस समय एक डालर तीन रुपये का था।

जंगल में काटे जानेवाले वृत्त बड़े बड़े शहतीरों में काटे जाकर नदियों में बहा कर लाये जाते हैं या किसी लकड़ी चीरनेवाली मिल में सीधा पहुँचा दिये जाते हैं। ऐसी अनेक मिलें वानकूवर नगर में तथा प्रान्त की दूसरी सुभीते की जगहों में स्थापित हैं। यहाँ उन शहतीरों की धरनें, तख्ते आदि चीरे जाते हैं। इन मिलों की बनी हुई चीजों का मूल्य सन् १९२९ में जिसके अंक प्राप्त हैं, १९ करोड़ रुपये से अधिक हो गया था।

इधर कुछ समय से डालर का मूल्य बहुत कुछ घटता-बढ़ता रहा है, अतएव मैंने यहाँ उसको तीन रुपये के



[सस्केचवान में विल्की नामक स्थान में खेत काटने का एक दृश्य। यह प्रदेश पश्चिमी कनाडा में है। खेत में १२ मशीनें एक साथ काम कर रही हैं। ये मशीनें एक ही साथ काटती हैं और बंडल भी बांधती हैं। एक मशीन पर एक ही आदमी काम करता है।]

के बनानेवाले उसके चिकनी और टिकाऊ होने से उसकी बड़ी कद्र करते हैं। फलतः ब्रिटेन तथा दूसरे योरपीय देशों में जो जङ्गलों से उतने समृद्ध नहीं हैं, इसकी बड़ी माँग है और इससे ऊँचे दाम भी आते हैं।

अतएव जङ्गल की समृद्धि से लाभ उठाने का धन्धा यहाँ बड़े महत्त्व का है। अधिवासियों की एक बड़ी संख्या का इसी से निर्वाह होता है। इसके कारबारी सुख

बराबर ही माना है। यदि मैंने विनिमय की वर्तमान दर के अनुसार लिया होता तो यह संख्या और भी अधिक होती।

(४)

ब्रिटिश कोलम्बिया में बहुत लकड़ी निकलती है। यह प्रान्त कनाडा में महत्त्वपूर्ण लकड़ी की पैदावार की खान है। दूसरे कई प्रान्तों में भी, विशेषकर बीच के

मनीटोबा और क्वेबेक एवं पूर्व के न्यूब्रांसविक में भी बड़े बड़े बहुमूल्य जंगल हैं। इन जङ्गलों से जो विशाल आय सारे कनाडा को होती है उसका कुछ पता जब यह बात ध्यान में लाई जायगी कि केवल सन् १९२६ में लकड़ी चीरने की मिलों से ४४ करोड़ रुपये से भी ज्यादा की आय हुई थी, लग सकता है।

निस्सन्देह यह एक बड़ी रकम है। परन्तु मुझे पाठकों को यह बता देना चाहिए कि जंगल की पैदावार से कनाडा को जो कुल आय होती है उसका यह केवल एक ही अंश है। यहाँ में कुछ आँकड़े देता हूँ जिनसे पाठकों को इसकी जानकारी हो जायगी। कनाडा के कुछ भागों में विशेष कर क्वेबेक और ओन्टेरियो में, जो नर्म लकड़ी काटी जाती है उसका अधिकांश 'पल्प' में परिणत किया जाता है। इस वस्तु के बनाने के लिए वह लकड़ी छोटे छोटे टुकड़ों में काटी जाती है। ये टुकड़े पानी में तब तक भिगोये रहते हैं जब तक नर्म नहीं हो जाते।

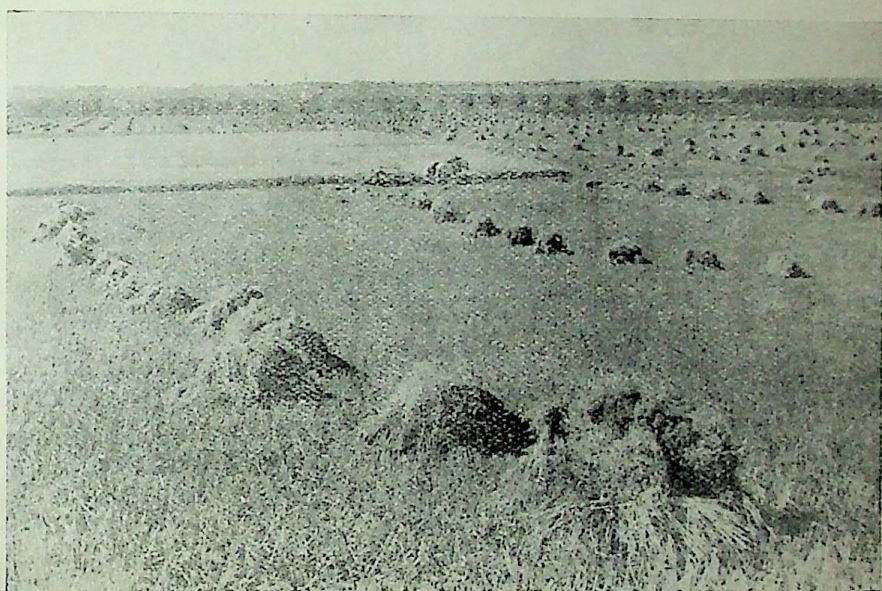
इसके बाद उनका पानी यन्त्रों के द्वारा निकाल दिया जाता है और जब लकड़ी के वे मुलायम टुकड़े बड़े बड़े गर्म किये हुए बेलनों के बीच से निकलते हैं तब वे सब मिश्रित होकर कागज़ के रूप में बाहर आते हैं।

सन् १९२६ में कागज़ बनाने के लिए कनाडा में भिन्न भिन्न भागों में जो 'पल्प' प्रस्तुत किया गया था, सरकार-द्वारा दिये गये आँकड़ों के अनुसार उसका मूल्य ५६ करोड़ रुपये के लगभग था। इस 'पल्प' के अधिकांश का वहीं कागज़ भी बना लिया गया और यह कारबार

उसमें लगे हुए लोगों के लिए अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हुआ। कागज़ और तत्सम्बन्धी वस्तुओं का मूल्य सन् १९३० में ५१ करोड़ रुपये से अधिक जा पहुँचा था।

कनाडा के निवासी कुछ जंगलों का उपयोग शक्कर और रस बनाने के लिए करते हैं। जिस वृक्ष से ये वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं उसे 'मैपल' कहते हैं।

यह वृक्ष संयुक्त-राज्य तथा दूसरे स्थानों में भी उगता है। तथापि कनाडावासी इसे अपने देश का खास वृक्ष मानते हैं। उन्होंने इसके पत्ते को अपनी जातीयता



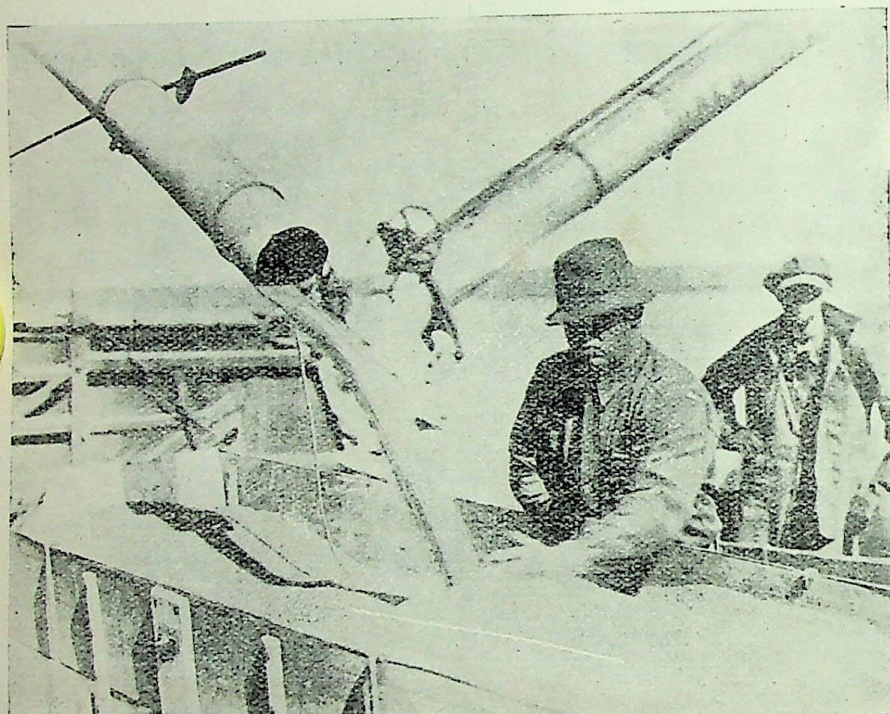
[मनीटोबा के बैडन नामक स्थान में श्रोत की कटाई हो रही है। कनाडा में गेहूँ के बाद इसी अन्न की सबसे ज्यादा खेती होती है।]

के चिह्न-रूप में ग्रहण किया है और कनाडा को 'मैपल पत्र का देश' कहते हैं। इस पत्र की प्रशंसा में अनेक गीत बनाये गये हैं। उनमें कनाडा के निवासियों ने अपने देशभक्ति-परक भावों का प्रकाश किया है।

मैपल का रस या शक्कर प्राप्त करने में वृक्ष को काटना नहीं पड़ता है। वसन्त के प्रारम्भ में जब रस बढ़ने लगता है तब वृक्ष के तने में छेद कर दिया जाता है। लकड़ी का एक पोला टुकड़ा उस छेद में जमा दिया जाता है। जब रस छेद से निकलने लगता है तब

वह उस पोली लकड़ी से होकर उसके नीचे रखे हुए बर्तन में बह आता है। जब बर्तन भर जाता है तब वह उस स्थान पर पहुँचा दिया जाता है जहाँ शकर बनाई जाती है। वहाँ वह रस उसी प्रकार पकाया जाता है जैसे हम लोग भारत में गुड़ बनाते हैं।

कनाडा के दूसरे वृक्षों से मरहम-द्रव्य, गोंद, राल, Cascara moss और चमड़ा रँगनेवाले द्रव्य प्राप्त होते



[पश्चिमी कनाडा के अलबर्टा के खेत में वैगन में गोहूँ लादा जा रहा है।]

हैं। ये वस्तुएँ जंगलों से प्राप्त होनेवाली आय के बढ़ाने में मदद करती हैं।

यह तो वस्तुतः सरकारी ही तख्मीना है कि कनाडा के जंगलों और उसके भिन्न भिन्न भागों के जंगलों की वस्तुओं के धन्धों से सौ करोड़ रुपये से कम वार्षिक आय नहीं होती। सन् १९२६ में वहाँ के ४,१३६ कारखाने अपनी सामग्रियों के लिए वहाँ की लकड़ी फाड़नेवाली मिलों और कागज की मिलों पर ही आश्रित थे और कोई ८५,००० मनुष्य उनमें लगे हुए थे।

ब्रिटिश कोलम्बिया के जंगलों और पहाड़ों में भिन्न भिन्न प्रकार के खनिज पदार्थों के भाण्डार भी छिपे पड़े हैं। उनमें भी खूब काम होता है और उनसे बहुत धन की प्राप्ति होती है। गत शताब्दी के मध्य-भाग के लगभग 'फ्रेजर वेली' में सोने का पता लगा था, अतएव वहाँ जाकर ब्रिटिश लोग बस गये और वह एक नया प्रान्त बन गया, जो पीछे से कनाडा के फेडरल राज्य में

स्वतन्त्र प्रान्त के रूप में शामिल किया गया।

आज भी यहाँ पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे तक नदी के किन्हीं भागों से बालू और कंकड़ निकालते और कच्चे सोने की रेणुका प्राप्त करने की आशा में उन्हें तसलों में धोते हुए देखे जा सकते हैं। कभी कभी तो परिश्रम की भी भरपाई नहीं हो पाती। उन्हें ऐसे लोगों के हाल विदित हैं जो इस विधि से सोना प्राप्त कर धनशाली हो गये हैं। इनकी कथायें लोगों को इस काम

में निरन्तर जुटे रहने के लिए बराबर प्रोत्साहित करती रहती हैं। यहाँ तक कि इस धन्धे में वे इतना लिस रहते हैं कि कोई दूसरा काम करने के योग्य ही नहीं रह जाते।

इस प्रान्त के भिन्न भिन्न भागों में एक बड़ी संख्या में खानें खोदी गई हैं। उनमें से कुछ इतना समृद्धि-पूर्ण हैं कि उनमें सारा वर्ष काम होता रहता है। खान के मजदूरों को अच्छी मजदूरी मिलती है और उनके स्वामी मालामाल होते जाते हैं।

यहाँ खानों की उपज में भी वर्ष प्रति वर्ष भिन्नता आती ही जा रही है। उसी तरह भूमि से निकाली जानेवाली भिन्न भिन्न उच्च धातुओं के मूल्य में भी। साधारण वर्ष में खान से निकाले हुए द्रव्यों का मूल्य दस करोड़ रुपये या इस संख्या से भी अधिक जा पहुँचता है। इस सम्बन्ध में ऑस्ट्रेरियो ब्रिटिश कोलंबिया से आगे है। भिन्न भिन्न प्रकार के बहुतेरे खनिज द्रव्य वहाँ निकाले जाते हैं। ब्रिटिश कोलंबिया के खनिज द्रव्यों की निकासी के मूल्य से दूने या उससे भी अधिक मूल्य के खनिज द्रव्यों की निकासी यहाँ होती है।

जहाँ ब्रिटिश कोलंबिया अपना अधिकांश कच्चा माल बाहर भेज देने से ही सन्तुष्ट है, वहाँ ऑस्ट्रेरियो में कच्चे द्रव्य से धातु निकालने और उन्हें साफ करने के बड़े बड़े और व्ययशील कारखाने खोले गये हैं। इन कारखानों के खोलने और चलाने के लिए ऑस्ट्रेरियो में ब्रिटेन और संयुक्तराज्य से ही अधिकांश पूँजी आई है। वस्तुतः ये दोनों देश इस सम्बन्ध में एक दूसरे से बाज़ी मार ले जाने की दौड़ में लगे हुए हैं।

(६)

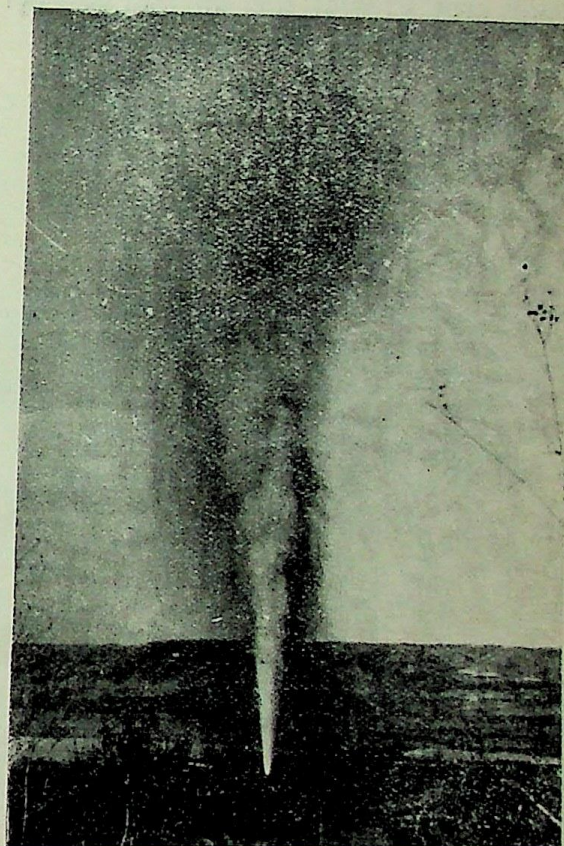
मनुष्य के किसी दूसरे काम की अपेक्षा खान का काम कहीं अधिक चमत्कार दिखाता है। बेचारा मनुष्य आशा पर निकलता है। उसके पास पेट भरने के लिए पैसा नहीं है। कोई सट्टे की भावना का दूकानदार परिमित काल के लिए उसको 'रेशन' देने का भार अपने ऊपर ले लेता है। जो खनिज सम्पत्ति वह प्राप्त करेगा उसमें उसे दूकानदार को रेशन के बदले में हिस्सा देना पड़ेगा। संयोग से वह पीले या सफ़ेद या भूरी रेखा से युक्त कोई पत्थर पा जाता है, जिससे उस स्थान में एक मूल्यवान् खनिज वस्तु का भाण्डार होने का पता लगता है। प्रसन्नता से पागल होकर वह अपने स्वत्व की मेख गाड़ देता है और जब तक उस साधन से लाभ उठाने के लिए अधिकार देनेवाले तत्सम्बन्धी कागज़पत्र यह नहीं प्राप्त कर लेता है, शान्त नहीं होता है। कुछ ही वर्षों के भीतर वह धनवान्—सम्भवतः करोड़पति हो जाता है।

P. 5

मैं खुद ऐसे कई व्यक्तियों को जानता हूँ जो इस ढंग से एक गरीब आदमी से धनाढ्य हो गये हैं।

(७)

यह बात यहाँ लिखने में मुझे प्रसन्नता होती है कि कनाडा में जाति की भावना इतनी कम है कि ऐसे लोगों के सम्पत्तिवान् हो जाने पर उन्हें समाज के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बन जाने में कोई कठिनाई नहीं फेलनी पड़ती।



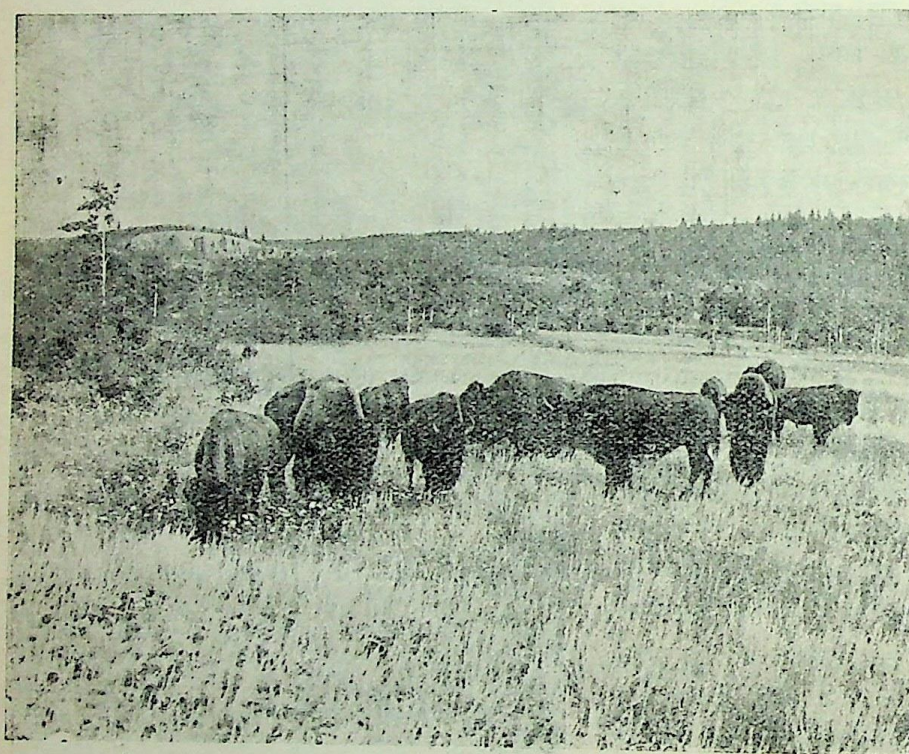
[अलबर्टा के वेनराइट नामक स्थान के इंपीरियल फेब्रियन कुएँ से गैस और तेल निकल रहा है। कनाडा केरोसीन आयल से सम्पन्न देश है।]

उनमें कुछ तो वास्तव में अत्यन्त महत्त्व के पदों तक पहुँच जाते हैं।

पिछली बार सन् १९२७ में जब मैं कनाडा गया था उस समय ब्रिटिश कोलंबिया का लेफ्टिनेंट गवर्नर स्काच

जाति का एक कनाडावासी था। मुझे मालूम हुआ था कि उसने खान के काम से अपनी उन्नति की है। मैं इस बात के सत्य होने का प्रमाण नहीं दे सकता, तथापि इतना ज़रूर जानता हूँ कि उस प्रान्त में खानों की एक बड़ी सम्पत्ति उसके हाथ में थी।

प्रान्त के उच्च अधिकारी के रूप में विक्टोरिया में वह जिस महल में रहता था वह किसी भारतीय प्रान्त के गवर्नमेंट हाउस की अपेक्षा छोटा और किसी महत्त्वपूर्ण रियासत के राजा के महल के आगे और भी छोटा था।



[अलबर्टा कनाडा में रक्षित चरागाहों में जंगली विसनों का विचरता हुआ समूह। यह पशु विशेष पालतू गायों का जन्मदाता है।]

परन्तु उसके अन्तर्गत काफी विस्तृत भूमि थी, जिसके एक भाग में एक सुन्दर पार्क था और अवशिष्ट भाग में साग-सब्ज़ी तथा फल उत्पन्न किये जाते थे।

लेफ़्टिनेंट गवर्नर ब्रश अतिथि-सत्कार के प्रेमी थे। उन्होंने मेरी पत्नी और मुझे लंच के लिए आमंत्रित किया।

अन्य आमंत्रित व्यक्तियों में हमें उनके पूर्ववर्ती लेफ़्टिनेंट गवर्नर मिस्टर निचोल्स मिले। बीस वर्ष पहले जब मैं प्रथम बार कनाडा गया था तब ये पत्रकार का काम करते थे। पुनः परिचित होकर तथा पुराने दिनों की बातें कर हमें प्रसन्नता हुई।

इस बात का विशेष रूप से उल्लेख यहां वह दिखलाने के लिए किया गया है कि एक सच्चे डोमीनियन की शासन-व्यवस्था में वहाँ के उत्पन्न हुए या बसे हुए व्यक्ति के लिए प्रान्त के सर्वोच्च सरकारी पद का प्राप्त

कर लेना सर्वथा सम्भव है। कनाडा के प्रान्तों के सर्वोच्च पदों पर समुद्र-पार से ब्रिटेन लोगों को बुलाकर नियुक्त करने की प्रथा वर्षों से वहाँ बन्द हो गई है। प्रत्येक प्रान्त में उच्चतम पदों पर केवल कनाडावासी ही नहीं नियुक्त किये जाते हैं, किन्तु उनका चुनाव भी ओटावा में संघ-सरकार के ही मंत्री करते हैं। यह भी यहाँ जोड़ देना मेरे लिए प्रसन्नता की ही बात है कि गवर्नर जनरल का भी चुनाव उसी मंत्रिमंडल की

सलाह से होता है।

(८)

पैसिफ़िक महासागर का वह अंश जो वानकूवर द्वीप को अवशिष्ट प्रान्त से जुड़ा करता है, फ़्रेज़र नदी जिस पर वानकूवर नगर स्थित है तथा ब्रिटिश कोलंबिया की

दूसरी नदियाँ और झीलें मछलियों से परिपूर्ण हैं। उनकी अनेक जातियाँ खाने के योग्य हैं। खाने के शौकीन लोग उनमें से कुछ के तो बड़े प्रेमी हैं। इस सम्बन्ध में दो जातियों की मछलियाँ अधिक प्रसिद्ध हैं—एक हुरीबट और दूसरी सालमन है। अतएव ब्रिटिश कोलम्बिया के निवासियों के लिए ये दोनों धनोपार्जन का एक बड़ा साधन हैं। इन मछलियों के पकड़ने में हजारों आदमी लगे रहते हैं और लाभ उठाते हैं।

मछली का पकड़ना, विशेषकर गहरे समुद्र में, उतना सरल काम नहीं है जितना कि शान्त तालाव या छिछली और सुस्त प्रवाहवाली नदी के तटों पर उनको पकड़ना है। इस काम में जहाजों का उपयोग किया जाता है। पुराने समय में मस्तूलों और पालोंवाले लकड़ी के जहाजों से यह काम लिया जाता था। धीरे धीरे उनके स्थान में धुँवाकश जहाज जो ट्रालर कहलाते हैं, इस काम में नियुक्त किये गये। ये स्थल से समुद्र में बहुत दूर तक जहाँ मछलियों के अधिक मात्रा में मिलने की आशा होती है, चले जाने में समर्थ हैं। जहाज के किनारे से बड़े बड़े मजबूत जाल पानी में छोड़ कर उठा लिये जाते हैं। जो मछलियाँ उनमें आ जाती हैं वे डेक पर फेंक दी जाती हैं, जहाँ वे जाति के तथा आकार के अनुसार अलग की जाती हैं और यदि आवश्यकता होती है तो बर्फ में रख दी जाती हैं। जहाज यथा शीघ्र किनारे को लौट आते हैं और मछलियाँ सुभीते के अनुसार बेच दी जाती हैं। अथवा यदि बाजार में वे भरी होती हैं तो ठंडे भाण्डारों में उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में बिक्री के लिए रख दी जाती हैं।

इन ट्रालरों में कुछ खाली ह्वेल के पकड़ने में ही लगे रहते हैं। पूरी उम्र की ह्वेल मछली आकार और वजन में बहुत भारी तथा शक्ति में बहुत प्रबल होती है। जब कोई ह्वेल निगाह में आती है तब जहाज उसका पीछा करता है। हारपून नाम के भाले उसकी ओर उन व्यक्तियों द्वारा फेंके जाते हैं जो अधिक अभ्यास से निशाना साधने में दक्ष हो जाते हैं। वह ह्वेल

उनसे भयंकर युद्ध करती है, अतएव उसके पीछा करने में बड़ी उत्तेजना होती है।

ब्रिटिश कोलम्बिया के समुद्र में जो बहुत अधिक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं वे सबकी सब वहीं नहीं खप जाती हैं, किन्तु दूसरे देशों को और कभी कभी समुद्र पार के देशों तक भेज दी जाती हैं। अतएव उनकी विधिपूर्वक रक्षा की जाती है, जिससे वे एक लम्बे समय के बाद भी खाने के लायक बनी रहें। इस छोटे से लेख में उन विधियों के वर्णन के लिए स्थान नहीं है। परन्तु उनमें डिब्बे में रखनेवाली पद्धति अधिक लोक-प्रिय है।

वहाँ की किसी किसी बात में अत्यन्त बहुमूल्य सालमन नाम की मछली प्रतिवर्ष डिब्बों में बन्द कर संसार के भिन्न भिन्न भागों को भेजी जाती है। अतएव उस प्रदेश का यह एक बड़ा भारी धन्धा हो गया है। मछली की डिब्बेबाज़ी के काम में वहाँ हजारों आदमी लगे रहते हैं और ख़ासी मज़दूरी पाते हैं। इन कारख़ानों के स्वामियों को भी बड़ी आय होती है।

सन् १९३० के जो प्रामाणिक आँकड़े प्राप्त हुए हैं उनसे प्रकट होता है कि लगभग सात करोड़ रुपये के मूल्य की मछलियाँ वहाँ उस साल पकड़ी गईं। और इस मूल्य में से अकेले सालमन मछली से पाँच करोड़ रुपये से अधिक आय हुई।

कनाडा के दूसरे प्रान्तों में भी मछली मारने का धन्धा जोरों से होता है। यह बात विशेषरूप से अटलांटिक समुद्र-तटवर्ती प्रान्तों के लिए ही सच है। क़ेबेक और ओंटेरियो के प्रान्तों में भी जिनसे होकर सेंट लारेंस नाम की महानदी बहती है, मछली मारने के बड़े बड़े अड्डे हैं।

सन् १९३० में कनाडा में समुद्रों, झीलों और नदियों में जो मछलियाँ पकड़ी गईं उनका मूल्य चौदह करोड़ रुपये से भी अधिक बढ़ जाता है।

(१)

ब्रिटिश कोलम्बिया की भूमि तथा जलवायु फलदार वृक्षों के लिए बहुत ही उपयुक्त है। और यह बात

प्रान्त के पूर्वी भाग अर्थात् ओकानगन वेली के लिए और भी विशेष रूप से ठीक घटती है। यहां फल का व्यवसाय महत्व का रूप धारण कर गया है और हजारों कुटुम्बों के लिए वह जीविका का द्वार बन गया है।

परन्तु कनाडा के फल-व्यवसायियों को अमरीका की प्रतिद्वन्द्विता से कठिनाई का सामना करना पड़ा है। पास ही वाशिंगटन, ओरेगन और कैलिफोर्निया के राज्यों में वहां के लोग इस व्यवसाय में और पहले से लगे हुए हैं और उनका इसका अनुभव बहुत बढ़ा-चढ़ा हुआ है। इसके सिवा उनके देश की आबादी भी बहुत अधिक है और कनाडा से तो वह बारह गुना अधिक है। साधारण समय में वहां के निवासियों के पास काफी रुपया रहता है और फलों के खरीदने में वे उसे व्यय भी खूब करते हैं। अतएव फलों की उपज बाहर भेजने को बहुत कम बचती है। परन्तु बचत की विक्री से जो आय होती है वह लाभ है। अतएव अमरीकावाले अपने फल कनाडावालों के हाथ ऐसे मूल्य पर बेच सकते हैं जो कनाडा के फल-व्यवसायियों के लिए घातक है। फलतः कनाडा की सरकार उनकी तथा साग-सब्जी उत्पन्न करनेवालों की भी रक्षा के लिए आगे आई। बाहर से आनेवाले फलों और साग-सब्जियों पर भारी चुंगी लगाई गई, जिससे वे वहां मूल्य के उस पड़ते पर विक्री हैं जिस पड़ते पर वहांवाले अपनी वस्तुएँ बेच कर लाभ उठा सकते हैं।

कनाडा की राष्ट्रीय सरकार इस धन्धे में लगे हुए लोगों की भलाई के सम्बन्ध में इतना व्यग्र रहती है कि मौसम के प्रारम्भ में उनकी विक्री की व्यवस्था के लिए विशेष संरक्षा का प्रबन्ध कर दिया गया है। जैसा कि अनुमान किया जा सकता है, उस समय मूल्य बढ़ा रहता है, अतएव वहां के फल और साग-सब्जी के व्यवसायियों को अच्छा लाभ हो जाता है।

इस प्रश्न का एक दूसरा भी पहलू है। भारी चुंगी के लगने से वस्तुओं का मूल्य भी बढ़ जाता है। ब्रिटिश कोलंबिया तथा कनाडा के दूसरे भागों में फल

उत्पन्न करनेवालों को जो संरक्षा प्रदान की गई है उससे वहां फल महँगे हो गये हैं। सम्पन्न लोगों को छोड़कर साधारण लोगों के लिए फल मौसम को छोड़कर दूसरे समय में दुर्लभ रहते हैं। अतएव इस अवस्था में फल खानेवालों के लिए कुनमुनाना सर्वथा स्वाभाविक है।

पिछले दिनों फलवाले वृत्तों के उगाने और मूल्य को कम कर तथा विक्री बढ़ा कर फलों के बेचने की प्रक्रिया में सुधार करने के प्रयत्न किये गये हैं। कृषि-विभाग ने उनकी सहायता की है। भिन्न भिन्न प्रकार के फलों की उपज बढ़ाने के लिए उनके उपयुक्त खादों के वैज्ञानिक प्रयोग करके दिखाये गये हैं और फलों के विनाशक जन्तुओं तथा कीड़ों से उनकी रक्षा करने के उपाय बताये गये हैं। फल पैदा करनेवालों ने स्वयं भी इस ज्ञान से लाभ उठाने में परिश्रम किया है और सहयोग-समितियों की रचना भी की है। अपने अनुभव और साधनों को इस प्रकार संवर्द्धन करके वे उनसे लाभ उठाने में समर्थ हुए हैं।

अपनी पिछली यात्रा में मैंने ब्रिटिश कोलंबिया के फलवाले जिलों की यह बात अनुराग से देखी थी कि प्रत्येक फल उत्पन्न करनेवाला अपनी उपज केन्द्रीय डिपो को भेजता है। वहां वे अपनी भिन्नता, आकार, रूपरेखा, और गुण के अनुसार श्रेणीबद्ध किये जाते और सावधानी से रक्खे जाते हैं। खूब सावधानी से बन्द किये जाने पर वे उन गाड़ियों में लादे जाते हैं जो डिपो के पास पटरियों पर खड़ी रहती हैं और जो मुख्यतः फल ले जाने के लिए ही बनाई गई हैं। ये गाड़ियाँ इस दृष्टि से बनाई गई हैं कि उनका तापमान ठंडा रहे, जिससे फल न अधिक पकने पावें, न सड़ने पावें।

इस प्रणाली से रेल-भाड़ा में भी बहुत कमी हो गई है। रेलवे गाड़ी के हिसाब से अपना किराया लेती है। यह किराया प्रत्येक माल के वजन के अनुसार उस पर लगाकर प्रत्येक फल उगानेवाले से उसी हिसाब से लिया जाता है। इस अवस्था में उसे बहुत कम किराया देना पड़ता है। यदि उसने अपने फल स्वतंत्र रूप से

अलग भेजे होते तो उसे पूरा किराया देना पड़ता। इससे यह भी लाभ है कि उसके फल बड़ी सावधानी से पैक करके ऐसी आवहवा में भेजे जाते हैं जिससे वे खराब भी नहीं होते।

उस प्रणाली का निस्सन्देह मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसे देखकर मेरे मन में यह इच्छा हुई कि हमारे देशवाले जो बागवानी के काम में लगे हुए हैं, इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ कर सकते हैं। इससे उनके स्वत्वों की रक्षा होगी, असुविधाओं से बचेंगे और उनके व्यय में भी कमी होगी। जनता को भी इससे लाभ होगा, उसे फल अच्छी दशा में मिलेंगे और शायद उन्हें कुछ कम मूल्य में भी खरीद सकेंगी।

दूसरे प्रान्तों में भी विशेषकर ओटावा और नेवा-स्कोशिया में बड़े बड़े भूभागों में बागवानी होती है। जब पहली बार मैंने पूर्वी भाग में नियागरा-प्रायद्वीप का परिदर्शन किया था तब मैंने वहाँ सेब, नासपाती, अंगूर तथा दूसरे फल वृक्षों के बाग पर बाग देखे थे और मैं अत्यधिक आश्चर्य-चकित हो गया था। कनाडा के फल के व्यवसायियों ने सन् १९३० में सेब, नासपाती, बेर, सूखे बेर, आड़ू, मकोय, अखरोट, अंगूर तथा भिन्न भिन्न प्रकार के फल बेच कर पाँच करोड़ रुपये की आय प्राप्त की थी।

इस रकम में वह आय शामिल नहीं है जो उनके देशवासी मुरम्बा और जेली तथा सिरका, सेब की शराब, अचार, चटनी और शराब आदि से प्राप्त करते हैं। फल उत्पन्न करने के काम पर आश्रित वहाँ के दूसरे कारबार इतने सम्पन्न हो गये हैं कि इन सबसे जो कुछ आय हुई वह पाँच करोड़ रुपये से कम न थी।

(१०)

जैसा कि मैंने लिखा है, इधर हज़ारों कुटुम्ब एकमात्र फल उत्पन्न करने के काम में लगे हुए हैं, विशेष

कर कोलंबिया के ओकेनगन वेली नामक अंचल में। इधर दूसरे हज़ारों लोग खेती या बोड़े, सूअर, मुर्गी आदि पशु पालने के साथ साथ फलों को भी उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार की खेती वहाँ मिश्रित खेती कहलाती है। और जैसे जैसे समय बीतता जाता है, यह उतना ही लोकप्रिय होती जा रही है।

कनाडा की सरकार के आदेश से सन् १९३० के जो आंकड़े प्रकाशित हुए हैं उनसे उस विशाल सम्पत्ति का पूरा ज्ञान हो जाता है जो इस प्रान्त के लोगों ने इस साधन से उपार्जित की है। मैं यहाँ उन्हें एक छोटे से टेबुल के रूप में देता हूँ—

खेती की उपज	१४,७६,००,००० रुपये
पशु आदि	८,२०,६५,००० ”
मुर्गी	१,०६,६८,००० ”
बाल के लिए पाले गये जन्तु	४४,८५,००० ”
	२४,५१,१८,००० ”

पाठक मेरे साथ यह बात स्वीकार करेंगे कि ये आंकड़े बहुत बड़े बड़े हैं, विशेषकर उस समय जब हमारा ध्यान इस बात की ओर जाता है कि ब्रिटिश कोलंबिया की जन-संख्या उस समय सात लाख से भी कम थी और जैसा कि मैंने दिखलाया है कि खेती ही एक ऐसा धन्धा था जिससे निवासियों का निर्वाह होता था।

मुझे यहाँ शीघ्र ही यह भी बतला देना चाहिए कि ब्रिटिश कोलंबिया गेहूँ तथा दूसरे धान्यों के उत्पन्न करने में अन्य कुछ प्रान्तों से बहुत पीछे है। अलबर्टा, सस्केचवान और मनीटोबा प्रान्त इस सम्बन्ध में अपनी विशेषता रखते हैं। वहाँ ये फसलें बड़े विशाल भूभाग में उत्पन्न की जाती हैं। और यही हाल उनकी उपज और उनके मूल्य का भी है।



मुझको न मिला है कभी प्यार

श्रीयुत जयशङ्कर 'प्रसाद'

वह कौन अकिंचन अति आतुर,
चिर तृषित कंठ से तृप्ति विधुर ।
अत्यन्त तिरस्कृत अर्थ-सदृश—
ध्वनि कम्पित करता बार बार ।

धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला है कभी प्यार ।

सागर लहरों का आलिंगन-
निष्फल उठकर गिरता प्रतिदिन ।
जल-वैभव है सीमा-विहीन,
वह रहा एक कन को निहार ।

धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला है कभी प्यार ।

अकरुण वसुधा से एक भलक,
वह स्मित मिलने को रहा ललक ।
जिसके प्रकाश में सकल कर्म
बनते कोमल उज्ज्वल उदार

धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला है कभी प्यार ।

फैलाती है जब उषा राग
जग जाता है उसका विराग
वंचकता, पीड़ा, घृणा, मोह
मिलकर बिखेरते अन्धकार

धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला है कभी प्यार ।

दल विरल डालियाँ भरीं मुकुल
भुक्तर्ती सौरभ रस लिये अतुल
अपने विषाद-विष में मूर्छित
काँटों से बिंध कर बार बार

धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला है कभी प्यार ।

जीवन-रजनी का अमल इन्दु
न मिला, स्वाती का एक बिन्दु
जो हृदय सीप में मोती बन
पूरा कर देता लक्ष हार ।

धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला है कभी प्यार ।

× × × ×

पागल रे ! वह मिलता है कब ?

उसको तो देते ही हैं सब ।

आँसू के कन कन से गिनकर —

यह विश्व लिये है ऋण उधार ।

तू क्यों फिर उठता है पुकार ?

'मुझको न मिला है कभी प्यार' ।

भारत में फ़ैडरल-सरकार की स्थापना के लिए एक शर्त रिज़र्व बैंक की स्थापना भी है। इस लेख में इस बैंक के प्रश्न पर बहुत सुन्दर ढंग से विचार किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

रिज़र्व बैंक

श्रीयुत मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

पिछले योरोपीय युद्ध के कारण जब संसार के अनेक देशों की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गई तब उनका ध्यान केन्द्रीय बैंक खोलने एवं अन्य महत्त्व-पूर्ण कार्य करने की ओर विशेष रूप से गया। सन् १९२० में बेलजियम के ब्रसेल्स नगर में एक आर्थिक सम्मेलन हुआ। उसमें यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि जिन देशों में कोई केन्द्रीय बैंक न हो उनमें ऐसा बैंक स्थापित करने का प्रयत्न किया जाय। फलतः इसके बाद दस वर्षों के भीतर कई देशों में रिज़र्व या केन्द्रीय बैंकों की स्थापना की गई।

भारत में भी सन् १९२५ में जो हिलटन-यंग-कमीशन बैठा था उसने अन्य प्रस्तावों के साथ साथ रिज़र्व बैंक की स्थापना के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव किया था। इसके बाद पहले १९२७ में, फिर १९२८ में भारत-सरकार के अर्थ-सदस्य सर बेसिल ब्लैकेट ने इस सम्बन्ध में एक बिल बड़ी व्यवस्थापक सभा में पेश किया था, किन्तु बाद को स्वराजी सदस्यों का रुख देखकर उन्होंने आगे बढ़ना ठीक नहीं समझा। १९३१ में 'इंडियन सेंट्रल बैंकिंग इनक्वायरी' कमिटी



ने जो रिपोर्ट प्रकाशित की उसमें उसने अर्थ-सदस्य के १९२८ के संशोधित बिल में कुछ आवश्यक परिवर्तन करने की सलाह दी। कमिटी की इस सलाह के सम्बन्ध में सरकार का क्या रुख है और वह जो रिज़र्व बैंक स्थापित करना चाहती है उसका क्या स्वरूप होगा, यह अभी नहीं कहा जा सकता। फिर भी इस प्रश्न पर अब जो इतना जोर दिया जाता है उससे इसे विशेष महत्त्व प्राप्त हो गया है। अतः इस पर विचार करना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है।

रिज़र्व बैंक के कार्य

आज-कल प्रत्येक देश के व्यवसाय-वाणिज्य की उन्नति में बैंकों का बड़ा प्रभाव है। हजारों-लाखों मनुष्यों से मामूली सूद पर रुपया इकट्ठा कर बैंक उसे अन्य लोगों को तथा व्यवसाय-वाणिज्य के संचालकों को कुछ अधिक सूद पर ऋण देते हैं। अब यह आवश्यक नहीं है कि दो-चार लखपतियों या करोड़पतियों की ही पूँजी से बड़े बड़े कारखाने खोले जायँ। बैंकों का प्रचार हो जाने से साधारण हैसियत

यह पुस्तक विचारित न की जा
NOT TO BE

के आदमी की भी बचत का रुपया बैंक के द्वारा कारखाने खोलने और वाणिज्य-व्यवसाय की उन्नति करने में लगाया जाता है।

यदि आप विदेशी व्यापारियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं तो आपको बैंकों से विशेष सहायता मिल सकती है। समुचित रूप से जाँच-पड़ताल कर वे आपको उक्त व्यापारियों की आर्थिक स्थिति का हाल बतला देंगे और आप जो माल उनके पास भेजेंगे उसका मूल्य भी वसूल कर देंगे। इसी तरह आप विदेशों से जो माल मँगाना चाहें, उसका दाम चुकाने में तथा और भी कई तरह बैंक आपकी सहायता कर सकते हैं।

यद्यपि कुछ बैंक ऐसे हैं जो एक साथ ही कई तरह के काम करते हैं, फिर भी साधारणतया बहुत से बैंकों ने अपने लिए प्रायः अलग-अलग कार्य चुन लिया है, जिसे वे प्रधान रूप से करते हैं। औद्योगिक बैंकों का मुख्य काम उद्योग-व्यवसायों की स्थापना करने में आर्थिक सहायता देना है। एक्सचेंज बैंक देश की मुद्रा के साथ विदेशों की मुद्रा के विनिमय का काम करते हैं। इसी तरह व्यापारिक बैंक, को-आपरेटिव बैंक, भूमि-बन्धक बैंक आदि की बात भी समझिए।

अब रिज़र्व बैंक को लीजिए। यह एक तरह का केन्द्रीय बैंक है। देश के समस्त बैंक इसके अधीन रहते हैं। इसे एक तरह से बैंकों का बैंक समझना चाहिए। जिस तरह सर्वसाधारण मामूली बैंकों में रुपया जमा करते हैं, उसी तरह बैंकवाले अपना रुपया रिज़र्व बैंक में जमा करते हैं। सरकार की ओर से इसे कुछ विशेषाधिकार भी प्राप्त होते हैं। सिक्के की विनिमय-दर स्थिर रखना इसी बैंक का काम है। देश के वाणिज्य-व्यवसाय एवं आर्थिक उन्नति के लिए जितना रुपया आवश्यक होता है, यह उसके जुटा देने का प्रबन्ध करता है। रिज़र्व बैंक बाज़ार-भाव या सूद की दर का नियन्त्रण करता है और देश की अर्थ-नीति पर उसका प्रभाव रहता है,

इससे अन्य बैंकों को उसका आधिपत्य मानना पड़ता है।

विदेशी मुद्रा के साथ हमारे सिक्के की विनिमय-दर का स्थिर रहना अत्यन्त आवश्यक है। उसके डाँवाडोल होने से विदेशों के साथ व्यापार करने में बड़ी कठिनाई होती है। मान लीजिए, कोई व्यापारी इंग्लैंड से दो हजार पाँड का माल मँगाने का आर्डर देता है, जिसके लिए आज उसे २७ हजार रुपये देने पड़ते हैं। माल तैयार होने और एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाये जाने आदि में काफ़ी समय लगता है। अतः दो-तीन महीने के बाद उसका दाम चुकाते समय यदि उक्त व्यापारी देखेगा कि विनिमय-दर के गड़बड़ के कारण अब उसे २७ हजार के बजाय ३० हजार रुपये देना आवश्यक है तो वह बड़े चक्कर में पड़ेगा। बैठे-बिठाये तीन हजार रुपये का घाटा उठाकर वह दुबारा इंग्लैंड से माल मँगाने का साहस न करेगा। तात्पर्य यह है कि विनिमय-दर में मामूली स्थिरता न होने से अन्य देशों के साथ वाणिज्य-व्यापार नहीं चल सकता। देश में ऐसी अवस्था उपस्थित न होने पावे, इसका उचित प्रबन्ध करना रिज़र्व बैंक का काम है।

इसी तरह देश के भीतर होनेवाले वाणिज्य-व्यवसाय की प्रगति के लिए एवं सर्वसाधारण को विशेष कष्ट न उठाना पड़े, इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि वस्तुओं के मूल्य में अचानक कोई भारी उथल-पुथल न हो। यह एक मानी हुई बात है कि बाज़ार में सिक्कों का प्रचलन कम या ज्यादा कर देने से एक हद तक वस्तुओं के मूल्य का नियंत्रण किया जा सकता है। यदि बाज़ार में मुद्रा की कमी होती है तो चीज़ों का भाव चढ़ जाता है और यदि अधिकता होती है तो भाव गिर जाता है। रिज़र्व बैंक मुद्रानीति का इस तरह परिचालन करता है कि वस्तुओं का बाज़ार-भाव एकदम घट-बढ़ न सके।

हमारे देश में सिक्कों के प्रचलन या नोट छापने का काम अभी तक सरकार ही करती आ रही है

और विनिमय-दर को स्थिर बनाये रखने का कार्य भी उसी के जिम्मे रहा है। देशवासियों के विरोध करने पर भी उचित से अधिक ऊँची विनिमय-दर निर्धारित करने और उसे ऊँचा बनाये रखने के लिए समय समय पर नोटों तथा सिक्कों की संख्या घटाने को सरकारी नीति के कारण देश को काफ़ी हानि पहुँची है। इस नीति से यहाँ के वाणिज्य-व्यवसाय की उन्नति में जो बाधा पहुँची है उसकी ओर देश के बड़े बड़े व्यापारियों तथा अर्थ-शास्त्रज्ञों-द्वारा कई बार ध्यान आकृष्ट किया जा चुका है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि यह काम एक स्वतन्त्र केन्द्रीय बैंक के जिम्मे कर दिया जाय, जो राष्ट्रहित को सर्वोपरि महत्त्व दे, तो ऐसा कदापि न होने पावे।

सङ्घटन कैसा हो

सन् १९२७ में रिज़र्व बैंक के सम्बन्ध में जो बिल बड़ी व्यवस्थापक सभा में पेश किया गया था उसमें यह स्पष्ट रूप से कह दिया गया था कि प्रस्तावित बैंक सरकारी बैंक न होगा। अर्थात् उसकी स्थापना में सरकारी पूँजी न लगाई जायगी, वह हिस्सेदारों का बैंक होगा और उन्हीं की पूँजी द्वारा उसका सञ्चालन किया जायगा। स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू, मालवीय जी तथा असेम्बली के अन्य कई सदस्यों ने उसे हिस्सेदारों का बैंक बनाने के प्रस्ताव का जोरों से विरोध किया। उन्हें यह भय था कि रिज़र्व बैंक को हिस्सेदारों का बैंक बना देने से इम्पीरियल बैंक की तरह उस पर भी विदेशी पूँजी-पतियों का प्रभुत्व स्थापित हो जायगा, जिससे देश के आर्थिक हित में बाधा पड़ेगी।

इस बिल पर विचार करने के लिए जो विशेष समिति बनी थी, उसके अधिक सदस्यों की भी वही राय थी कि रिज़र्व बैंक की स्थापना सरकारी बैंक की ही तरह की जाय। व्यवस्थापक सभा के सदस्यों की आलोचना से प्रभावित होकर शिमला के अधिवेशन में सरकार ने भी ऐसा करना

स्वीकार कर लिया था, किन्तु आलोचकों की दो मुख्य बातें मानने के लिए वह तैयार न थी। एक तो वह रिज़र्व बैंक के सञ्चालक-मण्डल में व्यवस्थापक सभा के किसी सदस्य को स्थान नहीं देना चाहती थी, दूसरे उसने इस बात का आश्वासन देने से भी इनकार कर दिया कि बैंक के गवर्नर तथा डिप्टी गवर्नर का पद भारतीयों को ही दिया जायगा। अन्त में बहुमत को अपने विपक्ष में देखकर भारत सरकार के अर्थ-सदस्य सर बेसिल ब्लैकेट ने रिज़र्व बैंक के प्रस्ताव की आगे की कार्रवाई ही स्थगित कर दी।

सन् १९२८ में सर ब्लैकेट ने फिर एक नया बिल पेश करना चाहा था, किन्तु अध्यक्ष श्री पटेल की अनुमति न मिलने से वे उसे पेश न कर सके। इस बिल में रिज़र्व बैंक को सरकारी बैंक बनाने के विचार का परित्याग कर पुनः यह प्रस्ताव किया गया था कि वह हिस्सेदारों का ही बैंक हो। इसमें यह भी कहा गया था कि सञ्चालकों की संख्या २४ रहेगी। इनमें दो भारतीय व्यापारी-संघ द्वारा, दो असोशिएटेड चेम्बर आफ़ कामसे द्वारा, एक प्रान्तीय को-ऑपरेटिव बैंकों-द्वारा तथा ११ विभिन्न स्थानों के हिस्सेदारों-द्वारा चुने होंगे। बाक़ी आठ सञ्चालकों को जिनमें एक सरकारी विशेषज्ञ, एक गवर्नर तथा दो डिप्टी गवर्नर होंगे, सपरिषद् गवर्नर-जनरल मनोनीत करेंगे। तात्पर्य यह है कि इस संशोधित बिल में भी व्यवस्थापक सभा के प्रतिनिधियों को सञ्चालक-मण्डल में स्थान देने की गुज़ाईश नहीं रक्खी गई थी।

सर बेसिल ब्लैकेट ने पहली बार जो बिल असेम्बली में पेश किया था उस पर सिलेक्ट कमेटी ने क्या राय दी थी, उसका भी उल्लेख यहाँ कर देना चाहिए। यह तो हम लिख ही चुके हैं कि कमेटी का बहुमत रिज़र्व बैंक को सरकारी बैंक बनाने के पक्ष में था। साथ ही उसकी राय थी कि सञ्चालक-मण्डल में कुल १६ सदस्य रक्खे जायँ। इनमें दो भारतीय व्यापारी-सङ्घ के, दो असोशिएटेड चेम्बर

ऑफ कामर्स के, एक प्रान्तीय को-ऑपरेटिव बैंकों का, तीन बड़ी व्यवस्थापक सभा के तथा तीन प्रान्तीय कौंसिलों-द्वारा निर्वाचित किसानों के प्रतिनिधि हों। गवर्नर, डिप्टी गवर्नर तथा दो भारतीय सञ्चालक बड़े लाट-द्वारा नामजद किये जायँ और एक सरकारी अफसर भी रहे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपयुक्त दोनों योजनाओं में एक बड़ा अन्तर यह है कि जहाँ सिलेक्ट कमिटी के अधिक सदस्यों तथा भारतीय नेताओं की इच्छा थी कि रिजर्व बैंक सरकार-द्वारा परिचालित बैंक हो, वहाँ सरकार चाहती थी कि वह हिस्सेदारों का बैंक हो। हमारे खयाल से यह प्रश्न विशेष महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि दोनों के पक्ष-विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। यद्यपि यह सत्य है कि हिस्सेदारों का बैंक होने से प्रस्तावित रिजर्व बैंक पर अनायास ही विदेशियों का प्रभाव जम जाने की सम्भावना है, जो इस देश के हित-साधन की अपेक्षा स्वार्थ-सिद्धि की ओर विशेष ध्यान देंगे, फिर भी यदि उसके सङ्घटन की नियमावली में ऐसी कोई शर्त रख दी जाय कि सञ्चालक-मण्डल में अधिकतर सदस्य भारतीय होंगे और उसके गवर्नर के पद पर किसी सुयोग्य भारतीय की ही नियुक्ति की जायगी, तो फिर इस योजना के सम्बन्ध में देश के प्रतिनिधियों को सम्भवतः कोई भी आपत्ति न होगी।

भारत में केन्द्रीय बैंक स्थापित करने के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए जो कमिटी बनी थी उसके काम में सहायता करने के निमित्त विदेशों से भी कुछ विशेषज्ञ बुलाये गये थे। उन्होंने अपना यह मत प्रकट किया था कि रिजर्व बैंक चाहे सरकारी बैंक हो, चाहे हिस्सेदारों का, यदि सरकार की ओर से उसके नित्य प्रति के काम में कोई हस्तक्षेप न किया जाय तो उसका सञ्चालन पूर्णतया सन्तोषजनक रीति से किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि केन्द्रीय बैंक की स्थापना सरकारी बैंक के रूप में ही की

जाय, इसका आग्रह करना अनावश्यक है। मुख्य बात केवल इतनी ही है कि उसके सङ्घटन में भारतीयों को विशेष स्थान मिले और उसका सञ्चालन सम्पूर्ण रूप से देश के हित की दृष्टि से किया जाय। भारत-सचिव अथवा बैंक आफ इंग्लैंड की ओर से उसकी नीति में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई हस्तक्षेप न होना चाहिए।

स्थापना की शर्तें

तृतीय गोलमेज़-परिषद् ने आर्थिक प्रतिबन्धों पर विचार करने के लिए जो कमिटी नियुक्त की थी उसने रिजर्व बैंक की स्थापना के सम्बन्ध में मुख्यतया इन चार शर्तों पर जोर दिया है—(१) भारतीय आय व्यय का संतुलन सम्यग् रूप से हो जाय, (२) अल्पकालीन ऋणों की तादाद बहुत घटा दी जाय, (३) भारत-सरकार के स्वर्ण-भाण्डार में काफी सोना इकट्ठा हो जाय तथा (४) भारत का निर्यात-व्यापार आयात-व्यापार की अपेक्षा जिस तरह पहले बढ़ा रहता था, उसी तरह रहने लगे।

जैसा कि श्री षण्मुखं चेटी तथा श्री नलिनीरञ्जन सरकार ने कहा है, इनमें से पहली दो शर्तें पूरी हो चुकी हैं। भारत-सरकार के वजट का सन्तुलन हो गया है और अल्पकालीन ऋणों की मात्रा भी अब बहुत घटा दी गई है। तीसरी शर्त अर्थात् पर्याप्त स्वर्ण-राशि के सञ्चय की शर्त भी करीब करीब पूरी हो गई है। दिसम्बर १९३२ के अन्त में कुल १,७४८ करोड़ के नोट भारत में प्रचलित थे। उस समय नोटों के तथा स्वर्ण-मान के संरक्षित भाण्डार में ४४.२ करोड़ का सोना मौजूद था और अब इसकी मात्रा ४७ करोड़ तक जा पहुँची है। इस सम्बन्ध में अभी हाल में ही बङ्गाल की नेशनल चेम्बर ऑफ कामर्स (राष्ट्रीय व्यापारिक संस्था) की वार्षिक बैठक के समय सभापति की हैसियत से भाषण करते हुए श्री नलिनीरञ्जन सरकार ने कहा था कि “रिजर्व बैंक की स्थापना के विचार से भारत-सरकार

के स्वर्ण-भाण्डार की स्थिति सन्तोषजनक रूप से सुदृढ़ है।”

भारत-सरकार चाहती तो और भी अधिक सेना इकट्ठा कर सकती थी, किन्तु इस ओर ध्यान आकर्षित किये जाने पर भी उसने ऐसा नहीं किया और गते डेढ़ वर्ष में कोई १ अरब १७ करोड़ का सेना भारत के बाहर चला गया। जो हां, इसमें सन्देह नहीं कि यदि उपरि लिखित शर्तों में से एकाध शर्त पूरी न हो तो उसके कारण रिजर्व बैंक की स्थापना में विलम्ब नहीं होना चाहिए और न इस बहाने दायित्वपूर्ण प्रगति में कोई बाधा ही डाली जानी चाहिए।

हम देखते हैं कि संसारव्यापी व्यापारिक मन्दी का प्रभाव भारत पर भी पड़ा है। भिन्न-भिन्न देशों ने बाहर से आनेवाली चीजों पर जो आयात-कर लगा दिये हैं उनके कारण एक तो यों ही वहाँ भारतीय माल की खपत कम होने लगी थी, दूसरे ओटावा-सम्मेलन के निश्चय-द्वारा साम्राज्यान्तर्गत सरंक्षण की जो नीति ग्रहण की गई है उसका भी यहाँ के निर्यात-व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इस समझौते के कारण फ्रांस, जर्मनी,

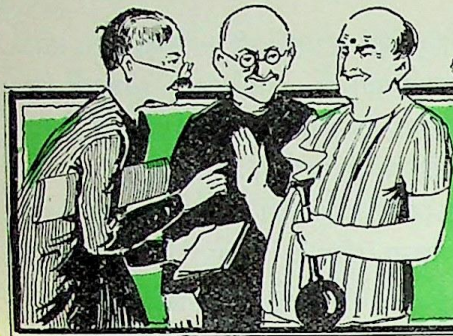
अमेरिका आदि देशों से पहले की अपेक्षा बहुत कम वस्तुएँ यहाँ आने पाती हैं। अतः यह स्पष्ट है कि जब भारत उक्त देशों से पर्याप्त माल न लेगा तब वे ही क्यों भारत का माल खरीदेंगे। ऐसी अवस्था में ऊपर की चौथी शर्त कब तक पूरी हो सकेगी, यह कहना कठिन है। फिर भी रिजर्व बैंक की स्थापना में यह कोई बड़ी बाधा नहीं है। जैसा कि लन्दन के ‘एकानामिस्ट’ पत्र ने लिखा था, आस्ट्रिया में रिजर्व बैंक की स्थापना उस समय हुई थी, जब वह आर्थिक विनाश के तट पर पहुँच चुका था और न्यूजीलैंड में भी वर्तमान आर्थिक संकट के समय ही इस तरह का केन्द्रीय बैंक स्थापित किया जा रहा है। अतः निर्यात-व्यापार की वर्तमान स्थिति देख कर या अन्य किसी कारण से भारत में रिजर्व बैंक स्थापित करने के कार्य को टालते जाना और भारतीयों के हाथ आर्थिक दायित्व सौंपने में विलम्ब करना उचित नहीं प्रतीत होता। आशा है, असेम्बली के ग्रीष्माधिवेशन तक सरकार अपनी नीति स्पष्ट कर देगी और इस प्रश्न का निपटारा शीघ्र ही सन्तोष-जनक रूप से हो जायगा।

प्रभात

श्रीयुत ‘गिरीश’

सरसिज के अलसित मानस में
करने को विकसित उल्लास।
गाते गान मधुपगण फिरते
नवल प्रणय-जागृति के दास।

चन्द्रदेव की वदन-म्लानता
में विकसित है अलि-उल्लास।
आओ मेरे क्लान्त हृदय में
भर दो मंजुल हास-विलास।



विविध विषय

यदि

[कुँवर राजेन्द्रसिंह]



यह शब्द जितना छोटा, उतना खोटा है। यह माया का मित्र, मोह का जनक, सन्देह का सहायक, पश्चात्ताप का परिपोषक, मानसिक वेदना का वर्द्धक और शान्ति का समूलनाशक है। सब जगह इसका राज्य है, सब हृदयों पर इसकी हुकूमत है। कपट इसका वेश है, निःश्वासों से इसकी बुधा की वृत्ति होती है और आसुओं से इसकी वृष्णा शान्त होती है। जहाँ यह, वहाँ वेदान्त कहाँ ? वहाँ तो यही है कि 'यदि' ऐसा हुआ होता तो यह परिणाम होता, वहाँ यह विचार कहाँ कि होनहार अवश्य होगा।

कौन 'यदि' का पुजारी नहीं है—चाहे वह विद्वान् हो या मूर्ख, चाहे वह धनी हो या निर्धन। कौन इसके पंजे में नहीं फँसा और फँसकर सुखी रहा ? रघुकुल-तिलक महाराज दशरथ की इसने जान ले ली। उन्हें पुत्र-वियोग असह्य हो गया। "हा रघुनन्दन प्राण पीरते, तुम बिन जियत बहुत दिन बीते" यही रटते रटते शरीर त्याग दिया। जो इतना बड़ा विद्वान् हो, जो इतना बड़ा मर्मज्ञ हो, जो इतना बड़ा शिष्ट और सभ्य हो, वह अपनी स्त्री से कहे—"वर माँगत उर मैं नहिं पीरा, गिरी जीभ मुँह परे न कीरा।" ये शब्द उनके नहीं, 'यदि' के हैं। वारम्बार

महाराज के हृदय को यह विचार व्याकुल करता होगा कि यदि महारानी वरदान न मांगती तो रामचन्द्र जी के वन जाने का प्रश्न क्यों उपस्थित होता और क्यों पुत्र-वियोग में जलना पड़ता ? आह यह माया नहीं थी या मोह नहीं था तो और क्या था ? क्या महाराज दशरथ नहीं जानते थे कि 'गहना कर्मणो गतिः' ? यह कौन कह सकता है कि नहीं जानते थे। तब भी चैन नहीं था। और होता कैसे ? 'यदि' हृदय को शान्ति नहीं लेने देता होगा।

'यदि' को स्वतन्त्रता मिलने से वह ईश्वर पर भी सन्देह उत्पन्न कर सकता है—मनुष्य की क्या गणना। एक कवि कहता है—

“जब से अँगरेज़ी पढ़ी तब से
हमरो तुम पै बिसवास नहीं,
तुम हो की नहीं यह सोंचो करें
परमान मिलै परकास नहीं,
अनजाने न होत सनेह “विशाल”
सनेह बिना अभिलास नहीं,
यहि ते शिव जी अब तो हमको
तरिखे की रही कलू आस नहीं ॥

ये 'यदि' द्वारा प्रेरित वाक्य हैं। कवि के हृदय में सन्देह की सीमा नहीं है। यही विचार उठते होंगे कि 'यदि' ईश्वर है तो अमुक काम कैसे हुआ और 'यदि' ईश्वर नहीं है तो इस संसार का सूत्रधार कौन है ? ईश्वर है या नहीं, इस बड़े मसले को छोड़ दीजिए, प्रतिदिन के व्यावहारिक कार्यों को लीजिए और विचार कीजिए तो पता चलेगा कि

कितने कम कामों में से आपका हृदय 'यदि' को निकालने के लिए राजी होगा और निष्कपटता से स्वीकार कर लेगा कि जो होना था सो हुआ।

यही नहीं, इतिहास पर भी 'यदि' का साम्राज्य है। विभीषण का नाम सभी जानते हैं, उनका नाम हो गया है। जो अपने कुटुम्बियों का विरोधी हुआ उसे प्रायः लोग विभीषण कहने लगते हैं। अर्पणों को क्या, कवियों तक को यह सन्देह है कि 'यदि' विभीषण ने भेद न बतलाया होता तो महाराज रामचन्द्र उन्हें लङ्का का राज्य न देते। सुकविदास ने तो स्पष्ट शब्दों में ही कह डाला—“गढ़ लंक विभीषण को जो दियो तो निशंक है भेद बतायवे को” किस खूबसूरती से जिस बात पर तुलसीदास ने पर्दा डाला था उसे कितनी बुरी तरह से 'यदि' ने हटा दिया।

'यदि' पश्चात्ताप का तो घनिष्ठ सम्बन्धी है। महारानी जानकी जी को आजन्म यह पश्चात्ताप रहा होगा कि 'यदि' वे अपने पति से सोने का मृग लाने के लिए आग्रह न करतीं तो वे कुटी छोड़कर क्यों जाते? इस विचार से महारानी को सन्तोष न होता होगा कि जो हो करके रहे वही होनहार है। दूसरा 'यदि' उससे अधिक दुःखद था कि 'यदि' लक्ष्मण जी को ही न भेज दिया होता तो मुसीबतों का पहाड़ सिर पर क्यों आ टूटता। ये दोनों 'यदि' महारानी के हृदय को शान्ति न लेने देते होंगे। ध्यानपूर्वक देखा जाय तो विदित होता है कि 'यदि' ही पश्चात्ताप है। द्रौपदी का उदाहरण लीजिए। कितना दुःख उन्हें 'यदि' देता होगा। जब घर छोड़ना पड़ा, राज्य छोड़ना पड़ा, जङ्गलों में महान् कष्ट उठाये, यही सोचती होंगी कि 'यदि' दुर्योधन से यह न कहा होता कि “अन्धे के अन्धा होता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं” तो ये दिन क्यों देखने पड़ते? इस 'यदि' से अधिक उत्तरा को इसका दुःख होगा कि 'यदि' चक्रव्यूह के युद्ध के दिन अर्जुन घर से बाहर न होते तो वह तरुणावस्था में ही क्यों अनाथ होती? 'यदि' के न होने से हृदय मान लेगा कि जो ईश्वर की इच्छा थी वही हुआ।

'यदि' वेदान्त का बड़ा विरोधी है। ऐसा कौन विषय है जिसमें 'यदि' का हाथ न हो और जिसमें 'यदि' है वहां निश्चिन्तता नहीं। निश्चिन्तता के अभाव में सन्देह है, सन्देह में भय है और भय में शान्ति कहां। संसार अत्यन्त सुखी होता यदि यह शब्द किसी कोश में न होता। कहा जाता है कि नेपोलियन की मेज़ पर जो कोश रखा जाता था उसमें से 'असम्भव' शब्द निकाल दिया जाता था। उस शब्द से 'यदि' का अधिक प्रभाव है। कोश से इसे लुप्त कर देने पर भी यह संसार में रहेगा। यह अनादि है, यह अनन्त है, यह सर्वव्यापी है, नेपोलियन को सेंट हेलिना में 'असम्भव' से अधिक 'यदि' ने दुःख दिया होगा। क्या न सोचता होगा, 'यदि' ऐसा हुआ होता तो यह होता, 'यदि' वह बात हुई होती तो वह परिणाम होता। एक तो युद्ध में हारने का दुःख, दूसरे कठोर 'यदि' का।

मानसिक वेदना उत्पन्न करना 'यदि' का मामूली खेल है। इसके उदाहरण रोज़ मिलते हैं। अमानुल्ला को देखिए। विदेश-यात्रा से लौटे भी नहीं थे, तभी अफ़ग़ानिस्तान में राजद्रोह फैल गया था। उन्हें स्वप्न में भी यह खयाल न आता होगा कि उनकी विदेश-यात्रा जिसके लिए वे अत्यन्त उत्सुक थे, उनके देश से निकाले जाने का कारण बन जायगी। उस यात्रा में उनका जो मान हुआ, जो स्वागत हुआ, जो संसार में धूम मच गई थी, वही अब उनके हृदय को जला रही होगी। कहा यही जाता है कि इस यात्रा की वजह से अफ़ग़ानिस्तान में विद्रोह फैला था। राजा को राज्य से दूर रहना नीति के विरुद्ध है, क्योंकि जहाँ राजा और प्रजा का संसर्ग जाता रहा वहाँ सब कुछ सम्भव है। हाँ, वही अफ़ग़ानिस्तान का अमीर जिसकी आज्ञा पर कल लोग जान देने पर सहर्ष तैयार थे, आज विदेश में पड़ा मकानों के बिकवाने का काम करके पेट पाल रहा है! अमानुल्ला के हृदय की गति क्या होती होगी जब उन्हें ध्यान आता होगा कि 'यदि' यात्रा करने की न ठानी होती, 'यदि' सुधारों में जल्दी न की होती, तो आज यह दशा क्यों होती।

जब ऐसे विचार हृदय में उठ रहे हों, जब भविष्य अन्धकारमय हो और 'यदि' “मनहु जरे पर लोन

लगावत" का काम कर रहा हो तो उस दुख का अनुमान करना कठिन है। यही हाल महाराज पृथ्वीराज का हुआ, यही हाल वाजिदअली शाह का हुआ होगा, यही हाल कैसर का होगा और यही हाल प्रतिदिन लाखों मनुष्यों का होता है। 'यदि' की सब पर हुक्मत है, "यदि" पर किसी की हुक्मत नहीं। वाह रे 'यदि' ! "जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।"

प्रयाग की मनुष्य-गणना

[प्रोफेसर दयाशङ्कर दुबे]

भारत में मनुष्य-गणना सरकार-द्वारा प्रति दसवें वर्ष की जाती है। पिछली मनुष्य-गणना २६ फरवरी सन् १९३१ को हुई थी। इस मनुष्य-गणना की रिपोर्ट का एक भाग हाल में ही प्रकाशित हुआ है। उसके आधार पर प्रयाग के सम्बन्ध में हम आवश्यक बातें इस लेख में देने का प्रयत्न करते हैं। सन् १९३१ की मनुष्य-गणना के समय असहयोग-आन्दोलन का जोर था और कुछ व्यक्तियों ने उसका बहिष्कार भी किया था। मनुष्य-गणना-सम्बन्धी कार्य भी इस बार उत्तनी खूबी से नहीं हुआ जैसा कि पहले होता था। इसलिए इस मनुष्य-गणना के अंक उतने विश्वसनीय नहीं माने जा सकते जितने कि पिछली मनुष्य-गणना के माने जाते हैं तिस पर भी सन् १९४१ की मनुष्य-गणना तक हमको इसी मनुष्य-गणना के अंकों पर निर्भर रहना पड़ेगा।

सन् १९२१ में प्रयाग की जन-संख्या १ लाख ८३ हजार ६ सौ १४ थी। इसमें १० हजार १६ व्यक्ति कंटूनमेंट (छावनी) में रहते थे और शेष १ लाख ७३ हजार ८ सौ ९८ व्यक्ति शहर में रहते थे। गत दस वर्षों में प्रयाग में २६ हजार ६ सौ ९४ व्यक्तियों की वृद्धि हुई। इस प्रकार की वृद्धि युक्त-प्रान्त के प्रायः सब प्रधान नगरों में हुई है।

प्रयाग में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बहुत कम है। १ लाख ८४ हजार व्यक्तियों में से १ लाख ४ हजार पुरुष और केवल ८० हजार स्त्रियाँ थीं, अर्थात् स्त्रियों

की संख्या पुरुषों की अपेक्षा ८० प्रतिशत से कम थी। स्त्रियों की कमीसे समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है और उसके दुष्परिणामों से किस प्रकार बचना चाहिए, इन प्रश्नों पर प्रयाग के समाज-सुधारकों को शीघ्र ध्यान देना चाहिए।

प्रयाग में हिन्दुओं की संख्या सबसे अधिक है। धर्म के अनुसार सन् १९२१ और १९३१ में प्रयाग शहर की जन-संख्या नीचे लिखे अनुसार थी—

धर्म	१९३१		१९२१	
	संख्या (हज़ार)	प्रति-शत	संख्या (हज़ार)	प्रति-शत
हिन्दू	१,१४	६५	१,०६	६७
मुसलमान	५४	३१	४३	२८
ईसाई	५	३	६	४
अन्य	१	१	२	१
मीज़ान	१,७४		१,५७	

इस कोष्ठक से मालूम होता है कि प्रयाग में हिन्दुओं की संख्या करीब दो तिहाई है। गत दस वर्षों में मुसलमानों की संख्या में हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई, इसलिए अब मुसलमानों की संख्या प्रयाग की सम्पूर्ण जन-संख्या का ३१ प्रतिशत हो गई है। मुसलमानों की इस वृद्धि के कारण ही प्रयाग-म्युनिसिपैलिटी में मुसलमान-प्रतिनिधियों की संख्या में एक सदस्य की वृद्धि कर दी गई है। अन्य धर्मावलम्बियों में जैन, सिख और पारसी सम्मिलित हैं, जिनकी संख्या सन् १९३१ में क्रमानुसार ३०२, १०३ और ६४ थी। गत दस वर्षों में ईसाइयों और अन्य धर्मावलम्बियों की संख्या में कमी हुई है।

प्रयाग में बालविवाह भी बहुत होते हैं। आगे के कोष्ठक में २६ फरवरी सन् १९३१ के १५ वर्ष से कम उमरवाले विवाहित लड़कों और १० वर्ष से कम उमरवाली विवाहित लड़कियों की संख्या दी जाती है—

इस कोष्ठक से मालूम होता है कि प्रयाग में सन् १९३१ में विधवाओं की संख्या १०,७६२ थी। सन् १९२१ में यह संख्या १२,०८७ थी। इससे स्पष्ट है कि गत दस वर्षों में इस नगर की जन-संख्या बढ़ने पर भी विधवाओं की संख्या कम हो गई। परन्तु १० वर्षों से कम उमरवाली विधवाओं की संख्या में वृद्धि हुई। सन् १९२१ में यह संख्या ४० थी। सन् १९३१ में पाँच वर्ष से कम उमरवाली विधवाओं की संख्या ५१ तक बढ़ गई। इस वृद्धि का प्रत्यक्ष परिणाम यह बालविवाह है। हिन्दुओं में ही विधवाओं की संख्या बहुत अधिक है। प्रयाग के समाज-सुधारकों को विधवाओं की दशा सुधारने की तरफ उचित ध्यान देना चाहिए।

प्रयाग में सन् १९२१ में साक्षर व्यक्तियों की संख्या ३२ हजार थी। वह बढ़कर सन् १९३१ में ४६,७३४ हो गई। यह संख्या संपूर्ण जन-संख्या के २५ प्रति सैकड़ा के बराबर है। प्रयाग में ७५ प्रतिशत अर्थात् तीन चौथाई व्यक्ति ऐसे हैं जो न अपने मित्र को कोई पत्र ही लिख सकते हैं, न उनका पत्र ही पढ़ सकते हैं। वे निरक्षर भट्टाचार्य ही हैं। सन् १९३१ में धर्म के अनुसार साक्षर व्यक्तियों की संख्या नीचे लिखे अनुसार थी—

धर्म	साक्षर व्यक्तियों की संख्या (हजार में)			प्रतिशत कितने साक्षर हैं।
	पुरुष	स्त्री	मीजान	
हिन्दू	२२.६	६.२	२८.८	२४
मुसलमान	६.६	१.६	११.८	२१
अन्य	३.७	२.५	६.२	७७
मीजान	३६.२	१०.६	४६.८	२५

इस कोष्ठक से मालूम होता है कि मुसलमान सबसे अधिक पिछड़े हुए हैं। हिन्दुओं की दशा भी कुछ अच्छी नहीं है। दोनों में ही अविद्या का साम्राज्य है। तीन चौथाई से अधिक व्यक्ति अपढ़ हैं। साक्षर स्त्रियों की संख्या तो बहुत ही कम है। साक्षर पुरुषों की

संख्या ३३ प्रतिशत है। तो भी दो तिहाई पुरुष और ८८ प्रतिशत स्त्रियों को अक्षर ज्ञान तक नहीं है। गत दस वर्षों में साक्षर व्यक्तियों की संख्या में जो वृद्धि हुई है वह बहुत ही कम है। यदि इसी गति से साक्षर व्यक्तियों की संख्या बढ़ेगी तो संपूर्ण जनता को साक्षर होने में सैकड़ों वर्ष लग जायेंगे। शिक्षा-प्रचार का कार्य ज़ोरों से किया जाना आवश्यक है।

प्रयाग की म्युनिसिपालिटी कई वर्षों से प्रयाग के सब मोहल्लों में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर देने का विचार कर रही है, परन्तु अभी तक कुछ थोड़े ही मोहल्लों में कर सकी है। इससे २० वर्ष तक की उमर के ऐसे लड़के-लड़कियों की संख्या जो सन् १९३१ में अक्षर-ज्ञान-रहित ३० हजार से कम न थी। नीचे के कोष्ठक में सन् १९३१ में १० से २० वर्ष तक की उमर के अपढ़ लड़के और १० से १५ वर्ष तक की उमर की अपढ़ लड़कियों की संख्या दी जाती है—

—	साक्षर की संख्या	अपढ़ की संख्या	प्रतिशत कितने अपढ़ हैं
लड़के (१० से २० वर्ष तक की उमर)	८,७४८	१२,२६७	६०
लड़कियाँ (१० से १५ वर्ष तक की उमर)	१,५४८	६,८८५	८१

इस कोष्ठक से स्पष्ट है कि प्रयाग में १० से २० वर्ष तक के ६० प्रतिशत लड़के और १० से १५ वर्ष की ८१ प्रतिशत लड़कियाँ अपढ़ थीं। प्रयाग की म्युनिसिपालिटी के शिक्षा-संबंधी कार्य की असफलता का यह एक प्रमाण है। उसे इस तरह से कार्य करना चाहिए जिसमें प्रारम्भिक शिक्षा सब मोहल्लों में अनिवार्य हो जाय और सन् १९४१ की मनुष्य-गणना के समय १० से २० वर्ष तक के लड़के और १० से १५ वर्ष तक की लड़कियाँ बहुत ही कम संख्या में अपढ़ पाई जायँ।

प्रयाग एक विश्वविद्यालय का केंद्र है, जिसमें करीब १८०० विद्यार्थी पढ़ते हैं। यहाँ पर तीन इंटर मीडियेट कालेज और कई हाई स्कूल हैं। प्रांत के कई प्रधान सरकारी दफ्तर भी यहाँ हैं। इसलिए अँगरेज़ी जाननेवालों की संख्या सन् १९३१ में यहाँ २०, ६६६ थी। सन् १९२१ में यह संख्या १५ हजार थी। इस प्रकार १० वर्षों में अँगरेज़ी जाननेवालों की संख्या में ५ हजार की वृद्धि हुई। सन् १९३१ में प्रयाग में अँगरेज़ी जाननेवालों का व्योरा धर्मानुसार नीचे दिया जाता है—

धर्म	अँगरेज़ी जाननेवालों की संख्या (हज़ार में)		
	पुरुष	स्त्री	मीज़ान
हिन्दू	१०.८	१.३	१२.१
मुसलमान	३.४	०.१	३.५
अन्य	३.२	२.१	५.३
मीज़ान	१७.४	३.५	२०.९

अँगरेज़ी पढ़ी-लिखी स्त्रियों की संख्या इस नगर में सन् १९३१ में करीब ३ हजार ५ सौ थी, उसमें से करीब २ हजार ईसाई थी। केवल १२५ मुसलमान स्त्रियाँ ही अँगरेज़ी जानती थीं। अँगरेज़ी जाननेवाली हिन्दू स्त्रियों की संख्या १२७१ थी।

भारतवासियों की स्थानान्तर गमन-शक्ति बहुत कम है। सन् १९३१ की मनुष्य-गणना के समय प्रयाग में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक थी जिनका जन्म प्रयाग में या इलाहाबाद-ज़िले में ही हुआ था। नीचे के कोष्ठक में इस सम्बन्ध में कुछ अंक दिये जाते हैं—

पैदा होने के स्थान	व्यक्तियों की संख्या (हज़ार)	प्रति सैकड़ा
(१) जो इलाहाबाद ज़िले में पैदा हुए	१४.८	८१
(२) जो युक्त-प्रांत के अन्य ज़िलों में पैदा हुए	२.५	१३
(३) जो भारत के अन्य प्रांतों में पैदा हुए	६	५
(४) जो भारत के बाहर अन्य देशों में पैदा हुए	२	१

इस कोष्ठक से पता लगता है कि प्रयाग में रहने-वाले करीब ६४ प्रति सैकड़ा व्यक्ति युक्त-प्रांत में ही पैदा हुए थे, उसमें से ८१ प्रतिशत ऐसे थे जिनका जन्म इलाहाबाद-ज़िले में हुआ था। अन्य प्रांतों के जो ६ हजार व्यक्ति प्रयाग में २६ फरवरी सन् १९३१ को मौजूद थे उनमें से काफी संख्या यात्रियों की रही होगी। जो भारत के बाहर पैदा हुए थे उनमें अधिकांश संख्या सरकारी योरापीय नौकरों और उनके कुटुम्बियों की थी।



गृह-देवता

श्रीयुत रामचरित उपाध्याय

(१)

लक्ष्मी वही गौरी वही,
है कल्पलतिका भी वही ।
जिसमें सतीपन है भरा,
वस है वही गृह-देवता ॥

(२)

जिसमें धरित्री-सी क्षमा,
जिसमें सुधा-सी है हँसी ।
सरिता बनी जो प्रेम की,
वह है सती महि-पावनी ॥

(३)

उसके न सम है शक्र-गृह,
जिस भोंपड़े में है सती ।
समता सती की स्वप्न में,
क्योंकर शची पा जायगी ॥

(४)

साध्वी रहे तो कन्दरा भी,
रम्य है कैलास से ।
है रत्नमन्दिर प्रेत-गृह-सा,
यदि न हो गृह-स्वामिनी ॥

(५)

है देवतरु-सम तरु वही,
जिसके तले रहती सती ।
किस बात का टोटा वहाँ ?
रहती जहाँ पर सुरगवी ॥

(६)

है ऐन्द्रपद क्या, यदि मिले—
स्पर्शन सती-पद-पद्म का ।
कर से सती के जल मिले तो,
विष्णु-चरणोदक वही ॥

(७)

क्या लाभ तीर्थाटन किये ?
जब गेह ही में है सती ।
गंगा बहे जब द्वार पर,
तब कूप को क्यों खोदना ?

(८)

है कोप लयकारी सती का,
है कृपा जग-पावनी ।
है एक कर में काल उसके,
एक कर में काल है ॥

(९)

क्यों हो स्फटिक में स्वच्छता—
वह, जो सती के चित्त में ।
जिसकी सती में भक्ति है,
है मुक्ति उसके हाथ में ॥

(१०)

अहि के वदन को चूमना,
उतना भयानक है नहीं ।
जितना भयंकर है सती को—
छेड़ना माना गया ॥

विचार विमर्श

‘सतसई’ का ‘सपर’

[श्रीयुत इकबाल वर्मा ‘सेहर’]



हाकवि विहारी-कृत ‘सतसई’ के एक दोहे को लेकर हिन्दी में खासा विवाद चल पड़ा है। विवाद का विषय दोहे का ‘सपर’—शब्द है। इस सम्बन्ध में जो लेख प्रकाशित हुए हैं उन को मैंने भी बड़ी दिलचस्पी से पढ़ा है। उपर्युक्त विवाद में भाग लेने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। जो कुछ लिखूँगा, अपनी तुच्छ सम्मति के प्रकाशन रूप में ही। कदाचित् इसका भी साहस न होता, यदि मेरे एक मित्र ने ‘सतसई’ की उस हस्त-लिखित प्रति का स्मरण न दिला दिया होता जो मेरे पास है और जिसके अन्त में संवत् १७८७ लिखा हुआ है।

मैंने इस प्रति में उस दोहे की खोज की तब वह ‘अन्योक्ति’-शीर्षक में ६४६ नम्बर पर इस प्रकार लिखा हुआ मिला—

“पटु भावै अब का करै सपर परेई संग।

सुपी परेवा पुहुमि मैं एकै तुही विहंग ॥”

२०० वर्षों की लिखी हुई इतनी पुरानी प्रति में ‘सपर’—शब्द का ही लिखा होना इस बात को प्रमाणित कर रहा है कि उपर्युक्त विवाद के सम्बन्ध में जिन विद्वानों ने ‘सपर’ के स्थान में ‘सफर’ या, ‘सदा’ माना है उनका यह मत ठीक नहीं। यदि ‘सपर’ को ‘सफर’ का अपभ्रंश मान लें तो भी अर्थ की दृष्टि से माननीय नहीं, क्योंकि परेई न सिर्फ ‘सफर’ में बल्कि ‘सफर-हज़र’ दोनों

में परेवा के साथ है। तभी परेवा ‘सुखी’ हो सकता है। फिर कवि के ‘सफर’ पर ही जोर देने के क्या मानी? अर्थ की दृष्टि से ‘सदा’ का होना ठीक होता, पर वैसा है नहीं। कारण, काव्य का सौन्दर्य उसके संगीतमय होने में है और ‘सदा परेई’ में वह संगीतमय ध्वनि नहीं है जो ‘सपर परेई’ में है। कवि एक एक शब्द को खोज खोज कर रखता है। खोज में ही तो उसका कमाल है—हाँ, शर्त यह है कि वह शब्द निरर्थक न हो।

अब ‘सफर’ और ‘सदा’ को छोड़ते हुए केवल ‘सपर’ और उसी के अर्थ पर विचार करना रह जाता है। पं० मदनलाल चतुर्वेदी ने ‘सपर’ को ‘निर्वाह’ के अर्थ में लिया है। मैं पं० मातादीनजी शुक्ल के इस विचार से सहमत नहीं हूँ कि “निर्वाह तो ‘पुट.....का करै’ से ही हो जाता है, पुनः निर्वाह की ज़रूरत?” * क्योंकि ‘निर्वाह’ का अभिप्राय ‘रहन-सहन’ या ‘गुज़र-बसर’ है, जो दोहे में ‘पटु.....का करै’ से कोई सीधा लगाव नहीं रखता। मैं चतुर्वेदी जी के अर्थ को सहज ही मान लेता यदि ‘सपर’ की वैसी प्रयोग-विधि में मुझे संदेह न होता। ‘निर्वाह’ के लिए संज्ञा की रीति पर उसका प्रयोग संदिग्ध है। ‘हिन्दी-शब्द-सागर’ में भी ‘सपरना’ मिला, ‘सपर’ नहीं। ‘सपर’ को उस प्रकार बोलना तो अप्रचलित एवं असुन्दर ही है। ‘सपर जाना’ कहते हैं। ‘सपर होना’ नहीं। चतुर्वेदी जी ने गत जून के ‘विशाल भारत’ में ‘सपर’ के निमित्त मथुरा-निवासी नवनीत जी की राय दी है। निस्सन्देह ‘निर्वाह’ के

* माधुरी, वर्ष १०, खण्ड २, संख्या २, पृष्ठ २६४।

अर्थ में भी उसका प्रयोग होता है, पर ऊपर लिखे अनुसार ही।

तो फिर यहाँ 'सपर' के मानी क्या होंगे? हमें लाचार होकर 'परहार' ही मानना पड़ेगा। अच्छा होता यदि विहारी जी काव्योपम ध्वनि का खयाल न कर 'सपर' के स्थान में 'सदा' का ही प्रयोग करते। पर तब यह विवाद का लुफ्फ कहां रहता? खैर, 'सपर'—शब्द भी बुरा नहीं; यद्यपि 'परेई' के साथ वह कुछ अनावश्यक-सा जान पड़ता है। पर यह भी आवश्यक नहीं कि आप उसका मतलब बिलकुल ठोस रीति पर ही समझें। ऐसा क्यों न समझ लें कि हर जगह साथ रह सकनेवाली, सुन्दर, सुसज्जित और 'चाक-चौबन्द' परेई परेवा की संगिनी है। यह ठीक है कि केवल परेई रखने से उसका 'सपर' होना समझ लिया जाता, पर यदि कवि ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए अपने आशय को तनिक विस्तीर्ण बना दिया और साथ ही कथन में काव्य-सौन्दर्य उत्पन्न कर दिया तो बेजा ही क्या हुआ? परेई और परेवा का अलग-अलग होना ही पुनरुक्ति-दोष का परिहार है। पहले के लिए 'पटु भापै' और दूसरे के लिए 'सपर'—इसमें पुनरुक्ति क्या?

अतः मैं महाकवि रत्नाकर तथा अन्य रीति पर पंडित मातादीन शुक्ल के इस विचार से सहमत हूँ कि उपर्युक्त दोहे में 'सपर'—शब्द 'सपत्न' के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

छन्दोदोष

[श्रीयुत शिवरत्न शुक्ल 'सिरस']

फरवरी सन् १९३३ की सरस्वती में श्रीनरेन्द्रजी ने जनवरी की सरस्वती में प्रकाशित मेरे 'हिन्दी-कविता और छन्दोदोष' नाम के लेख का विरोध किया है।

पृष्ठ २६७ के आदि में आपने लिखा है, एक चरण, जो इस सुन्दर गीत का 'अवसान' है, उनके

स्वर्गीय रत्नाकर जी ने अपने 'विहारी-रत्नाकर' में इसी से मिलता-जुलता अर्थ किया है। ले०।

ध्यान से उतर गया है, यदि वह चरण छोड़ न दिया गया होता तो सहज ही ज्ञात हो जाता कि उपर्युक्त गीत में कुछ भी दोष नहीं है। वह चरण यह है,—

जहाँ सपने हों पहरेदार।

अनोखा एक नया संसार ॥”

यह तो एक चरण नहीं, बरन दो चरण हैं। फिर एक ही चरण क्यों लिखा गया? खैर, इसे तो मैंने जान-बूझकर छोड़ दिया था कि ये दोनों चरण तो 'पद्धरि' छन्द के अंश हैं, जिसका वर्णन मेरे लेख में किया जा चुका है। इनके मिला देने से 'सरसी' छन्द तो चला नहीं गया! हाँ, एक बात ज़रूर हो गई कि 'पद्धरि' छन्द के दो चरण ऊपर और दो चरण नीचे तथा बीच में 'सरसी' छन्द की पिट्टी भर देने से पूरी 'कचौड़ी' बन गई। गुदड़ी-छन्द का दोष तो पिंगल की दृष्टि से ज्यों का त्यों रहा; क्योंकि 'पद्धरि' छन्द के द्वितीय और तृतीय चरणों के बीच में 'सरसी' छन्द के भी दो चरण ठूस दिये गये हैं। ऐसा करना पिंगल के किस विधान के अनुकूल है?

आगे लिखा गया है—“यहाँ 'पद्धरि' छन्द के अंश हैं 'अस्थायी' और 'सरसी' छन्द के अंश 'अन्तरा' हैं। यदि दो ऐसी वस्तुएँ मिला दी जायँ, जिनमें आन्तरिक एकता हो तो वह दोष-युक्त कैसे होगा? उपर्युक्त गीत की एकता लय, गति और ताल है। इस आन्तरिक एकता ही के कारण 'पद्धरि' छन्द और 'सरसी' छन्द इन दो भिन्न-भिन्न छन्दों में भी सामञ्जस्य हो सका है।” “यह 'पद्धरि' छन्द के अंश हैं, 'अस्थायी' और 'पद्धरि' छन्द के अंश अन्तरा हैं” लेख के इस टुकड़े को पढ़कर पहले यही मालूम होता है कि 'अस्थायी' भी “सरसी” की भाँति कोई छन्द होगा। छन्दों की ओर दृष्टि देने से यदि इस नाम का छन्द न मिले तो 'अस्थायी' अवश्य ही कोई संगीत का सांकेतिक शब्द होगा, ऐसा अनुमान करना पड़ता है, क्योंकि उसके साथ 'अन्तरा' भी है। यदि लिखने का प्रयोजन यह था कि 'पद्धरि' छन्दांश 'अस्थायी' हैं तो अंश के आगेवाले “हैं” को “अस्थायी” के पीछे

लिखकर 'कॉमा' (,) देना चाहिए था, जैसा 'अन्तरा' के साथ किया गया है। अस्तु, यह लेखांश लेखक के भाव को व्यक्त नहीं कर सका। आपका कथन है कि यदि दो वस्तुएँ जिनमें एकता है, मिला दी जायँ, तो उसमें दोष कैसे आ सकता है? पर मेरा पूछना है कि इन दो छन्दों में एकता कैसी? एक तो चार चार मात्राओं पर विश्राम देकर केवल १६ मात्राओं का छन्द है और दूसरा १६ और ११ मात्राओं पर विश्राम देकर २७ मात्राओं का छन्द है। दोनों की ध्वनि में भी भेद है; फिर एकता कैसी? इस कचौड़ी के मिश्रण में तो दोनों ओर के पपरे बीच की पिट्टी को बिना साथ लिये ही अलग से देख पड़ते हैं। आपने लय, गति और ताल का भी नाम लिया है। आपको भूल न जाना चाहिए था कि आप प्रत्यालोचना 'छन्दोभंग' की कर रहे हैं, 'संगीत' की नहीं। फिर यहाँ पर इनका लिखना तो प्रयोजनातिरेक मालूम होता है। यदि श्री 'नरेन्द्र जी' यह कहें कि यह तो स्पष्ट गीत है तो निवेदन है कि यदि आपका कथन थोड़े समय के लिए मान भी लिया जाय तो विनीत विनय के साथ यह कहना है कि 'आप 'गीत' को काव्याङ्गन में क्यों लाते हैं? आप उसे नर्तकों, वाद्यकों तथा गायकों के बीच में ले जाइए। गीत उन्हीं की वस्तु है।

आप लिखते हैं कि, "छन्दों में एक 'लय' होती है।" मालूम होता है कि पिंगलाचार्य को यह ज्ञात ही न था, अन्यथा वह छन्द के साथ लय की भी विशद व्याख्या कर डालते। किन्तु लय शब्द का छन्दों से क्या सम्बन्ध? आप लिखते हैं—"तीनों की एक गति होती है।" तान और श्रव्य-काव्य से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। इस प्रकार संगीत-शास्त्र में तान आदि का वर्णन है; किन्तु उससे और श्रव्य-काव्य से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

श्री 'नरेन्द्र' जी छन्दोदोष के साथ संगीत की चर्चा करते हैं जो नितान्त निरर्थक है।

आप लिखते हैं—"ये छन्द" मुक्त छन्द के नाम से पुकारे जाते हैं।" आपका मतलब है कि 'मुक्त' छन्द

कह देने से लघु, गुरु अथवा मात्रा की गणना ही न होगी। खूब! देखिए—

अक्षर की गिनती यदा, कहुँ कहुँ गुरु लघु नेम।

वर्ण-वृत्त में ताहि कवि, मुक्तक कहें सप्रेम।

—भिखारीदास

'मुक्तक छन्द' केवल गणों के बन्धन से मुक्त रहते हैं। पूर्वाचार्यों ने 'सम-मुक्तक' के सात भेद माने हैं। यदि अनुचित स्वतन्त्रता-वश ध्वनि, यति और गति के नियमों का उल्लंघन कर कोई ऐसा करने का दुस्साहस करे तो उसे ऐसा करने के पूर्व जान लेना चाहिए कि वह लघु, गुरु और मात्राओं की संख्याओं के परे निकलने न पावेगा! फिर 'मुक्तक' अनुचित स्वच्छन्दता के रूप में नहीं देखा जा सकेगा।

श्री नरेन्द्र जी मेरे एक उदाहरण को दे कर लिखते हैं—"स्वच्छन्द-छन्द में स्वच्छन्दता या उच्छृङ्खलता नहीं होती, वरन इसकी विशेषता ही यह है कि इसके भाव और भाषा तथा संगीत का पूर्ण सामञ्जस्य होता है। जैसे भाव का आवेग घटता, बढ़ता तथा थमता है, उसी प्रकार भाषा और स्वर भी वेगवान, मन्द या शिथिल हो जाते हैं। उदाहरण—

चलो

गगन-घाटी पर

हे नयन अधीर

मलयानिल के झोंकों के आघात

उठो

इस छन्द में स्वर का भंग होना तथा गति का रुकना, छन्द के भावों का परिचय सहज में दे देते हैं। असह्य शोक और वेदना तथा असहाय-व्यथित उर का कैसे अच्छी तरह परिचय मिलता है। यदि उपर्युक्त छन्द को निम्न रूप दिया जाय तो अवश्य ही वह शक्तिहीन हो जायगा—

चलो गगन-घाटी पर, हे नयन अधीर

मलयानिल के झोंकों के आघात उठो

नयनों की शोक-विह्वलता तथा अवसाद देखने ही को नहीं मिलते। ऐसा करने से कविता गद्य-सी जान पड़ती है।”

इसे पढ़कर मैं खूब हँसा। यथार्थ बात यह है कि छन्दोदोष करनेवालों की महा अनुचित स्वच्छन्दता का प्रमाण देने के लिए मैंने व्यंग्यरूप में उपर्युक्त शब्दों को लिख दिया था। पर उसे भी गुणग्राहकों ने छन्द करार दे दिया! अब देख लीजिए कि हमारे युवक कितना छन्दो-ज्ञान रखते हैं! उचित रूप से स्वच्छन्द होने की इच्छा वह व्यक्ति कर सकता है जो शिरोमणि हो, पर जो छन्दःशास्त्र का ‘ककहरा’ भी नहीं जानता वह स्वच्छन्दता के नाम पर यदि अनुचित कूद-फाँद करने लगे तो लोग उसे क्या कहेंगे? और देखिए—

“चिर सुभग सुभग

ये

विहग विहग।”

भला यह भी कोई कविता है? जैसे लड़के कहते हैं—

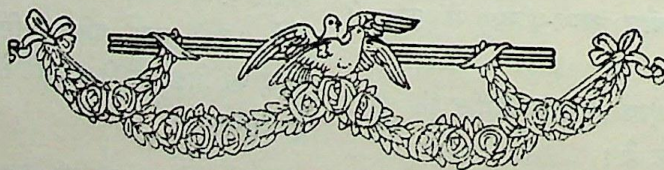
“दौड़ो, दौड़ो तोता आया

देख चोंच में चारा लाया।”

ऐसी तुक-बन्दी लड़कों-द्वारा लिखी जा सकती है, पर कोई भी काव्य का ज्ञाता इसे कविता के अंगों से पूर्ण नहीं कह सकता।

अन्त में श्री नरेन्द्र जी का आग्रह है कि “एक तो ध्यानपूर्वक इनको पढ़े और समझने का प्रयत्न करे, दूसरे यह कि इनके मस्तिष्क का विकास इतना हो चुका हो

कि ये इन छन्दों के सूक्ष्म सौन्दर्य रूप का निरीक्षण कर सकें।” “इनके मस्तिष्क का विकास” से क्या अर्थ है? छन्दों के मस्तिष्क का या पढ़नेवालों के? यदि पढ़ने-वालों से मतलब हो तो उन्हें लिखना चाहिए था कि “जिनके मस्तिष्क का विकास इतना हो चुका हो” और “ये इन छन्दों” के स्थान में “वे इन छन्दों” होना चाहिए था। एक बात तो मैं दिखाने को भूला ही जाता हूँ। वह यह है—“इन छन्दों के सूक्ष्म सौन्दर्य रूप का निरीक्षण कर सकें”। प्रिय नरेन्द्र जी! छन्दों में सौन्दर्यता नहीं होती, बरन रचना में। छन्द तो तुला और बाट के समान हैं, उन पर जो वस्तु रक्खी जाय वे उसकी तौल बता देंगे। आप कहते हैं—गाड़ी की लीक के अभ्यासी होने के कारण शुक्लजी भ्रमित होकर ‘स्वच्छन्द-छन्दों’ से नाहक ही नाराज़ हो गये हैं। उन्होंने व्यर्थ ही दुर्वासा की भाँति शाप दे डाला है कि आधुनिक कविता चिरस्थायी न होगी।” आपसे मेरा नम्र निवेदन है कि गाड़ी की लीक को तो आप भी नहीं छोड़ सके, जब पूर्वाचार्यों के छन्दों के ही आधार पर किसी-न-किसी रूप में रचना की है। चाहे वह ‘ऊबड़-खूबड़’ पूर्ण ही क्यों न हो, पर लक्ष्य लीक का ही रक्खा गया है। किन्तु ऐसा करने में आप वहाँ ‘धूलि उड़ाते’ हैं, क्योंकि छन्दों के नियमों का पालन नहीं करते। आप लोगों के गीत में एक चरण एक छन्द का है तो दूसरा दूसरे छन्द का। लघु-गुरु की ओर तो आप लोग ध्यान ही नहीं देते। यदि आप इसे सँभाल लें तो आपकी रचनाओं में फिर छन्दोभङ्ग दोष न हो।



विदेश में भारतीयों से मेरी भेंट

विपिनचन्द्र पाल

(शेषांश)

श्रीयुत सेंट निहालसिंह

लंदन में स्वर्गीय विपिनचन्द्र पाल का जीवन भाग्य के एक अभागे कैदी की भाँति व्यतीत हुआ। वहाँ वे पिंजड़े में बन्द सिंह के समान अपने उद्देशों की पूर्ति में असफल रहे, पर उनका वह

स्वभाव अन्त तक बना रहा। अपने लेख के इस अंश में श्रीयुत सेंट निहालसिंह ने उनके उस स्वभाव का तथा उनके निराशापूर्ण मनोभावों का बहुत ही सजीव चित्रण किया है।

(१)

इतना अधिक करुणा का भाव उत्पन्न होता रहा है कि मैं पिंजड़े में बन्द शेर का फोटो लेने के लिए अधिक देर तक केमरे को अपने हाथ में स्थिर रखने में कभी नहीं समर्थ हो सका।

(२)

अधिकतर इसी प्रकार की भावनायें मेरे मन में उस समय उठी थीं जब मैं सन् १९१० की जनवरी में पहले-पहल विपिनचन्द्र पाल से उनके उस छोटे से घर में मिला था जिसे उन्होंने लंदन के शेफर्ड्स बुश नाम की जगह में भाड़े पर लिया था। वे पिंजड़े में बन्द शेर जैसे ही दिखाई पड़े थे। निस्सन्देह उन्होंने अपने वैसे रूप का परिचय भी दिया था।

उ्यों ही मैंने उनके चेहरे पर अपनी निगाह डाली, मैंने वहाँ उस उदासी के भाव को अंकित पाया जो

५६१

र-पसन्द दर्शकों के लिए जन्तुशाला में का बंदी शेर मनोरंजन की ही वस्तु है। स्त्री, पुरुष, बच्चे सब उसे या तो छड़ों के पीछे बैठा हुआ या अपने जेल के परिमित स्थान में बेकार क्रोध-सूचक डगों में इधर से उधर आता-जाता हुआ देखते रहते हैं। मैंने ऐसे सयाने लोग भी देखे हैं जो कैद में पड़े हुए जंगल के बादशाह के व्यर्थ क्रोध को उभाड़कर उससे अपना खूब मनोरंजन करना जानते हैं। परन्तु मेरे लिए यह दृश्य सदैव अत्यन्त दुःखप्रद रहा है। उसकी दशा से मेरे मन में



महत्त्वाकांक्षा के विफल होने पर ही उत्पन्न होता है। जिस कमरे में बैठकर वे लिखते-पढ़ते थे तथा अकेले रह जाने पर चिन्तन करते थे और जिसे वे उस समय ड्राइंग-रूम बना लेते थे जब कोई उनसे मिलने आता था, उसी में बैठकर जब हम धीरे-धीरे चाय पीने लगे तब उस उदासी का चिह्न दूर होता हुआ दिखाई दिया। परन्तु प्रकट रूप से उसके तिरोहित होने का कारण अपने एक ऐसे देशबन्धु से मिलने की प्रसन्नता ही थी जिसे वे उस समय तक उसके लेखों के द्वारा जानते थे तथा उन समाचारों के द्वारा जानते थे जो उन्हें जब-तब प्रसिद्ध अंगरेज़ पत्रकार और हम दोनों के मित्र मिस्टर डब्ल्यू० टी० स्टेड से मिलते थे। पर उनकी वह उदासी शीघ्र ही फिर लौट आई और उनके चेहरे पर जम गई, मानो उसे वहाँ बने रहने का स्वत्व प्राप्त था।

(३)

उस दिन के तीसरे पहर विपिनचन्द्र पाल मुझे कैसे दिखाई दिये थे, अपने स्मृति-पटल में अंकित उस रूप का यहाँ मैं पाठकों के लिए चित्रण करता हूँ।

उनका सिर बड़ा और सुडौल था, बाल सघन, तार की तरह सीधे और सिर्फ उस जगह को छोड़कर जहाँ उम्र के कारण सफ़ेद हो गये थे, बाकी कोवे की तरह काले थे। माथा चौड़ा और ऊँचा था, चिन्ता-मूलक विचार के द्वारा उस पर गहरी रेखायें पड़ गई थीं। नाक बड़ी और कुछ चौड़ी थी। जब आँठ खुलते थे तब उनके दाँत दीखने लगते थे। ऊपर के दो सामने के दाँत बहुत बड़े थे और (मुझे याद पड़ता है) एक दूसरे से कुछ अलग तथा बाहर को निकले हुए थे।

उनका चेहरा सुन्दर होने की अपेक्षा अधिक प्रभाव-व्यञ्जक था। उसकी सबसे महत्त्व की विशेषता उसका उत्तेजकपन था। विचार की गम्भीरता से उनकी रूपरेखा कठोर हो गई थी, आँखों ने शिकार पर जा दूटनेवाले शेर की तरह धमकानेवाला ढंग प्राप्त कर लिया था। ऊपर का आँठ ऐसा मुड़ा हुआ था, जैसे कोड़े के चलते समय छल्ला बनता है। दाँत पीसते-सा रहते थे। वे ठीक आग-सी उगलते जान पड़ते थे।

मुझसे हाथ मिलाते समय जो प्रसन्नता उनके मुख पर छा गई थी, जैसा कि मैंने कहा है, क्षणिक ही रही। परन्तु वह मुझे यह बतलाने को काफ़ी देर तक बनी रही कि यदि मैं उनसे उनकी साधारण परिस्थिति में मिला होता तो मैंने उनकी रूपरेखा को उतनी ही सरलता से प्रसन्नता या हर्ष को व्यक्त कर सकते पाया होता, जितनी सरलता से वह इस समय शक्तिहीन क्रोध व्यक्त कर रही थी।

लन्दन में उस जाड़े के तीसरे पहर में जब पहले-पहल मैं उनके घर गया तब मैंने देखा कि वे अपने विदेशी पड़ोस तथा उदासी के भाव से अपने को मुक्त करने के लिए स्थान और अवसर-सम्बन्धी बाधाओं से अत्यधिक व्यग्र हैं। दुर्भाग्य से वे अपनी कल्पनाओं के फेर में बहुत अधिक पड़े रहते थे। उनसे मिलने-जुलनेवाले भी बहुत कम थे और जो थे वे भी बहुत कम आते थे। ऐसों में ब्रिटन लोग तो और भी कम थे। उनकी कल्पना के चक्र बराबर घूमते रहते थे और कभी-कभी पीसने के लिए धान्य के अभाव में एक दूसरे से ही रगड़ते रहते थे और गर्मी तथा संघर्ष उत्पन्न करते थे।

(४)

भेंट की पहली अवस्था में उनकी इस मानसिक दशा के लिए मैंने अपने मन में मौसम को दोषी ठहराया चाहा। मैंने सोचा कि यहाँ के अँधेरे और सील के कारण वे निरुत्साह दीखते हैं।

हम भारतीय सूर्य की सन्तान हैं। वर्ष के अधिकांश भाग तक सूर्य भगवान् अपने प्रज्वलित सुवर्णमय रूप पर सवार होकर धूमधाम के साथ उस गुम्बज के आँगन पर जाते रहते हैं जिसका रंग और दमक मोर की कान्ति की-सी है। भारत के अन्य प्रान्तों में उत्पन्न हुए लड़कें और लड़कियों की अपेक्षा कदाचित् बंगाली लोग का अधिक उसकी सन्तानें हैं।

जब मैंने क्यूब स्टेशन से विपिनचन्द्र पाल के साथ की राह ली थी, जितना ही मैंने अन्धकार-पूर्ण आकाश को ओर देखा, मेरा मन उतना ही निरुत्साहित हुआ था। ऊपर आकाश का रंगदंग खराब था, नीचे का वायुमण्डल

इतना अधिक तर था कि उससे पानी निचोड़ा जा सकता था ।

मकान के भीतर की भी ऐसी अवस्था न थी कि उसी से मन को उत्साह प्राप्त होता । जिस कमरे में विपिनचन्द्र पाल मुझे लिवा ले गये थे वह वैसा ही था जैसे कि उन सस्ते ढंग के मकानों में मिलते हैं जो किराये पर उठाने के लिए छोटे छोटे घरों में परिणत किये जाते हैं ।

मैं एक निगाह में जान गया कि कमरे का सामान सस्ता, भद्दा और मामूली है । जिस छोटी मेज़ के सामने पाल और मैं बैठे चाय पी रहे थे वह कुबड़ी थी । हममें से जब कोई उसे छू देता था, वह हिलने-डुलने लगती थी । कमरे में इतना अंधियारा था कि प्रकाश की ज़रूरत थी, यद्यपि अभी चार से कुछ ही अधिक हुआ होगा । साफ़ जान पड़ता था कि बिजली के खर्च का पूरा ध्यान रखा जाता है । जो बल्ब लगा था वह कम शक्तिवाला था और काफी प्रकाश नहीं दे रहा था । अंगीठी में जो आग जल रही थी वह कमरे की उदासी को दूर करने के स्थान में उसे बढ़ा रही थी । उस छोटी अंगीठी में ईंटें रखकर परिमित क्षेत्र में कोयलों के जलाने की व्यवस्था की गई थी ।

मैं अपने मन में यह बात सोचने से न रुक सका कि वह कमरा विचित्र रूप से आनन्द-रहित है । उसने मुझे विशेष रूप से खिन्नमन कर दिया, क्योंकि मैंने कुछ ही हफ्ते पहले अमरीका के संयुक्तराज्य को छोड़ा था, जहाँ के घर साधारण रूप से बड़ी बड़ी भट्टियों या स्टीम से इतनी अच्छी तरह गर्म किये रहते थे कि जाड़े के मध्य में भी जब बाहर घोर सर्दी होती थी, खिड़कियों को खुली रखना सम्भव होता था ।

जब हम लोगों की बात-चीत गर्म हो उठी और मेरा ध्यान हलकी आग, धुँधले प्रकाश और कमरे के भद्दे साज-सामान से हट गया तब मैं फिर प्रसन्न हो गया । दुर्भाग्य से बात-चीत ने प्रायः प्रारम्भ से ही उदासी का ही रूप पकड़ लिया था ।

पाल के इस प्रश्न के उत्तर में कि मुझे उनके मकान का मार्ग पाने में कोई कठिनाई तो नहीं हुई है, मैंने

कहा—“कठिनाई तो होती, परन्तु एक पुलिसमैन से जो अपना चक्कर लगा रहा था, भेंट हो गई और वह दया करके मुझे ठीक आपके दरवाज़े तक पहुँचा गया ।”

ज्यों ही मैंने देखा कि मेरे इस उत्तर का पाल पर क्या प्रभाव पड़ा, त्यों ही अपने मन में कहा कि यदि मैं इस सहायता की बात न कहता तो अच्छा था । उन्होंने कठोरता से कहा—“वह उन्हीं दुष्ट जासूसों में से होगा जो मेरी निगरानी करने को नियुक्त हैं ।”

उनका उक्त कथन मुझे विचित्र प्रतीत हुआ । मैंने उसे साधारण कर देना चाहा, क्योंकि मैं ताज़ा संयुक्तराज्य से आया था, जहाँ वहाँ के निवासियों और विदेशियों दोनों को समानरूप से पर्याप्त मात्रा में स्वाधीनता प्राप्त थी । यह मेरी ओर से बुद्धिमानी की बात हुई होती यदि मैं उनके कथन की ओर कुछ भी ध्यान न देता । परन्तु यह बात २३ वर्ष पहले की है और यद्यपि मैं संसार को बहुत कुछ देख-भाल चुका था, तो भी मैं उस समय जवानी में ही था । अतएव मैं उनको छेड़ने से विरत न रह सका । मैंने कहा—“मिस्टर पाल, आप यह क्यों आरोप कर रहे हैं कि यहाँ लन्दन में आपके पीछे जासूस लगे हुए हैं ।”

मेरे प्रश्न से वे झुंझला उठे । सम्भवतः उन्होंने यह समझा कि मैंने उनके उस कथन को उनके दिमाग की उपज माना है । निस्सन्देह मैंने अपने मन के एक छिपे हुए कोने में ऐसा ही सोचा था । वे उबल ही तो पड़े ।

अपने ऊपर के ओठ के टेढ़ेपन के साथ उन्होंने मुझसे कहा—“इस तर्ज़ से बातें करना आपको भले प्रकार फबता है । आप अभी अमरीका से लौटे हैं—जहाँ आपने लेखन-स्वातन्त्र्य, भाषण-स्वातन्त्र्य, गमन-स्वातन्त्र्य—और सभी तरह के स्वातन्त्र्य का उपभोग किया है ।

“मेरे लिए इससे बिलकुल भिन्न ही बात रही है । भारत में मेरे डग गिने जाते थे । इंग्लैंड आने में मार्ग भर मेरी निगरानी की गई । जब से मैं इस देश

में हूँ, स्काटलैंड यार्ड के आदमियों की निगाह से ओझल नहीं होने पाया हूँ।”

यह स्काटलैंड यार्ड लंदन की पुलिस का केन्द्र है।

मेरे मन की किसी विपरीत भावना ने इस मामले को यहीं से समाप्त न होने दिया।

“क्या आपके पास कोई प्रमाण है?”

उन्होंने निश्चय के साथ चिल्लाकर कहा—“क्या मैंने सादी पोशाक में लोगों को इस स्थान के आस-पास चक्कर लगाते नहीं देखा है? जो कोई इस मकान में आया है या यहाँ से गया है उसका ये लोग पता लेते रहे हैं। मैं स्वयं भी जब कभी इस बड़े नगर में कहीं गया हूँ, कुछ दूरी का अन्तर किये हुए कोई न कोई बराबर मेरे पीछे लगा रहा है। यह मेरे लिए काफी सावधान रहने की बात नहीं थी कि मैं उनकी इस निगरानी को न देख पाऊँ। किसी मोड़ पर घूमते समय जब कभी मैंने अपने पीछे फिर कर देखा है तब मैंने देखा है कि मैं अकेला नहीं हूँ। इन पीछा करनेवालों में से कुछ को मैं इतना अधिक पहचान गया हूँ कि यदि मैं चित्रकार होता तो अपनी स्मरणशक्ति से उनका चित्र खींच देता।”

उनके इस कथन पर मैंने अपना आश्चर्य प्रकट किया। मैंने उनसे कहा—“मैं समझता था कि ब्रिटेन एक ऐसा देश है जहाँ स्वाधीनता की बड़ी कद्र है।” मैंने उन्हें याद दिलाया कि जिस किसी ने अंगरेजी इतिहास पढ़ा है उसको यह बतलाने की ज़रूरत नहीं है कि ब्रिटन लोगों ने अपनी स्वाधीन संस्थाओं का विकास लड़ कर और अपना खून बहाकर किया है। यद्यपि उनके कथन पर न तो मैं संदेह कर सकता था और न वैसा किया ही, तथापि मेरे मन में यही विचार उठता था कि इसमें कहीं कुछ भूल है।

मिस्टर पाल का चेहरा तमतमा उठा। उनकी आँखें लाल हो गईं। क्रोध की लड़खड़ाती हुई आवाज़ में उन्होंने कहा—“नहीं इसमें ज़रा भी भूल नहीं है। इसका विश्वास कीजिए।” एक क्षण सोच कर उन्होंने

कहा—“एक बात और मैं आपको बताऊँगा। देश से आनेवाले मेरे पत्र भी खोले जाते हैं।”

मैंने पूछा—“यह आपने कैसे जाना?” मुझे डर है, मेरा स्वर प्रतिवाद-व्यञ्जक था।

“उसके जानने के उपाय हैं।”

यह उत्तर मुझे सन्तुष्ट करने के लिए अत्यन्त संतुष्ट था। अतएव जिससे उनके कथन का समर्थन होता हो ऐसा कोई विशेष उदाहरण देने को मैंने उनसे कहा। उन्होंने एक उदाहरण दिया भी। उन्होंने बताया—“मैंने एक पत्र लिखनेवाले से ऐसा प्रबन्ध किया कि वह प्रत्येक पत्र में उसे बन्द करने के पहले अपने सिर का एक बाल रख दिया करे। परन्तु प्रत्येक पत्र मुझे बिना बाल के ही मिलता है। यदि एक या दो पत्र उसके बिना भी मिले होते तो मैं समझता कि लेखक भेरी सूचना के अनुसार बाल रखना भूल गया होगा। परन्तु प्रत्येक पत्र का ऐसा ही हाल रहा है। अतएव यह परिणाम निकालने को मैं बाध्य हूँ कि जो व्यक्ति मेरे नाम के पत्र खोलने और पढ़ने को नियुक्त हैं वे उस बाल को नहीं देखते और वह खोलते समय गिर जाता है। इस तरह जब वह पत्र फिर लिफाफे में बन्द किया जाता है तब उसमें बाल नहीं होता।”

उनके इस कथन पर मुझे हँसने की इच्छा हुई, परन्तु यह देखकर कि पाल को अपने कथन पर इतना अधिक विश्वास है, मैंने बड़ी कोशिश से वैसा करने से अपने को रोक लिया।

(७)

अधिकारियों के विरुद्ध उनके इन अभियोगों को सुनकर मैंने अपने मन में कहा कि क्या इनमें कुछ सार है या पाल अपनी ज़बर्दस्त कल्पना के शिकार हुए हैं। अधिक विचार करने पर मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि शायद उनके सन्देह करने का वास्तव में कोई कारण हो जैसा कि मैं पहले लेख में लिख चुका हूँ कि वे भारत में एक सनसनीवाले मुकद्दमे में शामिल किये गये थे।

लन्दन में उनके आने के कुछ समय पहले या उसके कुछ ही बाद, ठीक-ठीक याद नहीं रहा, एक ऐसी भयंकर

दुर्घटना घटित हो गई जिसके कारण इंग्लैंड में रहनेवाले सारे भारतीय ब्रिटिश लोगों की निगाहों में सन्देह-भाजन हो गये। मदनलाल धींगरा नाम का एक पंजाबी युवक लन्दन के एक इन्स आफ़ कोर्ट में कानून का अध्ययन कर रहा था। वह साउथ कोन्सिंग्टन के इंपीरियल इन्स्टिट्यूट में होनेवाले एक महोत्सव में जा पहुँचा था। और वहाँ उसने रिवाल्वर निकाल कर जिसे वह सावधानी से अपने वस्त्रों में छिपाये हुए था, इंडिया आफ़िस के सर विलियम कर्ज़न विली नाम के एक उच्च अधिकारी पर दाग दिया था। डाक्टर लालकाका नाम के एक पारसी आमंत्रित व्यक्ति ने, जिन्हें मैं जब वे शंघाई में अपना चिकित्सा-कार्य करते थे और जहाँ कुछ वर्ष पहले मैं पत्रकार का काम करते था, कुछ कुछ जानता था—उस अँगरेज़ अधिकारी को बचाने के लिए बीच में आ कूदे थे और सांघातिक रूप से आहत हुए थे, जैसा कि मुझे इतने वर्षों के बाद याद पड़ रहा है।

यह दिखलाने के लिए कुछ प्रयत्न भी किया गया था कि उक्त हत्या के करने में मदनलाल धींगरा का उद्देश राजनैतिक नहीं, किन्तु व्यक्तिगत ईर्ष्या थी। वास्तव में यह बात थी या कुछ और था, यह मैं नहीं कह सकता। उस मामले का यहाँ के वृत्तान्त से कोई सम्बन्ध भी नहीं है। इस अवसर के लिए यहाँ यह लिखना ही पर्याप्त है कि लन्दन के भारतीय शासन-विभाग से सम्बन्ध रखनेवाले किसी उच्च अँगरेज़ अधिकारी का वध करने से वहाँ के अधिकारी घबरा गये होंगे और लन्दन में तथा प्रदेशों में रहनेवाले भारतीयों पर निगाह रखने के लिए वे इस घटना से बाध्य हुए होंगे। यह भी बिल्कुल सम्भव है कि वन्दे मातरम् के मुकुटमे से उनका सम्बन्ध होने से वे सरकार की दृष्टि में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य समझे गये हों।

परन्तु यह विश्वास करने को मैं नहीं तैयार हूँ कि जो कुछ निगरानी उनकी होती थी वह ऐसी भद्दी थी जैसी वे उसे समझते थे। इसके सिवा यह भी हो सकता है कि उनका इस प्रकार अधिक समय तक पीछा नहीं किया गया जैसा कि वे समझते थे।

पाल इतना अधिक सन्देहशील हो गये थे कि वे अपने कुछ देश-बन्धुओं पर भी ब्रिटेन में जासूसी करने का इल्ज़ाम लगाने से नहीं हिचकते थे। वे तड़तड़ नाम गिना गये। मुझे विश्वास हुआ था कि एक या दो मामलों में कम से कम वे उपयुक्त प्रमाण न दे सकें जिन पर अपने इल्ज़ामों को वे स्थिर करते। परन्तु उनके विचार को कोई निरा असत्य नहीं ठहरा सकता था।

(८)

उन्हें एकाएक इस बात का अनुभव हुआ कि वे यह तक पूछना भूल गये कि संयुक्त-राज्य में मुझ पर कैसी बीती। वे विनम्र और दयालु स्वभाव के आदमी थे। ज्यों ही यह बात उनके ध्यान में आई वे बड़े प्रेम के साथ पूछ-ताछ करने लगे।

वे मुझसे कहने लगे कि प्रसिद्ध ब्रिटिश पत्रकार मिस्टर डब्ल्यू० टी० स्टेड आपकी उन्नति से बड़ी सहानुभूति रखते हैं और जब-तब बताया है कि अमरीका में आप कैसे रह रहे हैं। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि मैं खुद आपबीती उन्हें सुनाऊँ।

कनाडा और संयुक्त-राज्य के अपने प्रवास का हाल मैंने उन्हें संक्षेप में बता दिया।

मेरी सफलता की बात सुनकर मिस्टर पाल ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। परन्तु उन्होंने कहा—“जो मैं जानना चाहता हूँ वह सब आपने नहीं बतलाया है।” उन्होंने मेरी विनम्रता की प्रशंसा की, परन्तु मुझको इस बात की याद दिलाई कि वे भी मेरे ही हमपेशा हैं, अतएव वे यह जानने को उत्सुक हैं कि संयुक्त-राज्य में पत्रकारों के कैसे रंगडङ्ग हैं।

मैंने उत्तर दिया—“यह तो एक विस्तृत विषय है। बाद को मिलने पर अवकाश के समय इस पर बात-चीत कर सकते हैं। परन्तु यदि किसी खास बात के सम्बन्ध में पूछना चाहते हैं तो जहाँ तक मैं जानता होऊँगा, बतलाऊँगा।”

उन्होंने तुरन्त पूछा—“अमरीका के सम्पादक लेखकों को क्या देते हैं ?”

“अपनी अपनी भिन्न रेंटें हैं। साहित्यिक रुचि के लोगों के लिए जो पत्र निकलते हैं वे लेखकों को उतना अधिक पुरस्कार देने में समर्थ नहीं हैं, जितना जनता के लिए निकलनेवाले पत्र देते हैं। लोकप्रिय पत्रिकायें निस्सन्देह मोटी रकमें प्रदान करती हैं।”

इस उत्तर से भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने फिर पूछा—“क्या आप अपने कथन को और स्पष्ट कर सकते हैं?”

मैं कर सकता था और उसे स्पष्ट कर दिया—“कदाचित् ही कोई पत्र प्रतिशब्द एक सेंट से भी कम देता होगा। और दो से पांच सेंट प्रतिशब्द प्रदान करना तो साधारण ही बात है। कुछ लेखक इतने भाग्यशाली हैं कि वे प्रतिशब्द दस सेंट और उससे भी अधिक पा जाते हैं।”

“तो संयुक्त-राज्य में पारिश्रमिक शब्द के हिसाब से दिया जाता है?”

मैंने उत्तर दिया—“जहाँ तक साप्ताहिकों और मासिकों का सम्बन्ध है, यही हाल है। दैनिक स्तम्भ के ही हिसाब से पारिश्रमिक देते हैं। एक स्तम्भ में मोटे हिसाब से एक हजार शब्द होते हैं।”

“और वे लेख कितने बड़े होने चाहिए?”—उन्होंने स्कूली लड़कों जैसी उत्सुकता से पूछा। क्षण भर के लिए उनके चेहरे की उदासी का भाव दूर हो गया था।

मैंने उनसे कहा—“लेखों की लम्बाई में भिन्नता होती है। कुछ सम्पादक चाहते हैं कि मैं अपना सारा कथन पाँच सौ शब्दों के भीतर लिख डालूँ। दूसरे पन्द्रह सौ से दो हजार शब्द तक लिखने देते हैं। मैग्ज़ीन और रिव्यू आदि पत्रिकायें दो हजार से पाँच हजार शब्दों तक के लेख लिखने देती हैं।”

पाल कुछ देर तक चुप रहे। वे सोचने-सा लगे। एक या दो मिनट के बाद उन्होंने कहा—“तब मैग्ज़ीन का लेख सौ, दो सौ या तीन सौ डालर का हो सकता है।”

“हाँ।”

“और इस समय एक डालर कितने का होगा?”

“तीन रुपये का।”

“तब अमरीका में पत्रकारों को खासा मिलता है! देखिए, एक लेख के लिए पाँच सौ रुपये, अथवा एक हजार रुपये तक मिलते हैं!”

“इस हिसाब से पारिश्रमिक देनेवाले भारत के किसी सम्पादक को आप जानते हैं? नहीं। यहाँ ब्रिटेन में भी ऐसे अधिक नहीं हैं। जैसा आप कहते हैं उससे जान पड़ता है कि इंग्लैंड में भी पत्रकारों को उतना नहीं मिलता जितना कि संयुक्त-राज्य में।”

मैंने उत्तर दिया—“मैं यहाँ अभी आया हूँ। जैसा कि मैंने आपसे कहा है, ब्रिटेन की पत्रकारी के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कह सकता। बाद को जब मुझे इंग्लैंड का कुछ अनुभव हो जायगा तब मैं यहाँ के पत्रकारों की अवस्था का संयुक्त-राज्यों की अवस्थाओं से अच्छी तरह तुलना कर सकूँगा।”

(६)

तुरन्त ही बात-चीत ने दुःखद रुख ले लिया। पाल ने ब्रिटिश-सम्पादकों से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया था। परन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने मुझसे जो कहा उससे मालूम हुआ कि वे अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुए। उन्होंने लन्दन के अपने घर से अपना पत्र निकालने का भी प्रयत्न किया था। परन्तु भाग्य उसके भी प्रतिकूल हो गया।

यदि मुझे ठीक याद है तो वह ‘स्वराज्य’ नाम का एक पालिक पत्र था। वह अधिकतर, कदाचित् सबका सब, स्वयं उन्हीं का लिखा रहता था। उस समय उनके लेखों का भारतीयों में आदर था और मुझे मालूम हुआ था कि वे उसकी ग्राहक-संख्या बढ़ाने का प्रबन्ध कर रहे थे। परन्तु (उसके एक अंक में उन्होंने एक लेख छाप दिया था, जिससे अधिकारी अप्रसन्न हो गये। उन्होंने अपने सेक्रेटरी से (उसका नाम मेरी समझ में मिस वीलिस था) उस लेख को पढ़वा कर मुझे सुनवाया। जब वह पढ़ चुकी तब उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या कोई समझदार आदमी इसको राजद्रोही कह सकता है।

उनके लिए यह समझना स्पष्ट ही था कि अधिकारियों ने उनके साथ अन्याय किया है। उन्हें ऐसी आशा नहीं थी, इच्छा तो और भी नहीं थी कि जो कुछ उन्होंने लिखा था उसे पढ़कर कोई व्यक्ति भड़क कर ऐसा कार्य कर बैठे जो राजनैतिक या सदाचार की दृष्टि से अनुचित हो। उसमें उन्होंने केवल यही दिखलाने का प्रयत्न किया था कि लोग प्रचलित पद्धति से क्यों असन्तुष्ट हैं। उन्हें विश्वास था कि कारणों को दूर कर देने से भारत प्रसन्न हो जायगा, वह उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होगा और ब्रिटन लोगों और भारतीयों के बीच मित्रता का भाव बढ़ेगा।

(१०)

कुछ दिनों के बाद इस मामले की मुझे और भीतरी जानकारी प्राप्त हुई। मैं डब्ल्यू० टी० स्टेड के साथ स्मिथ स्कवायर में वेस्टमिनिस्टर एबे के पीछे उनके घर में एक दिन भोजन कर रहा था। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या आप 'चन्द्रपाल' से (जैसा कि वे उन्हें कहते थे), मिले और वे आपको कैसे जान पड़े। मैंने अपने देशबन्धु के सम्बन्ध में अपने मनोभावों को बहुत कुछ इन्हीं शब्दों में जो मैंने इस लेख में लिखे हैं, उन पर प्रकट किया।

स्टेड स्वाधीनता के बड़े प्रेमी थे। भारतीय नेताओं के पक्ष में उन्होंने कई बार मोहरा लिया था। पाल-द्वारा प्रेरित या उनके विचारों से युक्त लेख के कारण उन्हें भारत के चुंगी के अधिकारियों से कुछ कठिनाई भी उठानी पड़ी थी। इन अधिकारियों ने रिव्यू आफ रिव्यूज़ के उस अंक को जिसमें वह लेख छपा था, भारत में नहीं जाने दिया था।

उस प्रसिद्ध अँगरेज़ सम्पादक ने लार्ड मार्ले से जो उस समय इंडिया आफिस के प्रधान पद पर थे और जो एक समय जब वे दोनों पत्रकार थे तब इनके गुरु थे, हस्तक्षेप करने को कहा। परन्तु उन्होंने वैसा करने से इनकार कर दिया था।

मैंने स्टेड से कहा कि मैं चाहता हूँ कि विपिनचन्द्र पाल ब्रिटिश-पत्रों के लिए लेख लिखा करें। इससे

वे भारत की सेवा कर सकेंगे, साथ ही अपना निर्वाह भी। स्टेड ने कहा कि वे कई बार पाल से ऐसा करने को कह चुके हैं और सम्पादकों के लिए उन्हें परिचय-पत्र भी दिये हैं। उन्होंने कान्टेम्पोरेरी रिव्यू (इंग्लैंड की एक अत्यन्त विचार-पूर्ण और प्रभावशाली पत्रिका) में एक लेख लिखा भी है। परन्तु फिर नहीं लिखा। मालूम पड़ता है कि वे यह समझ बैठे हैं कि सारे ब्रिटिश-सम्पादकों ने भारत के विरुद्ध अपना गुट बना लिया है। उनके मन के इस भाव को कोई दूर नहीं कर सकता।

पाल के इस दुराग्रह से स्टेड को दुख का अनुभव हुआ था। उन्होंने मुझसे कहा कि पाल बहुत ही मिलनसार और उच्च कोटि के शिक्षित व्यक्ति हैं। तो भी वे अपने विचार से खिसकनेवाले नहीं। उन्होंने मुझसे कहा—दूसरी बार मिलने पर आप उनसे क्यों न बात-चीत करें? आप उनको राह पर ले आ सकते हैं।

मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी भ्रम नहीं था। मैं जानता था कि मुझे वहाँ सफलता नहीं मिल सकती जहाँ डब्ल्यू० टी० स्टेड असफल हो चुके हैं।

(११)

परन्तु अपनी पहली भेंट के समय मैं अच्छी तरह जान गया था कि पाल को धन की आवश्यकता है। अतएव मैं शीघ्र ही उनसे फिर मिला और जितना मैं कर सका यथासम्भव सरलता के साथ उनसे ब्रिटिश-पत्रों में लेख लिखने के लिए कहा।

तुरन्त ही मैंने अपनी भूल मालूम कर ली। मैंने पके फोड़े को छू दिया था। यद्यपि मेरा उद्देश्य अच्छा था, तथापि मैंने उससे दुख ही पहुँचाया। उन्होंने कहा—“मैंने प्रयत्न किया था, परन्तु जो लोग ब्रिटिश-पत्र-पत्रिकाएँ चलाते हैं उन्होंने मेरे साथ तिरस्कार-पूर्ण व्यवहार किया है।”

यदि उनका स्वभाव अधिक भावप्रवण न होता तो मैं ज़रूर अधिक ज़ोर देता। मैंने उनको इस बात की याद दिलाई होती कि योरप और अमरीका की पत्रकारी लजाशील कुमारी जैसी है और उसके आत्म-समर्पण करने के पहले परिश्रम-पूर्वक उसकी चाटुकारी करनी

पड़ती है। परन्तु मुझे मालूम हो गया था कि इस ढङ्ग की बात-चीत से उनको और अधिक चोट पहुँचेगी।

मालूम पड़ता था कि पाल अपने आपको शिक्षक के रूप में लेते थे। वे अपने मन में समझते थे कि उनके पास भारत के सम्बन्ध में पाश्चात्यों को बहुत अधिक बतलाने का है। वे पाश्चात्यों से इस बात की आशा करते थे कि वे इसके लिए उनके पास आवें। इन लोगों ने ऐसा नहीं किया। इन सब कारणों से मैंने उनसे ब्रिटिश-पत्रों में भारत के सम्बन्ध में लिखने के लिए अधिक आग्रह नहीं किया। परन्तु भारतीय पत्रों में लिखने के लिए मैंने उनको प्रेरित करने का प्रयत्न किया। परन्तु वे समझते थे कि भारतीय पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन ठीक-ठीक नहीं होता है, उनके अधिकांश सञ्चालक शिक्षा-हीन हैं। अतएव उनके पास लेख भेजने से उनको घृणा थी।

(१२)

इस समय मेरी पत्नी और मैं उत्तरी-पश्चिमी लन्दन में रहते थे। एक संध्या को जब हम दोनों अपने पढ़ने के कमरे में बैठे गपशप कर रहे थे, पाल आ पहुँचे। वे अपने काले कोट के ऊपर एक भड़कीली छोटी चादर डाले थे। उन्होंने मेरी पत्नी से कहा—मेरी इच्छा थी कि आपसे मिलूँ और भारतीय भोजन खिलाने के लिए आपको निमन्त्रण दूँ। मैं आपसे अपने एक मित्र से भी परिचित कराना चाहता था। यह कहकर उन्होंने शापुर जी सकलतवाला का परिचय दिया। ये उस समय मजदूरदल की निगाह में भले जँचने के मार्ग का अनुसरण करने का प्रयत्न कर रहे थे। इनका भी व्यक्तित्व रोचक है। उसका वर्णन किसी दूसरे लेख में करूँगा।

मुझे शीघ्र ही मालूम हो गया कि सकलतवाला के मन में पाल के प्रति बड़ा आदर है। उस समय भी वे खुद मञ्च पर के साधारण वक्ता नहीं थे, तो भी पाल की भाषण-शक्ति पर अत्यधिक मुग्ध थे।

पाल सँप गये। उन्होंने कहा—“वह आप आ जाता है।” ‘वह’ से उनका मतलब जनता में किये

जानेवाले अपने व्याख्यानों के विषय से था। उन्होंने कहा—“जब बोलने को खड़ा होता हूँ तब मेरा मस्तिष्क भले ही विलकुल खाली हो। परन्तु ज्यों ही मेरा मुँह खुलता है, धारा के रूप में शब्द मेरे ओंठों से बहने लगते हैं। यह सब उसी (परमात्मा) की देन है।”

हमें उनकी विनम्रता अच्छी लगी।

(१३)

कुछ दिनों के पीछे एक सन्ध्या को मेरी स्त्री और मैं शेफर्ड्स बुश में पाल की मेज़ पर खाना खाने को बैठे। वे मछली की कढ़ी और दाल अपने हाथ से बनाने का कष्ट कर रहे थे। मिस वीलिस (सेक्रेटरी जिसका उल्लेख मैं पहले कर चुका हूँ) और उनका पुत्र नानू (मेरी समझ में उसका असली नाम निरञ्जन था) साथ खा रहे थे। हमने बड़ी रुचि से भोजन किया।

इस अवसर पर विपिनचन्द्र पाल को दूसरी ही उमंग में पाया। उनके साथ जो अन्याय हुआ था उसकी वेदना से वे पीड़ित रहते थे। पर इस समय वे उसे भूल गये थे। उन्होंने बहुत उत्तम बातचीत की। भोजन के समय की उनकी बातें बड़ी मनोरञ्जक थीं। उन्होंने बड़े रुचिर ढंग से मनोरञ्जक घटनाओं का वर्णन किया। वे सब गम्भीर ही नहीं थीं। जिस किसी ने उनको राजनैतिक सभाओं के मंच पर से गरजते सुना हो, यदि वह उस भद्दे ढंग से सज्जित छोटे कमरे में ठीक उस समय आ जाता तो उसकी समझ में ही न आता कि वह अपने आराध्य देव को क्या कहे।

(१४)

पाल ने बच्चे का हृदय पाया था। मुझे याद है कि जब मैंने ‘इंडिया आफिस’ में महान्-मुगल (लार्ड मार्ले) से मिलकर उनसे देर तक बात-चीत की थी उससे एक या दो दिन बाद वे और जी० एस० खापर्ड मेरे घर आये। उन दोनों को यह जानने का बड़ा कुतूहल था कि भारतमंत्री और मेरे बीच क्या बातचीत हुई है। विशेषकर पाल को।

मैंने उनसे कहा कि सार्वजनिक ढंग की बातचीत नहीं हुई, अतएव मैं उसके बारे में कुछ नहीं कह सकता। अन्त में पाल ने स्पष्ट रूप से पूछा—“कम से कम हमें यह तो बताना कि हमारे सम्बन्ध में क्या बातचीत हुई है।”

मैंने उत्तर दिया—एक शब्द भी नहीं कहा गया है। यह उन दोनों की समझ के बाहर की बात थी कि एक भारतीय भारत-मंत्री से एकान्त में बैठा एक घंटे से ऊपर तक बातें करता रहे और उस बात-चीत में उनका नाम एक बार भी न आवे।

(१५)

इस बात से मुझे ज़रा भी आश्चर्य नहीं हुआ जब पाल ने मातृभूमि को लौट जाने का अपना विचार मुझसे व्यक्त किया। वस्तुतः उनका समय कम या ज्यादा जबर्दस्ती के आलस्य में ही बीता था। वे बहुत दुःखी थे।

निस्सन्देह वे अपने मन में जानते थे कि भारत को लौटने में वे संकट में पड़ेंगे। अधिकारी उनसे रुष्ट थे। वे उन्हें कम या ज्यादा कष्ट देने को तुले हुए थे। परन्तु वे जानते थे कि यदि वे स्वदेश में होते तो अपने लोगों की वहाँ सेवा करने में समर्थ होते जिसके करने का उन्होंने प्रयत्न किया था, परन्तु ब्रिटेन से करने नहीं पाये थे। इस बात से उन्होंने जोखिम की परवा नहीं की। भारत लौटने पर उनका वहाँ जो स्वागत होगा उस सम्बन्ध में उन्होंने जो सन्देह किया था वह ग़लत नहीं था। यह बात उसके परिणाम से प्रकट हो गई।

भारत में जहाज़ से उतरते ही वे गिरफ़ार किये गये, उन पर मुकद्दमा चलाया गया और एक महीने के लिए जेल भेज दिये गये (यदि मुझे यह ठीक ठीक याद है)।

परन्तु जो विपिनचन्द्र पाल भारत को लौटे थे वे वही नहीं थे जो वहाँ से दो या तीन वर्ष पहले चले गये थे। उस उत्साह का अधिकांश जो उनके श्रोताओं और

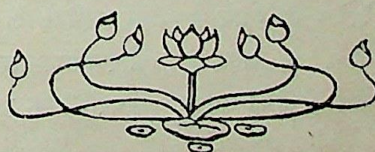
पाठकों के भी हृदयों में उत्साह का सञ्चार करता था वह ठंडा पड़ गया था। उनके राजनैतिक विचारों में परिवर्तन हो गया था। उनका अब यह विश्वास नहीं रहा था कि स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए भारत को ब्रिटेन से सम्बन्ध-विच्छेद करना पड़ेगा। उन्होंने ‘स्वाधीनता’ का झंडा जिसे सन् १९०५ में खड़ा किया था, उतार लिया था और उसके स्थान में ‘डोमिनियन स्टेट्स’ का झंडा ऊँचा किया था जैसा कि इस समय हम उसे कहेंगे। अथवा गोखले के शब्दों में उन्होंने अपना विचार घोषित किया कि भारत ब्रिटिश-साम्राज्य के भीतर रहकर अपनी पूर्ण उन्नति कर सकता है।

वे अपने आप ही देश छोड़कर निराशा की घाटियों में घूमते रहे थे। इस परिवर्तन का कारण उनकी यही अवस्था थी। परन्तु इसका यही एक कारण नहीं था। ब्रिटिशों के सम्पर्क का—यद्यपि परिमित ही था—भी उन पर प्रभाव पड़ा था। विशेषरूप से डब्ल्यू० टी० स्टेड के सम्पर्क का।

(१६)

हमारे प्यारे देश को उनके लौट जाने के बाद मुझ भूमण्डल के भ्रमणकारी की निगाहों से वे ओझल हो गये। इसके बाद केवल एक ही बार और सो भी कुछ मिनटों के लिए उनसे मेरी भेंट हुई थी।

अतएव इन देशभक्त के सम्बन्ध में मेरे मन में यही अंकित है कि ये मानो पिंजड़े में बन्द शेर हों (जैसा कि मैंने इस लेख के आरम्भ में वर्णन किया है), जो शक्तिहीन क्रोध से पिंजड़ों के सीखचों से जो उसे कैद में डाले थे, टकरा रहा हो—जो बच निकलने की असफलता में गम्भीर चिन्ता में मग्न हो—अधीरता के डगों से इधर-उधर आ जा रहा हो, जिसके विचार उस घेरे की ओर सदा दौड़ रहे हों जहाँ उसने जन्म लिया था और बड़ा हुआ था—जो भाग्य का एक अभागा कैदी था।



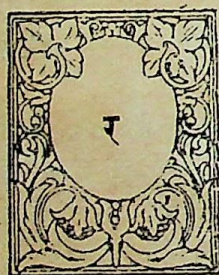


खहरधारी

पंडित मोहनलाल नेहरू

पंडित मोहनलाल नेहरू हिन्दी के पुराने प्रसिद्ध कहानी-लेखक हैं। इस कहानी में आपने आधुनिक भारतीय जीवन का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है।

(१)



रघुवीरप्रसाद और उनका सारा कुटुम्ब सिवा खहर के और कोई कपड़ा नहीं पहनते थे, उनकी धर्म-पत्नी उनसे भी अधिक इस सामले में कट्टर थीं, मगर उनके कमरे में एक युवक की तस्वीर टंगी थी। वह युवक सिर से पैर तक विलायती कपड़े पहने था। एक दिन उनके एक मित्र ने पूछा—यह चित्र किन साहब का है ?

रघुवीर ने कहा—जब मैं साहब बनता था यह उस वक्त का मेरा चित्र है।

“फिर तुम साहब से खहरधारी कैसे हो गये ?”

रघुवीर ने कहा—मेरी कहानी विचित्र है ध्यान से सुनो। मैं कहता हूँ। मेरे भाई-बहन सब थे, मगर मैं बचपन में यह देखता था कि मेरे माता-पिता मुझीको सबसे

ज्यादा प्यार करते हैं और मेरा ही लाड़प्यार भी बहुत होता था। मैं सबसे छोटा था, शायद इस वजह से ऐसा हो या इस वजह से हो कि मेरे पैदा होते ही मेरे पिता की तरक्की हुई थी और मैं भाग्यवान् समझा जाता था। सुनता हूँ कि शुरू शुरू में मेरे पिता किसी सरकारी दफ्तर में एक छोटे क्लर्क थे; अपने काम में बड़े होशियार समझे जाते थे। अफसर लोग उनकी समय समय पर तरक्की करते रहे थे, मगर मेरे जन्म के कुछ ही दिन पहले तक वे क्लर्क ही रहे। आगे तरक्की के वास्ते इम्तिहान हुआ करते थे और वे पास भी कर चुके थे, मगर कोई जगह खाली न हुई थी। क्लर्कों में एक दूसरे पर भले ही फर्क कर लीजिए, एक को दूसरे के ऊपर कर दीजिए, किन्तु अफसरों में ऐसा भेद नहीं हो सकता। और उस ज़माने में अफसर अँगरेज़ ही होते थे। कांग्रेस प्रार्थनापत्र देनेवाली सभा थी और यह ऊधम कर रही थी कि हिन्दुस्तानी अफसर सभी महकमों में होने चाहिए और यद्यपि उसका ऊधम वार्षिक अधिवेशनों और दरखास्तों पर खतम हो जाता था, फिर भी दूरदर्शी गवर्नमेंट यह सोच रही थी कि एक-आध हिन्दुस्तानी को हर महकमे में अफसर करके कांग्रेस का मुँह बंद कर दे और कांग्रेसवालों को अपना दास बना ले। उसे क्या खबर थी कि कांग्रेस किन हाथों में जानेवाली है।

सद्ध
निक
है।

बहुत
ऐसा
पिता
था।
कारी
शायर
पर
पहले
तहान
कोई
पर
र कर
कता।
थे।
म कर
होने
और
नृदेशी
ती को
कर दे
क्या



नन्द-परिवार

[चित्रकार—श्रीयुत रामगोपाल विजयवर्गीय]

जो मैंने ऊपर लिखा वह इतने दिन के अनुभव और पढ़ने-लिखने के बाद लिखा है, मगर बचपन में कुछ और ही समझता था। मैंने कई दफे मा को कहते सुना था कि मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ क्योंकि मेरे जन्म लेते ही मेरे पिता उसी दफ्तर में अफसर बना दिये गये जहाँ वे रुकें थे। मैं खुद भी उनकी तरक्की और इज्जत अपनी ही वजह से समझता था।

अंगरेज़ की जगह पाते ही कुछ मित्रों के कहने-सुनने से और कुछ इस खयाल से कि अफसर को कम से कम अंगरेज़ का भेस तो बनाये ही रहना चाहिए, मेरे पिता ने अपने और अपने लड़कों के वास्ते अंगरेज़ी कपड़े बनवा डाले और हम सब उन्हीं कपड़ों में स्कूल जाने लगे। अफसर के लड़के सिवा अंगरेज़ी स्कूल के कहां भेजे जा सकते थे ? इसलिए ऐसा स्कूल तजवीज़ हुआ जहाँ नकली अंगरेज़ से लेकर असली अंगरेज़ तक के बच्चे पढ़ते थे। उन्हीं की आदतें हमने भी सीखीं और अपने गरीब भाइयों को 'निगर ब्वाय' कहने लगे। संयोग से हम सब भाइयों का रंग भी साफ़ था, उन्हीं में मिल गये, और न भी होता तो क्या, कपड़े तो उन्हीं के थे।

घर में बिलकुल देशी चाल थी। माताजी दस्तूर के मुताबिक पढ़ाई नहीं गई थीं। देवी-देवता के अलावा न मालूम कौन कौन पूजा जाता, तरह तरह की मन्त्रों अलग मानी जातीं। हम सब भाई उनका मज़ाक उड़ाते। शायद हमारा बस चलता तो एकदम उन बातों को जड़-मूल से उखाड़ देते, मगर परमेश्वर गंजे को पंजे ही नहीं देता।

अंगरेज़ी स्कूलों में पढ़ाई खाली सीनियर केम्ब्रिज तक होती थी और वह पास कर लेने पर लड़का देशी बी० ए० तक की बुद्धि का सम्मान जाता था। मैं भी सीनियर तक पहुँच गया। अब क्या था, पाला मार लिया। पास हुआ नहीं कि कहीं बड़े ओहदे पर हाकिम बन जाऊँगा, निगर लोगों पर हुकूमत करूँगा। बस यही स्वप्न देखा करता। मुझे इसका ध्यान तक न था कि मैं चाहे सीनियर पास करूँ या उससे भी कोई बड़ा इम्तिहान, मगर हूँ तो हिन्दुस्तानी ही।

F. 9

पिताजी के मित्रों से बहुधा सुना करता था कि कांग्रेस गर्म दलवाले छीने ले रहे हैं और न मालूम क्या उपद्रव करेंगे, मगर मैं तो कांग्रेस का बचपन से ही दुश्मन था। मैं अपने स्कूल में रोज़ ही सुना करता था कि कांग्रेस हमारी गवर्नमेंट से विद्रोह कर रही है। मुझे पूरा विश्वास था कि जो कुछ भी गवर्नमेंट करे वह ठीक होता है। कांग्रेस का इजलास लखनऊ में हुआ तब स्कूलों-कालेजों के लड़के वालंटियर बनें, मगर मैं या मेरे भाई पास भी न फटके। एक तो हम खुद ही कांग्रेस के दुश्मन, दूसरे पिताजी कहते थे कि ये कांग्रेसवाले लड़कों को भड़का कर पढ़ना-लिखना छुड़ा देंगे और बड़े होने पर वे अपने कर्मों को रोवेंगे और भीख माँगेंगे।

अभी गांधीजी का आन्दोलन शुरू नहीं हुआ था। स्कूलों के छोड़ने का बिगुल नहीं बजा था, न नर्म दलवाले नेताओं ने 'केरियर' के खराब होने की ध्वनि उठाई थी। उसी वक्त मेरे पिता और उनके मित्रों ने कांग्रेस पर यह आक्षेप कर दिया था कि वह लड़कों को धर्मभ्रष्ट कर रही है। ये लोग इस बात को नहीं मानते थे कि बहुतेरे पढ़े-लिखे इस वजह से बैठे बेकार हैं कि उन्हें काम ही नहीं मिलता। अगर कोई उनसे पूछता कि दस हजार से ज्यादा जो हर साल ग्रेजुएट निकलते हैं वे कहाँ खपाये जायें तो ये सारे पेशों के नाम गिना जाते और इस बात पर ज़ोर देते कि सबमें आदमियों की ज़रूरत है।

मैंने जैसा ऊपर कहा मैं अपना केरियर बनाने में कटिबद्ध था और सीनियर केम्ब्रिज पास हो गया। पिताजी ने प्रसन्न होकर मुझे बहुत बढ़िया विलायती कपड़ों के सूट पारितोषिक में दिये और बोले कि "तुम मेरी चिट्ठी लेकर मिस्टर जोन्स से मिलो। औरों को भी दूँगा, मगर यह तुम्हें कोई अच्छा पद देगा। यह मेरा सबसे घनिष्ठ मित्र रहा है"। मैंने कुछ दिन सुस्ताने की आज्ञा माँगी और वह मिल गई। न उन्हें इस बात का ध्यान था, न मुझे ही कि उनकी पेन्शन हो जाने पर हमें कोई अफसर टके को भी न पूछेगा और 'घनिष्ठ मित्रता'

सारी रफूचकर हो जायगी। मैंने साल भर तक आराम किया।

(२)

पिताजी को नौ सौ रुपये का वेतन मिलता था, और मैं यह समझता था कि बड़े अमीर आदमी हैं। मुझे इसकी खबर न थी कि हर लड़की के व्याह में वे उस समय तक की बचत ही नहीं खतम कर देते थे, बरन ऊपर से कुछ कर्ज़ भी कर लेते थे। अफसरों की लड़कियाँ सस्ते में कैसे व्याही जातीं? अब मैं खुद बाल-बच्चेदार हूँ, समझता हूँ और खूब समझता हूँ, किन्तु उस समय बिल्कुल नहीं जानता था।

मुझे तो बस यह काम था कि बूट-सूट पहना, हैट लगाई, कालेज चला गया, लौट कर खाया-पिया, शाम को हाथ-मुँह धोया, रेशमी विलायती नेकटाई और बढ़िया कश्मीरे के सूट पर चटाई की हैट लगाकर छड़ी हाथ में घुमाता हुआ सिविल लाइन की तरफ टहल ने निकल गया। अगर देशी कपड़ों में कोई अपना जान-पहचानी वहाँ दिखाई दिया तो अगर सम्भव हुआ तो आँख बचाकर दूसरी तरफ चल दिया और न सम्भव हुआ तो घर को वापस लौट आया। कोशिश यह रहती थी कि कोई अँगरेज़ मुझे 'निगर' के साथ न देख ले। अगर किसी ने देख लिया तो सैकड़ों खयाल दिल में उठते कि पूछने पर क्या जवाब दूँगा।

एक दिन हमारा सारा परिवार रेल पर कहीं जा रहा था। स्टेशन पर एक जान-पहचानी अठ्ठनी अँगरेज़ लड़का मिला। वह भी कालेज छोड़ चुका था और मैं भी। उसे रेल में नौकरी मिल गई थी और मैं बेकार था। इधर-उधर की बात कर ही रहा था कि मेरी मा ने कहा, चलो बैठ जाओ। बस मेरे ऊपर मानो सैकड़ों घड़े पानी पड़ गया। मैंने कहा आता हूँ और फिर उससे बातें करने लगा। उनके जाने पर उसने मुझसे पूछा, यह कौन है। मैंने तुरन्त ही कह दिया, मेरे छोटे भाई की आया है।

मैं जवान हो गया था और कुछ इस बात का शक मुझे हो चला था कि पिताजी के पास कुछ ज़्यादा जमा

जथा नहीं है। हमारी आदतें बिगड़ी हुई थीं खर्च ज़्यादा था। सीनियर के बाद स्कूल से मैं निकल चुका था। अब यह सोचा कि नौकरी कर लें तो अच्छा है। यह कभी ध्यान में भी न आया था कि नौकरी मिलना मुश्किल काम है। पिताजी का दोस्त जोन्स अभी मौजूद था। जितने लड़के हमारे कालेज से निकले थे, सभी को कोई न कोई काम मिल गया था। मुझे क्यों न मिलेगा, मैं भी तो उन्हीं की तरह हूँ, रहन-सहन भी वैसी ही है, रंग-रूप बहुतेरों से साफ़। पिताजी ने इसी बीच में पेंशन ले ली, मगर मुझसे फिर कहा कि शिमले जाकर अफसरों से मिलो। उन्होंने दो-तीन खत अपने साथी अफसरों के नाम मुझे दिये। मैंने दो-चार सूट अच्छे से अच्छे विलायती चमड़े के संदूक में रक्खे और सेकंड क्लास का टिकट लेकर रेल पर चल खड़ा हुआ।

मैं सोलहों आना साहब बना था। रेल में भीड़ काफी थी और मेरी जान को आफ़त यह थी कि एक अँगरेज़ भी उसमें था। मेरे वास्ते यह ज़रूरी बात थी कि कोई ऐसी हरकत न कर बैठूँ कि मुझे उस समय कोई हिन्दुस्तानी समझ ले। बोल-चाल, रंग-रूप, चाल-ढाल सभी अँगरेज़ों का सा था। खाने का समय था, भूख के मारे बुरा हाल हो रहा था, रिफ़्रेशमेंट रूम में जाना ज़रूरी था, क्योंकि साहब लोग वहीं खाते थे। घर में दाल-रोटी खाने को मिलती थी। उस दिन तक कभी किसी होटल की शक्ल तक न देखी थी। लुरी-कांटे से कैसे खाते हैं, इसका ज़रा भी ज्ञान न था। मगर अब तो आन-फँसे का सौदा था। एक स्टेशन पर रेल रुकी। खानसामा ने आकर पूछा—हज़ूर, छोटा हाज़री होगा। उस अँगरेज़ ने कहा—हाँ। मैंने भी उसी लहज़े में हाँ कह दिया। एक घंटे के बाद दूसरे स्टेशन पर खाना था, आधे घंटे रेल रुकी थी, मुँह-हाथ धोकर हम लोग तैयार थे। तुरन्त ही उतर कर खाने गये। खाने के कमरे में सिर्फ़ चार आदमी थे। मैं और मेरा साथी, और दो मेमें भी कहीं से आगई थीं। मैंने सोच रक्खा था कि इन्हीं की नक़ल करूँगा। पहली प्लेट आई, हमने खाया; दूसरी को दोनों मेमों ने इनकार कर दिया;

तीसरा नम्बर मेरा था, मैंने भी इनकार कर दिया; तीसरी उन्होंने ली, मैंने भी ली; चौथी फिर उसी वजह से इनकार करनी पड़ी; पांचवीं में शोरवा और चावल था, मगर उसके आते ही रेल की घंटी हो गई। यों ही उठ जाना पड़ा, भूखा ही रह गया। माता ने मिठाई-पूरी साथ कर दी थी, मगर खाता कैसे। कोई देख लेता तो ?

शाम के खाने में भी वही आफत पड़ी। एक चीज़ खाने को ऐसी आई जो कभी देखी न थी। सबने ली, मैं ने भी ली। मुझे क्या मालूम था कि चूस कर फेंक दी जाती है। मैं चबा कर निगल गया, बड़ी मुश्किल से वह निगली गई, गले में चुभी, आँख में आँसू आ गये। शायद आस-पास के खानेवालों ने देखा भी, क्योंकि मुझे सबके मुँह पर मुसकराहट मालूम हुई। मैं शर्म से पसीने पसीने हो गया यद्यपि गर्मी ज्यादा न थी और पंखे चल रहे थे। अगर कहीं ये लोग समझ गये कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ तो बड़ी बे इज़्ज़ती हुई, अब कैसे इन्हें मुँह दिखाऊँगा। किसी तरह रात कटी, सुबह सफ़र समाप्त हुआ, सब लोग अपनी अपनी राह गये। मेरी भी जान में जान आई। मैं फिर सिर ऊँचा करने के योग्य हो गया।

(३)

नौकरी करने गया था। वहाँ नाम तो बताना ही था, बाप-दादों की वंशावली खोलनी थी। खाली दिखावे से कैसे काम चलता ? कार्ड पर पूरा नाम नहीं लिखा था, आर० पी० खरे नाम छपवाया था। बड़े साहब ने पूरा नाम पूँछा। बताते हुए शर्म तो बहुत आई, किन्तु बताना तो था ही, नीची आँख करके रघुवीरप्रसाद बताया तो मगर गले में मानो फँस रहा था। उन्होंने पिताजी के कुशल-मंगल का समाचार पूछा, पेंशन लेकर वे क्या करते हैं। मेरे भाई-बहनों का हाल दरियाफ़्त किया। मैं समझा कि बस नौकरी मिल गई, यात्रा सफल होगई। इतना बड़ा अफ़सर मुझसे इतनी बातें करे ! अगर उसे पिताजी का और मेरा हित मंजूर न होता तो इतना समय वह मुझे क्यों देता ?

पिताजी के नाम चिट्ठी लेकर मैं शिमले से वापस चला। फिर वही सफ़र सामने था। चाह यह थी

कि कोई अँगरेज़ रेल में न आवे। हिन्दुस्तानी पर तो मैं धौंस जमा लूँगा। पूरी-मिठाई फिर भी साथ थी। रेल में कोई न था, मानो राज हाथ आ गया। चाय के वक्त खानसामा चाय लाया वह पी। अफ़सोस यह कि कोई देखनेवाला नहीं था। इस वक्त अगर कोई अँगरेज़ होता तो कैसा अच्छा था। खाने के वक्त तक और भी मुसाफ़िर रेल में आ बैठे और मेरी शामत यह थी कि वे सब ही अँगरेज़ थे—कुछ फ़ौजी, कुछ सिविल। उनमें से कई खाना खाने तक न गये। अब मैं क्या करूँ ? आते समय रिफ़्रेशमेंट रूम में उल्लू बन चुका था। वहाँ तो अब जाता नहीं, पूरी कैसे खाऊँ। एक तरकीब सूझ पड़ी। कुछ पूरी-मिठाई कागज़ में लपेट जेब में ढूस लीं और रेल के रुकते ही गाड़ी से उतर कर प्लेटफ़ार्म के एक छोर पर जा खड़ा हुआ और जल्दी जल्दी कौर निगलने लगा। मगर दो ही चार टुकड़े खाये होंगे कि रेल ने सीटी दे दी। मुँह पोंछते हुए भागा और गाड़ी में आ बैठा। अब करूँ क्या ? सोचते सोचते दूसरी तरकीब सूझी। ज़रूरत तो ऐसी चीज़ है कि आदमी को सब कुछ सुझा देती है। सेकेंड क्लास में लैवेटरी होती है, बस इसी को डाइनिंग रूम बना लूँ। मैं उसमें घुस गया, दरवाज़ा बंद कर लिया और खड़े खड़े इतमीनान से खूब खाया। पेट भर जाने पर बाहर आया और रेल के रुकने पर लेमोनेड-बरफ़ मँगाकर पिया। पानी कैसे पीता ? कुछ साथी अँगरेज़ मुसाफ़िरों ने डबल रोटी और कुटा गोश्त जो वे डिब्बे में लाये थे, खाया। मुझसे एक ने पूँछा, तुम कुछ न खाओगे ? मैंने कहा, नहीं आज कुछ भूख नहीं है। इस मर्तबे सफ़र इज़्ज़त से हुआ, कहीं पकड़ न हुई।

(४)

घर पहुँचते ही सबने पूछा, क्या हुआ। मैंने कहा साहब बड़ा ही अच्छा आदमी है। बातें हँस हँसकर करता है। आधा घंटा मुझे बिठाये रहा, वादा किया है कि जल्दी ही कोई ऊँचा पद देगा। पिताजी ने पत्र पढ़ा। यही लिखा था कि मैं कोशिश करूँगा। हम लोग सब इतमीनान से बैठ गये कि कुछ न कुछ जल्दी ही होगा

और मैं नौकरी पर जाने के सामान अभी से जमा करने लगा कि हुकम आने पर देर न हो। मसल है, कानी के व्याह में सौ खटके। वही नौकरी में भी होते हैं। हफ्तों-महीनों बीत गये मगर कुछ पता नहीं। जोन्स साहब को कई चिट्ठियाँ भेजीं, मगर कुछ जवाब न मिला। पिताजी का पेंशन के बाद से स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। वे स्वयं तो कहीं जा नहीं सकते थे। मुझसे कहा कि तुम फिर जाकर मिलो, वे बड़े लोग हैं, याद न रहा होगा। जो चिट्ठी उन्होंने लिखी उसे पढ़कर अपनी दीनता का ज्ञान मुझे हो गया। जी में आया कि सब अँगरेज़ी ठाठ-बाट को छोड़ गांधीजी के असहयोग में सम्मिलित हो जाऊँ। यह आन्दोलन उसी वक्त उठ रहा था। हज़ारों आदमी सहर्ष जेल चले जा रहे थे। पिताजी मेरी बातों से असंतुष्ट मालूम हुए और यद्यपि मुझे उनकी आर्थिक दशा का पता था, मैं ज्यादा कह भी न सका। उन्हें ही क्या, हम सबको पूरा विश्वास था कि ये ज्यादा दिन जी नहीं सकते और आखिर समय पर मैं उन्हें कष्ट देना नहीं चाहता था।

इस बार दिल्ली जाना था। सफ़र छोटा था और चित्त में अँगरेज़ियत की वह ज़्यादती न थी। देशी ही कपड़े पहन कर सफ़र को चल दिया। रास्ते में न तो खाने-पीने की तकलीफ़ हुई, न पैसा ही अधिक खर्च हुआ। दिल्ली में एक मित्र के साथ ठहरा और दूसरे दिन साहब से मिलने गया। जोन्स तो छुट्टी पर जा

चुके थे, उनकी जगह टामस साहब थे। उन्हीं को चिट्ठी दे दी। इधर-उधर दो-तीन दफ़े उलट कर उसने देखी, फिर पढ़कर नाक सिकोड़ कर बोला—‘वैल मिस्टर खरे, मुझे अफ़सोस है, तुम काफ़ी पढ़े-लिखे नहीं हो।’

मैं अवाक् रह गया और कुछ देर बाद मैंने सीनियर का सार्टीफ़िकेट दिखाया और उसे बताया कि मेरे कई साथी नौकरी पा चुके हैं।

“हां हां मैं जानता हूँ मगर वे अँगरेज़ हैं। उनके वास्ते कोई कैद नहीं, नेटिव के वास्ते बी० ए० की कैद है।”

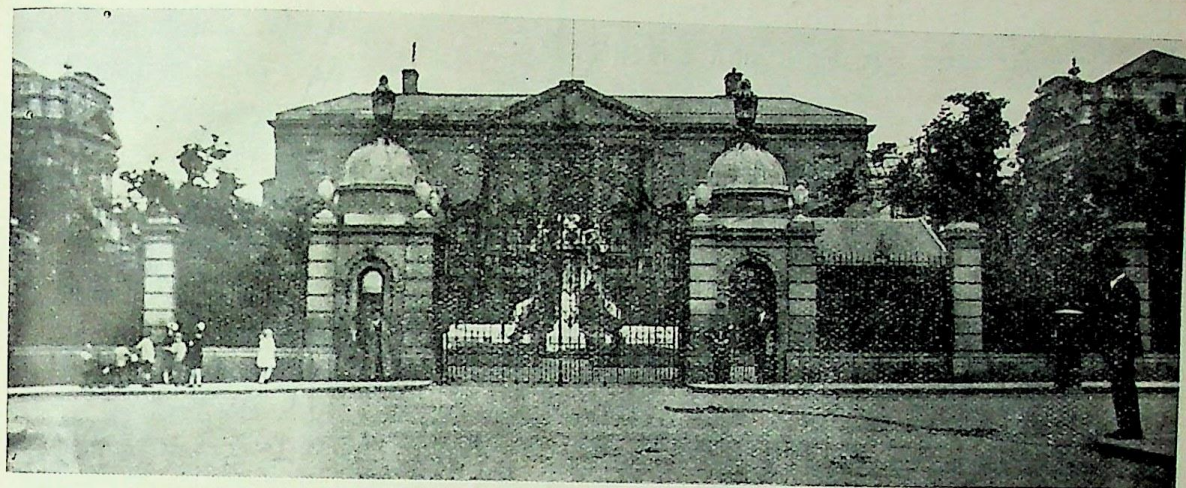
काटो तो मेरे बदन में लहू नहीं, क्रोध के मारे मुँह लाल हो गया और मैं उठ खड़ा हुआ। हाथ मिलाते हुए वह बोला—अपने पिता से मेरा सलाम कह देना, कह देना कि मुझे उन्हींने काम सिखाया था।

मेरा क्रोध दुगुना हो गया। मैं सीधा लखनऊ वापस आया और पिता जी से साफ़ साफ़ कह दिया कि मैं नौकरी नहीं करूँगा और अब नेटिव ही बन कर रहूँगा। इधर का सारा हाल तुम जानते ही हो। जिस मिथ्याभिमान से अब मैं दूर हो गया हूँ उसी के बोध के लिए यह तसवीर लटका रखी है। यह मुझे सदा सावधान किये रहती है।

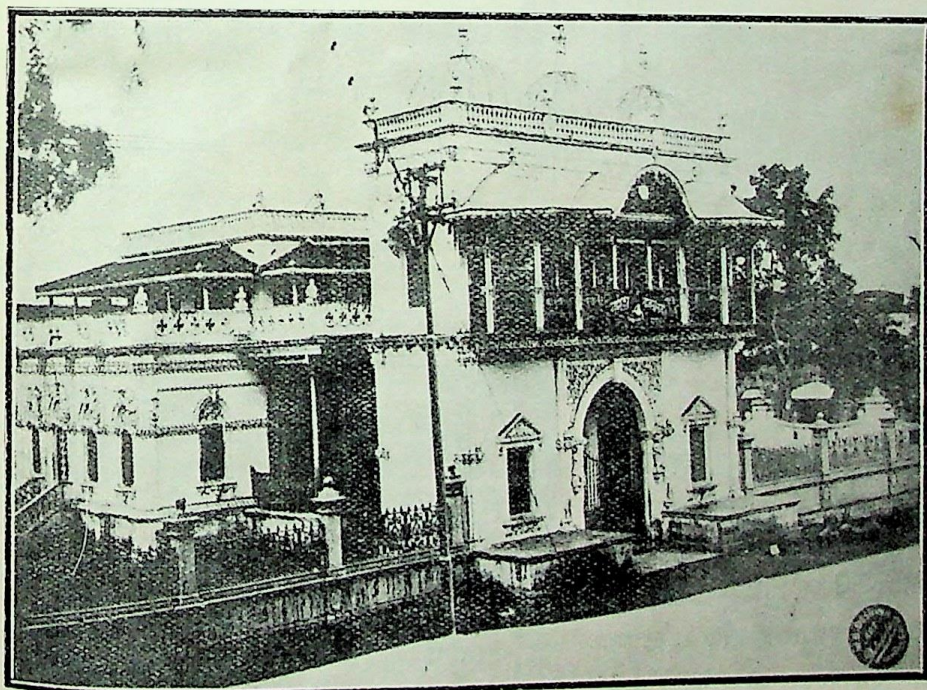
गम्भीर होकर मित्र महोदय ने पूछा—क्या तुम खहर को सस्ता पाते हो? “दाम के विचार से तो यह महँगा मालूम होता है, तो भी सस्ता पड़ता है, कम कपड़ों से काम चल जाता है और वे देर में फटते हैं।”



चौक बख्त



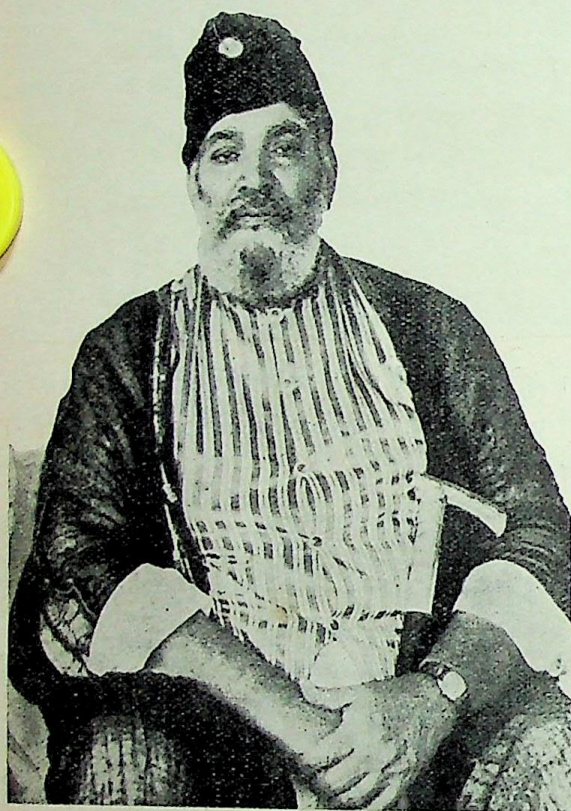
डेल—डेल 'डबलिन' के हाउस आफ़ कामन्स का संक्षिप्त नाम है। 'डिवेलरा' के शक्ति प्राप्त करने के बाद से इसका ज़िक्र समाचार-पत्रों में बहुत आया है। नये चुनाव के बाद से डेल में मिस्टर डिवेलरा का ही प्रभाव दिखाई पड़ रहा है क्योंकि इस चुनाव में बहुमत उन्हीं के पक्ष में था।



श्री लक्ष्मी-
नारायण मंदिर,
वर्धा—वर्धा का यह
प्रसिद्ध मंदिर हरिजनों
के लिए खोल दिया
गया है। यह मंदिर
सेठ जमनालाल
बजाज का है और
वर्धा में सबसे बड़ा
मंदिर है। कदाचित्
सारे भारतवर्ष में
यही मंदिर पहले
पहल अछूतों के लिए
खुला था।

मौलाना शौकतअली—मौलाना शौकतअली

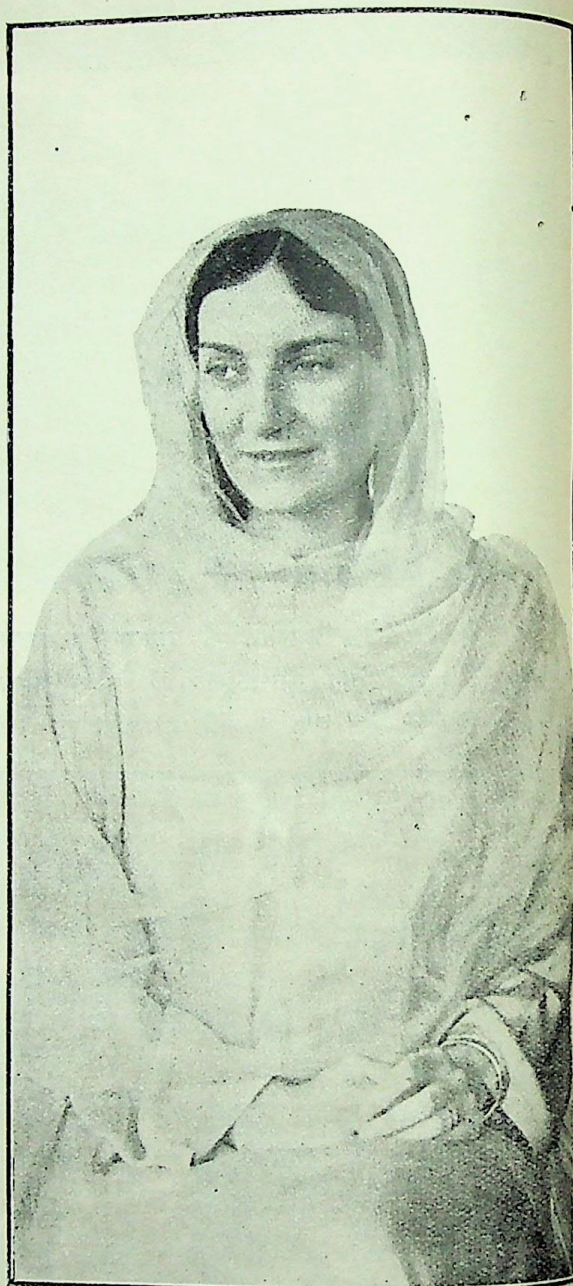
अपनी नव-विवाहिता अँगरेज़ पत्नी के साथ अमरीका की सैर करके स्वदेश लौट आये। अपने व्याख्यानो में आपने संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष महात्मा गांधी के विरुद्ध



[मौलाना शौकतअली]

बहुत-सी अप्रिय बातें कहीं और उनका मज़ाक उड़ाने का प्रयत्न किया परन्तु अमरीकावालों ने उसे पसन्द नहीं किया। इससे आपको उतना संतोष नहीं हुआ जितनी आशा लेकर आप अमरीका गये थे।

बेगम शौकतअली—जन्म से अँगरेज़ होने पर भी बेगम शौकतअली ने अपने विवाह के बाद से परदे में रहना आरम्भ किया है। कदाचित् यह परदा भी



[बेगम शौकतअली (धूँघट हटा लेने पर)]

आप भारतवर्ष में ही करती हैं। मौलाना के अत्यन्त निकट के मित्र और परिवार के लोगों के सिवा और कोई इन्हें देख नहीं सकता।

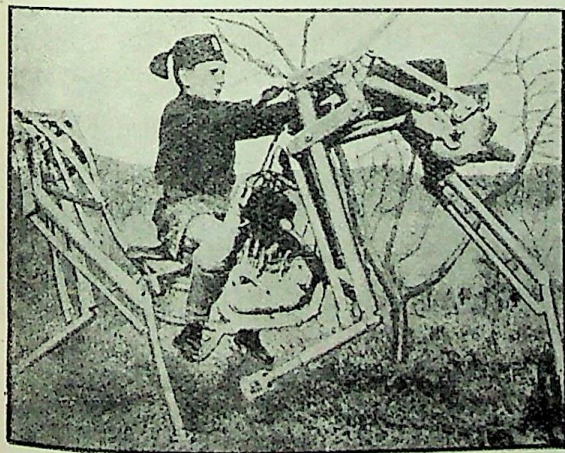
बेगम शौकतअली (घूँघट में) —

अपने पति के साथ इन्होंने भी अमरीका में खूब भ्रमण किया है। इस प्रवास में ये मौलाना की सेक्रेटरी थीं। योर्क शायर में अपने सम्बन्धियों से मिलकर ये भी मौलाना के साथ ही भारत लौटी हैं।

भारतवर्ष में इनके इतना अधिक पर्दे में रहने का कारण कदाचित् यह है कि मौलाना शौकतअली में अपने कट्टर धर्म-भाइयों के विचार-वृत्त से बाहर निकलने का साहस नहीं है और उन्होंने यह आवश्यक समझा है कि एक अँगरेज़ महिला ने जब इस्लाम मत ग्रहण किया है तब वह उसमें प्रचलित वर्तमान बुराइयों को भी ग्रहण करे। आपके इस वृद्धावस्था के विवाह के सम्बन्ध में बम्बई के मुसलमानों में बड़ी चखचख चली थी। बहुत-से लोग इसे धर्म के विरुद्ध बताते थे। कदाचित् बेगम शौकतअली के इस प्रकार पर्दे में बन्द होने का यह भी एक कारण है।

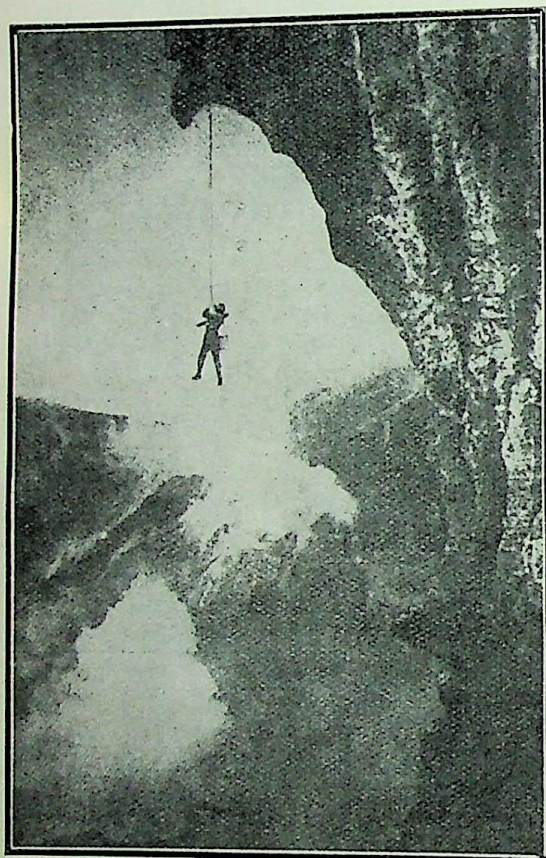


[बेगम शौकतअली]



लोहे का घोड़ा—इटली के एक लोहार ने लोहे के पाइपों का एक घोड़ा बनाया है जो एक गैस के इंजन के सहारे चलता है। यह घोड़ा जीवित घोड़ों की भाँति उछलता, कूदता और सरपट दौड़ता है। इसके लिए सड़क की आवश्यकता नहीं, यह ऊँची-नीची ज़मीन में भी चल सकता है। इटली में इस यन्त्र के सहारे लड़कों को घोड़े की सवारी करना सिखाया जाता है। अभी तक संसार में पहियों की सवारी का ही प्रचार रहा है। यदि इस ओर अधिक प्रयत्न हुआ तो शीघ्र ही बिना पहिए की सवारियाँ भी दिखाई पड़ने लगेंगी।

ज्वालामुखी के पेट में—ज्वालामुखी पहाड़ के भीतर क्या है और वहां का दृश्य कैसा है यह जानने के लिए फ्रांस के एक वैज्ञानिक मिस्टर आर्पद करनर ने एक ऐसी पोशाक का आविष्कार किया है जो आग में नहीं जल सकती। यह पोशाक पहन कर हाल ही में वे स्ट्रोम्बोली नामक दहकते हुए ज्वालामुखी में एक रस्सी के सहारे

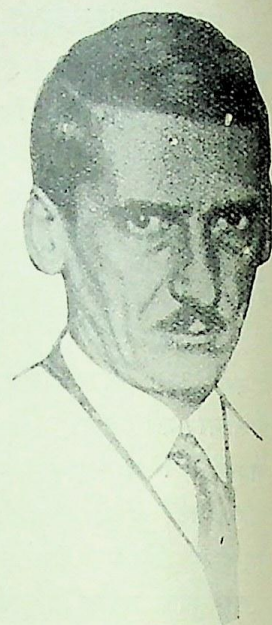


[आर्पद ज्वालामुखी में उतर रहा है]

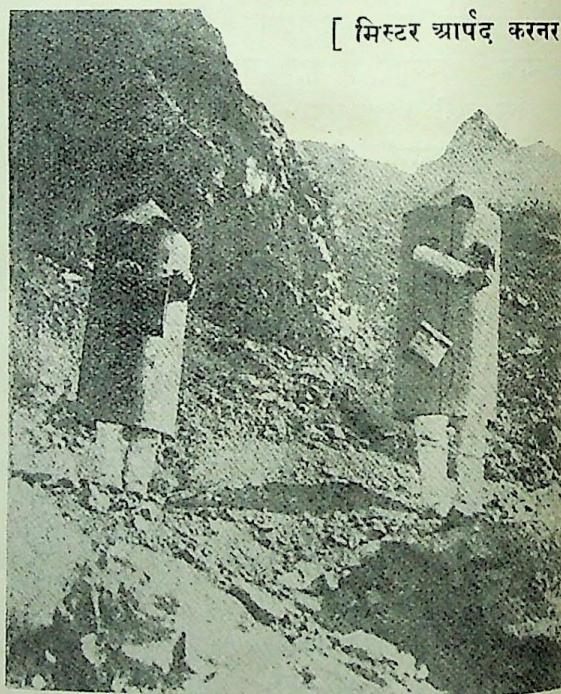
८०० फुट तक नीचे उतरे थे। यह रस्सी भी पोशाक ही की भांति आग में न जल सकनेवाली बनाई गई थी।

आपने अपने ज्वालामुखी पहाड़ के मुख में सफलतापूर्वक उतरने और अन्दर से चित्र लाने का वर्णन 'पुलर साइंस' नामक पत्र में छपाया है। उसमें उन्होंने बताया है कि ज्वालामुखी के अन्दर क्षण क्षण पर लपटों

के तूफान उठते, अंगारों के कगारे बनते और टूटते रहते हैं तथा पिघलते हुए द्रव्यों की नदी उमड़ती रहती है। दूसरी बार आप अपने एक मित्र के साथ भी ज्वालामुखी में उतरे थे। ये लोग आक्सीजन का थैला लेकर उसमें गये थे और भीषण गर्मी के सिवा इन्हें और कोई कष्ट नहीं हुआ। ये लोग अपने साथ कैमरे ले गये थे और ज्वालामुखी की



[मिस्टर आर्पद करनर]



[ज्वालामुखी की तलेटी में]

तलेटी में कुछ दूर ये लोग इधर-उधर घूमे भी थे। विज्ञान के इस युग में जो न हो जाय वही थोड़ा है।

साम्प्रसिद्ध



भारतीय स्त्रियाँ क्या चाहती हैं ?

कुमारी जयदेवी

भारतीय स्त्रियाँ क्या चाहती हैं ? इस

प्रश्न का उत्तर

आपको उन स्त्रियों से कदापि नहीं मिल सकता जो घरों में बन्द हैं। उनकी अपनी कोई इच्छा नहीं है। वे आपके हाथ में यन्त्र के समान हैं। जो आप आज्ञा देंगे, करेंगी। वे जानती हैं कि उन्हें बाल्य-काल में पिता की, युवावस्था में पति की और वृद्धावस्था में पुत्र की अधीनता में रहना चाहिए। वे स्वाधीन नहीं हैं। परिस्थिति-वश जब उन्हें पिता, पति और पुत्र आदि के न रहने पर अपनी जीवन-नौका अपने आप खेनी पड़ती है तब वे मौत का सामना



करती हैं। पर मौत नहीं आती।

भारत की देवियों की आज ऐसी ही दयनीय अवस्था है। सदियों से कष्ट सहते-सहते उनमें कष्ट सहने की इतनी शक्ति आगई है कि उनके सिर पर कोई विपत्तियों का पहाड़ उठाकर रख दे तो भी वे आह न करेंगी। वे समझती हैं कि वे इसी लिए बनी हैं। उन्हें अपने ऊपर भरोसा नहीं। उन्हें सहारा चाहिए, चाहे नाममात्र का ही हो। एक बच्चे के पीछे भी वह उन्हें जहाँ ले जाय, चली जायँगी। अपने आप एक पग भी घर से बाहर रखने का साहस न करेंगी।

[कुमारी सुशीला देवी, जयपुर]

(हाल ही में इनका विवाह अजमेर के प्रतिष्ठित रईस पंडित जी० एस० भार्गव के पुत्र श्रीयुत राम-चन्द्र भार्गव के साथ हुआ है।)

जो लोग भारतीय देवियों की इस असमर्थता के तराज से उनकी मांगों को तौलते हैं और कहते हैं कि अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन स्त्रियों की प्रतिनिधि संस्था नहीं है वे उनके साथ अन्याय करते हैं। लोथियन कमेटी ने यह सिफारिश की थी कि शिचित्त भारतीय



[मिसेज़ कमला राजवाड़े]

(ये ग्रैंट मेडिकल कालिज बम्बई की छात्रा हैं और एम० बी०, बी० एस० की परीक्षा में इन्होंने सबसे अधिक अङ्क प्राप्त किये हैं ।)

स्त्रियों को भी मताधिकार मिलना चाहिए। हाइट पेपर में स्त्रियों को जो मताधिकार दिया गया है वह बहुत कम है। उसके अनुसार स्त्रियों को साम्प्रतिक और अन्य योग्यताओं के अनुसार मताधिकार दिया जायगा और

उनकी शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता पर विचार न किया जायगा, यद्यपि लोथियन कमेटी में इसी बात की सिफारिश की गई है। इसका परिणाम यह होगा कि केवल २ लाख स्त्रियाँ फेडरल असेम्बली के लिए वोट दे सकेंगी। परन्तु यदि लोथियन कमेटी की सिफारिश मानी जाती तो ६ लाख से ऊपर स्त्रियों को यह अधिकार प्राप्त होता। इस सम्बन्ध में हाल में ही अपने एक व्याख्यान में लार्ड लोथियन ने कहा है—“भारतीय स्त्रियों को समुचित मताधिकार न देने से परिस्थिति भीषण हो जायगी। संसार में ऐसा कोई देश नहीं जहाँ स्त्रियों को मताधिकार देने की इतनी अधिक आवश्यकता है जितनी कि भारतवर्ष में।” बेगम शाहनवाज़ राउन्डटेबुल कान्फ्रेंस में स्त्रियों की ओर से प्रतिनिधि होकर गई थीं। हाइट पेपर के इस अंश पर उन्होंने भी बेहद असन्तोष प्रकट किया है। उनका कहना है—“समझ में नहीं आता कि हिज़ मैजेस्टी की सरकार ने स्त्रियों के मताधिकार के सम्बन्ध में लोथियन कमेटी की सिफारिशों को क्यों नहीं स्वीकार किया। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता कोई योग्यता ही नहीं समझी गई। भारतीय स्त्रियों के साथ इससे बढ़कर और क्या अन्याय हो सकता है।”

जिस प्रकार मताधिकार के सम्बन्ध में शिचित्त भारतीय स्त्रियों की मांगों को ठुकराया गया है, उसी प्रकार जीवन के प्रत्येक विभाग में उनकी अवहेलना की जा रही है। इसका एकमात्र उपाय यह है कि स्त्रियाँ अपना सङ्गठन और दृढ़ करें और जहाँ वे बना सकें, लोकमत को अपने-अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न करें।

आवश्यकता इस बात की है कि देश में स्त्री-शिक्षा का प्रचार शीघ्रता के साथ हो और शिचित्त स्त्रियाँ सर्वसाधारण स्त्रियों में मिलकर उनमें जागृति पैदा करें। पुरुषों का यह इल्ज़ाम कि शिचित्त स्त्रियाँ गृह-कार्य से भागती हैं, मिथ्या है। वे गृह-कार्य का संचालन अधिक योग्यता के साथ करती हैं और प्रत्येक कार्य में अधिक साहस, अधिक संयम और अधिक उत्साह का परिचय देती हैं।

वे अपना घर, अपना वर, अपना परिवार सब कुछ चाहती हैं, परन्तु सामाजिक गुलामी उन्हें सहा नहीं है। वे यह भी नहीं चाहती कि रुपये-पैसे, कपड़े-लत्ते या भोजन के लिए वे पति की या किसी की मोहताज रहें। वे बराबरी का बर्ताव चाहती हैं। सामाजिक रस्म-रवाजों की वेदी पर वे अपने जीवन की व्यर्थ में बलि नहीं करना चाहतीं। समुचित शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे अपनी योग्यतानुसार कार्य-क्षेत्र चाहती हैं। विवाह को वे जीवन का लक्ष्य नहीं समझतीं। वह उनके लिए केवल आवश्यकता की वस्तु है। यदि उन्हें अपने अनुकूल कार्य-क्षेत्र चुनने में बाधा दिखाई पड़ेगी तो वे विवाह करना पसन्द न करेंगी। और हमारी सामाजिक स्थिति ऐसी है कि विवाह उनके जीवन को अत्यन्त सङ्कुचित क्षेत्र में कैद कर देना चाहता है, इसलिए वे उसे अनिवार्य नहीं समझतीं। यही कारण है कि नव-शिक्षित भारतीय स्त्रियाँ अविवाहिता ही अधिक देखी जा रही हैं।

जिन लोगों की यह धारणा है कि स्त्री का अविवाहिता रहना कदापि उचित नहीं है, वे आधुनिक स्त्रियों की माँगों को समझ नहीं सकते। जीवन-संग्राम दिन-प्रति-दिन जटिल होता जा रहा है। वे दिन गये जब एक कमाता था और दस खाते थे। अब एक को खिलाने के लिए दस कमानेवाले चाहिए। ऐसी दशा में और कुछ स्वाधीन मनोवृत्ति के कारण भी यदि भारतीय स्त्रियों में जीविकोपार्जन का भाव जागृत हो तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। स्त्री-जीवन की परिभाषा अब बदल रही है। स्त्रियाँ अपने पास-पड़ोस के, अपने कुटुम्ब-परिवार के लोगों की सेवा-सहायता करना चाहती हैं। अपने देश और राष्ट्र की उन्नति में योग देना चाहती हैं। इसके लिए वे अपने व्यक्तित्व के पृथक् विकास की आवश्यकता समझती हैं। भारतीय पुत्रियों की इस बदली हुई मनोवृत्ति पर जो विचार नहीं करेंगे और उन्हें परम्परागत समाज के नियमों में जकड़ने का प्रयत्न करेंगे वे अपना और उनका दोनों का अहित करेंगे।



[श्रीमती किशोरीदेवी चतुर्वेदी]

(ये राय साहब हरिचरण चतुर्वेदी डिप्टी कलेक्टर प्रतापगढ़ की पुत्री हैं। इधर कविता लिखने में इन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त की है और कई एक स्वर्ण-पदक जीते हैं। इनकी कविता का एक नमूना नीचे दिया जाता है—

दीपक के प्रति

तन चारु कियो अरु स्याम हियो,
करि फेरि सुकर्म दिखैहौ कहा।
तम नासनहार कहाय भले,
निज कीरति दीप नसैहौ कहा ॥
तुम सों जु पतङ्गन नेह कियो,
दुख दै उन नेहिन पैहौ कहा।
इमि प्रान लै आपन प्रेमिन के,
अवनीनल पै यश लैहौ कहा ॥

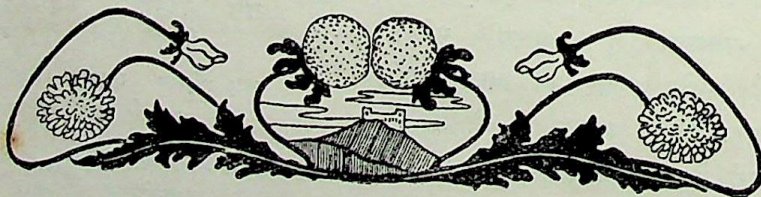
जागृति के ये लक्षण शिक्षित स्त्रियों में ही देखे जा रहे हैं। शेष नारी-समाज जैसे पहले था, वैसे ही अब भी सुप्त अवस्था में है। परन्तु इस नवीन प्रकाश से वे सदैव वञ्चित नहीं रह सकतीं और न वे रक्खी ही जा सकती हैं। यह प्रकृति का नियम है कि जो जागता है वह अपने आस-पास के रहनेवालों को भी जगाता है। इसी नियम के अनुसार धीरे-धीरे सारा स्त्री-समाज जग रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षित स्त्रियों की संख्या भारत में अभी नहीं के बराबर है। पर जो कुछ है उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। उसके साथ सम्पूर्ण नारी-समाज है। उसकी माँगों पर गम्भीरता के साथ विचार करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है।

गत दस वर्षों में शिक्षित स्त्रियों ने अपना अच्छा सङ्गठन कर लिया है और उन्होंने नारी-समाज के सामने अच्छे उदाहरण भी उपस्थित किये हैं। उनमें साम्प्रदायिकता का भाव नहीं है, उनमें अमीर-गरीब का भाव नहीं है। उनमें नर्म-दल और गर्म-दल का प्रश्न नहीं है। उनमें ब्रिटिश भारत और देशी राज्य का प्रश्न नहीं है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, कांग्रेसवादी और अन्य सभी स्त्रियाँ एक पण्डाल के नीचे एकत्र होकर पर्दा, विवाह, तलाक, बालविवाह, वृद्धविवाह, सन्तान-निग्रह स्वाधीन जीविकोपार्जन आदि सभी विषयों पर वाद-विवाद करती हैं और उपयोगी प्रस्ताव पास करती हैं। आज आप भले उनकी हँसी उड़ा लें, पर एक दिन आवेगा जब वे अपने देश को वैसा बना लेंगी जैसा कि वे उसे बनाना चाहती हैं।



[कुमारी सावित्री देवी (आयु १३ वर्ष)]

(गत ४ अप्रैल सन् १९३३ को सेंट्रल हिन्दू स्कूल के व्यायाम मण्डल की ओर से तैर कर गंगा पार करने की प्रतिद्वन्द्विता में ये सर्वप्रथम आईं, और मिसेज़ पञ्चालाल आई० सी० एस० पारितोषिक और पदक प्राप्त किया। ये बाबू नन्दलाल खत्री की पुत्री हैं।)



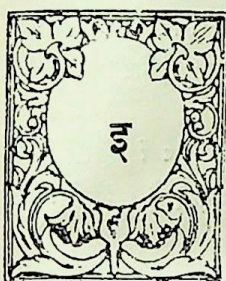
पथ-भ्रान्त पथिक

• [धारावाहिक उपन्यास]



[पूर्वकथा—भास्कर ने मेना से मिलकर उसे राजाबहादुर के ऋण और अपन्यय की बात बताई और कहा कि यदि वह राजाबहादुर की खरीदी हुई अनावश्यक वस्तुओं को चुपचाप उसे वापस कर दिया करे तो राजाबहादुर को कलेश भी न हो और बचत हो जाया करे। मेना ऐसा ही करने लगी। एना, मेना को इस प्रकार भास्कर से मिलते देखकर उसकी खूब हंसी उड़ाती। पुण्डरीकाक्ष जेल में बन्द था और उसकी बुढ़िया बुआ अर्थ-कष्ट से दुखी रहने लगी। अतएव उसने एना और मेना से याचना करने की बात सोची। अन्त में एक दिन सुयोग पाकर उन दोनों से उसने भेंट की और अपनी कष्ट-कथा सुनाने लगी। संक्षेप में पिछले अङ्क की यही कथा है।]

अनुवादक—पं० सुन्दरलाल त्रिपाठी



तनी देर में साँड़ कुछ ढेले खाकर मन्थर गति से चलता हुआ थोड़ा आगे बढ़ गया। सोफर ने मोटर का हार्न बजा कर गाड़ी चलाने का सङ्केत किया। मेना ने उससे कहा—ज़रा ठहरो, अमर। तब वह पुण्डरीक की बुआ से बोली—कहिए, आप क्या चाहती हैं ?

पुण्डरीक की बुआ ने कहा—मैं भिखारिनी नहीं हूँ बेटी। मेरा भतीजा नौकरी करता था। एक दिन किसी कालेज के सामने पुलिस लड़कियों को गिरफ्तार कर रही थी। मेरा भतीजा पुण्डरीकाक्ष सम्भवतः पुलिस के इस काम में बाधा पहुँचा कर पुलिसवालों को मारने को तत्पर हो गया। अतएव उसे छः महीने की सज़ा हो गई है। इस समय मैं बड़े अर्थ-कष्ट में पड़ गई हूँ। वह महीने में जो पैदा करता था उसी से घर का खर्च चलता था। हम लोगों के पास कोई पूँजी इकट्ठी ही नहीं होती थी। अब मैं किससे भीख माँगने जाऊँ ? आप लोग हमारे मकान के सामने ही रहती हैं, सदा दान-धर्म करती रहती हैं, इसलिए मैं सोच रही थी कि यदि आपसे अपनी स्थिति बता दूँ तो मुझे और किसी के सामने हाथ फैलाने की आवश्यकता न पड़ेगी।

एना ने तुरन्त पुण्डरीकाक्ष के मकान की ओर एक बार ताक कर बुढ़िया से पूछा—आप लोग क्या इसी सामने के मकान में रहती हैं ?

बुढ़िया ने उत्तर दिया—हाँ बेटी, मेरे भतीजे के पास यही एक मकान है। उसके और कोई नहीं है, मेरे भी कोई नहीं है। इसी लिए मैं उसके साथ रहती हूँ और उसके लिए दो रोटियाँ बना देती हूँ।

रास्ते में खड़े होकर अधिक देर तक बात करना उचित न समझ कर मेना ने कहा—आप हमारे साथ मकान में चलिए। वहीं हम आपकी सारी बातें सुनेंगी।

मेना ने मोटर का दरवाज़ा खोल दिया। बुढ़िया उस प्रकाण्ड रोल्सरायस कार में जा बैठी। जिस समय बुढ़िया परम सम्मान के साथ इन राजकन्याओं की कार में बैठी उनके महल को जा रही थी उस समय तीस रुपये महीने पर क्लर्की करनेवाला उसका भतीजा जेल में बन्द था। इसी को भाग्य कहते हैं !

बुढ़िया के मोटर में बैठ जाने पर वह फाटक के भीतर जा पहुँची। बुढ़िया को अपने साथ लेकर ऊपर के कमरे में चढ़ते चढ़ते एना ने उससे पूछा—आपने अपने भतीजे का क्या नाम बताया ? पुण्डरीकाक्ष ? पुण्डरीकाक्ष का क्या मतलब है ?

बुढ़िया बोली—पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड ।

यह नाम सुनते ही एना खिलखिलाकर हँस पड़ी ।

मेना ने उसे आँखें दिखाकर सावधान करती हुई कहा—एना, तू जा कपड़े बदल ले ।

एना नहीं गई, तो भी उसने अपनी हँसी दबाकर अपनी आँखों और मुँह को लाल कर लिया और पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड की कथा सुनने की उत्सुकता में मेना और बुढ़िया के समीप मौजूद रही ।

बुढ़िया ने अपने प्रति थोड़ी सहानुभूति की भावना देखकर अपने ही आप पुण्डरीक का और अपना जीवन-वृत्तान्त विस्तार के साथ सुनाना प्रारम्भ कर दिया ।

बुढ़िया बकते बकते थक कर ज्यों ही साँस लेने को क्षण भर को रुकी, त्योंही मेना वहाँ से उठ गई और बगल के कमरे से दस रुपये का एक नोट लाकर उसके हाथ में देती हुई बोली—ऐसा लगता है कि आपके भतीजे पुण्डरीक बाबू हम लोगों को बचाने जाकर ही जेल गये हैं । आप प्रति महीने हमारे पास आकर ये रुपये ले जाया करें ।

पुण्डरीकाक्ष की बुआ नोट को हाथ में लेकर इस आशातीत लाभ की प्रसन्नता में गद्गद स्वर से बोली—तुम लोग राजकन्या हो बेटी, तुम्हारे रोम रोम में दया है । मैंने साक्षात् लक्ष्मी के द्वार पर हाथ फैलाया है । मुझे और किसी के सामने हाथ फैलाने की ज़रूरत नहीं पड़ी । तुम लोगों को क्या कहकर आशीर्वाद दूँ बेटी । तुम लोग राजरानी तो बनोगी ही, तो भी स्वामी-पुत्र लेकर सुखी होओ, मेरी तरह के बुढ़ापे की उम्र में सौभाग्य-सिन्दूर लगाओ, मेरी तरह की सैकड़ों दुखी-दरिद्रों को मुक्तहस्त होकर दान-दक्षिणा देती रहो । तुमने मुझे ये दस रुपये नहीं दिये हैं, दस लाख रुपये दिये हैं, मुझे प्राण-दान दिया है, मेरी मान-रक्षा की है, नहीं तो मैं न जाने किस राह-घाट की भिखारिन बनी फिरती बेटी ।

एना को प्रत्येक बात में अकारण ही हँसी आ रही थी । वह अपने मुँह में कपड़ा दबा कर हँसी से फूलती हुई समीप के कमरे में जाकर लोट गई । जब मेना बुढ़िया को

विदा करके उस कमरे में पहुँची तब एना ने उससे हँसते हँसते कहा—दीदी, इतने दिनों के बाद तुम्हारे उस भोंदूराम का नाम मालूम हुआ । कैसा बड़िया दाँतफोड़ नाम है—पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड । शायद माता-पिता को और कोई नाम ढूँढ़े नहीं मिला ।

मेना ने भी हँसकर उत्तर दिया—खैर, इतने दिनों के बाद अब तो तेरी चिन्ता मिट गई । जप करने योग्य एक नाम मिल गया । अब तक तो योंही मरी जा रही थी ।

एना ने हँसते हँसते कहा—हिश ! मुझे उस भोंदूर का नाम जप करने की परवा नहीं है । मैं तो तुम्हारे ही लिए यह नाम ढूँढ़ रही थी । अच्छा दीदी, तुम्हें तो अब तीन तीन नाम जप करने को मिल गये—कन्दर्प, पुण्डरीकाक्ष और भास्कर । एकदम ट्रिनिटी । ब्रह्मा, विष्णु, महादेव ।

मेना हँस कर बोली—तुम्हें यदि ईर्ष्या होती है तो तू इनमें से दो स्वच्छन्द होकर ले सकती है । मैं निःस्वत्व होकर दान किये दे रही हूँ ।

एना ने कहा—तो दीदी, यह तो बताओ कि तुमने कौन से दो को दान में दे दिया और किसे अपने लिए रख लिया ।

मेना ने हँस कर उत्तर दिया—अपनी यह 'गुप्त बात' तुम्हें कैसे बताऊँ ?

एना ने हँस कर कहा—यह तो मैं बता सकती हूँ । कन्दर्प तो है नहीं, क्योंकि वह पिता जी का पसन्द किया हुआ वर है । पुण्डरीकाक्ष भोंदूराम हैं, वे भी नहीं हैं । स्वयंवर हुआ है भास्कर बाबू के साथ । क्यों, है न यही ठीक ?

मेना का सुन्दर मुख लज्जा से लाल हो उठा, परन्तु उसने प्रतिवाद में कहा—क्या व्यर्थ बकती है ! छिः !

परन्तु उसका प्रतिवाद ज़ोर न पकड़ सका । उसका स्वर अत्यन्त क्षीण सुनाई पड़ा ।

पुण्डरीकाक्ष की बुआ को रुपये लेकर जाते हुए फाटक के समीप भास्कर ने देख लिया और आश्चर्यान्वित हो कर पूछा—आप भीतर कैसे पहुँच गई ?

बुढ़िया भय और लज्जा से सकपका कर बोली—मैं अपने आप नहीं आई हूँ बेटा। राजकन्यायें मुझे अपनी गाड़ी में बिठा कर ले आई थीं। उन्होंने ये दस रुपये दिये हैं और प्रति महीने आकर ये रुपये ले जाने की बात कही है।

भास्कर और कुछ कहे बिना वहाँ से चला गया। बुढ़िया ने भी वहाँ से भाग कर अपने प्राण बचाये।

शाम को जब मेना और एना बगीचे में टहल रही थीं तब एक दरबान ने आकर मेना से कहा—मैनेजर साहब एक बार आपसे मिलना चाहते हैं।

मेना का मुँह विवर्ण हो उठा, वह एना की ओर देख तक न सकी। वह दरबान से बोली—यहाँ बुला ला।

दरबान के जाते ही एना खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली—दीदी, यह तो नित्य का अभिसार प्रारम्भ हो गया।

मेना ने मुँह में हँसी दबा कर लाल आंखें दिखाती हुई बहन से शासन के स्वर में कहा—चुप पगली, जो मुँह में आता है वही बकने लगती है, जानती नहीं, मैं तुमसे बड़ी हूँ ?

भास्कर को दूर पर आता देख कर एना वहाँ से जाती हुई मेना से कह गई—मैं भागू भाई, दू इज़ कम्पनी, थो इज़ नन; और मैं हँसी रोक कर चुपचाप ठहर भी न सकूँगी।

भास्कर ने आकर नमस्कार करके कहा—आज राजा बहादुर ने इकट्ठी छः मृगनाभियाँ खरीद ली हैं। खुद ही एक भूटानी को कहीं से मोटर में बैठा कर ले आये थे ? उसके पास जितनी मृगनाभियाँ थीं, उन्होंने सबकी सब खरीद लीं। इतनी मृगनाभियाँ तो सारे कलकत्ता शहर के मुमूर्षु प्राणियों को बचा लेने के लिए भी यथेष्ट हैं। अतएव इनमें से कम-से-कम पाँच मुझे वापस कर दीजिएगा। मैंने उस भूटानी को बुलाया है, उसे लौटा दूँगा।

मेना ने अपनी स्वाभाविक गम्भीरता से उत्तर दिया—अच्छा, मैं उन्हें चुराने का प्रयत्न करूँगी।

मेना अपनी गम्भीरता की रक्षा न कर सकी। चोरी करने की बात कहते हुए उसके मुँह में हँसी की आभा विकीर्ण हो गई ?

उसकी बात सुन कर और हँसी देख कर भास्कर ने भी हँसते हुए कहा—सुना है, आज तो आप भी एक बुढ़िया को अपने मोटर में बैठा कर ले आई और मकान के भीतर ले जाकर उसे दस रुपये दान में दिये। पहरवाले ही जब चोर हों तब तो किसी प्रकार रक्षा नहीं हो सकती।

मेना कुछ मुस्करा कर रह गई। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। और कोई बात कहने को न होने के कारण भास्कर नमस्कार करके वहाँ से चला गया।

भास्कर के जाते ही एना तुरन्त आ पहुँची और मेना से बोली—भास्कर बाबू से तुम्हारी क्या बातें हुईं दीदी ? मैं ऊपर की खिड़की से सब देख रही थी। खूब हँस हँस कर कौन-सी बातें हो रही थीं ? उस मूक आदमी के मुँह में तुमने हँसी ला दी, तुम सीधी स्त्री नहीं हो दीदी।

मेना ने हँस कर कहा—इतनी ईर्ष्या है तो तू भी तो ठहर सकती है। भाग कर आड़ से देखने की कौन सी आवश्यकता है ? मेरी अपेक्षा हँसने में तो तू ही अधिक पटु है। तेरे ठहरने पर तो दोनों की बातें हँसते ही हँसते होतीं।

एना कृत्रिम गम्भीरता दिखाती हुई अँठ बिचका कर बोली—न बाबा, अन्त में तुम दोनों ही मन-ही-मन मुझे कोसोगी। जो स्थिति देख रही हूँ उससे तो ऐसा लग रहा है कि कन्दर्प बाबू के भाग्य में तुम खटाई घोल रही हो।

मेना ने हँस कर कहा—कन्दर्प बाबू के लिए यदि तेरे में इतना दर्द है तो तू तो उसकी मन की व्यथा मिटाने को मौजूद है।

एना गम्भीरता दिखाती हुई ही बोली—नहीं भाई, मुझे तुम्हारे कन्दर्प की ज़रूरत नहीं है। मैं तो ये सब युक्ताक्षर-संयुक्त उल्टे-टेढ़े नाम स्मरण तक न रख सकूँगी, और न इन नामों का उच्चारण ही कर सकूँगी। पुण्डरीकाक्ष !

कन्दर्प-कान्ति ! भास्कराचार्य ! एक से एक बढ़िया नाम हैं ।

मेना ने कहा—अच्छा, इनमें से जो तुम्हें पसन्द हो उसे छांट ले । उसका नाम बदल कर ललित अथवा अधर-सधर कुछ भी रख दिया जायगा । नाम बदलते कितनी देर लगती है ।

दोनों बहनों की यह रङ्ग-रसिकता कितनी देर तक चलती, यह बताना कठिन है । वे दोनों बहनें होने पर भी सज्जिनी के अभाव में परस्पर सहेली बन गई थीं । परन्तु इतने ही में एक नौकर ने आकर कहा— गाना सिखानेवाले उस्ताद जी आये हैं ।

दोनों बहनें गाना-बजाना सीखने चली गईं ।

उसके दूसरे दिन मेना कालेज से लौटते समय एक कपड़े की दूकान से दो जोड़े सादी धोतियाँ खरीद लाई ।

एना ने कार में पूछा—इन सादी धोतियों का क्या होगा दीदी ?

मेना ने कहा—पुण्डरीकाक्ष बाबू की बुआ के पास भेज दूँगी । कल जो रुपये दिये हैं उनसे वह धोतियाँ खरीदेगी तो खायगी क्या ?

एना हँस कर अपनी बहन की गोद में लिपट गई और बोली—तब तो उस भोले बाबू पर ही तुम्हारा अधिक आकर्षण दिखाई पड़ रहा है । उसका नाम क्या है दीदी, पुण्डरीकाक्ष अथवा पिण्डखजूर । काक्ष अथवा राक्षस । यरलवत् ।

एना इसी प्रकार की उलजलूल बातें बकती हुई अपनी बहन की गोद में हँसती हुई लोट-पोट हो गई ।

मेना उसके मस्तक पर हाथ फेरती हुई बोली—एना, तुझमें चिरकाल तक ऐसा ही लड़कपन बना रहे, तेरी अजस्र हँसी का कभी हास न हो, तेरा प्रफुल्ल मन कभी म्लान न हो ।

एना हँसी रोक कर उठ बैठी और गम्भीर होकर बोली—तुमने इतनी गम्भीर होकर ब्राह्मसमाज के आचार्य की भाँति समन देना प्रारम्भ कर दिया, पुरातन काल के ऋषि-मुनियों की तरह आशीर्वाद और वरदानों की झड़ी

लगाने लगीं । दीदी, तुम्हारे कारण तो एक क्षण के लिए जी खोल कर हँसने का भी मौका नहीं मिलता । बात बात में तुम्हारे इतने गम्भीर हो जाने पर मेरे प्राण तो ज्वबने लगते हैं भाई !

इसी प्रकार के आनन्द और आमोद-विनोद में दोनों बहनों के दिन बीतते । वे दोनों प्रत्येक महीने में एक दिन पुण्डरीकाक्ष के द्वार पर मोटर रोक कर उसकी बुढ़िया बुआ को बिठा लातीं और रुपये और आश्वासन देकर उसके दुखों की कहानी सुनतीं तब उसे विदा करतीं ।

इसी प्रकार उन लोगों ने पुण्डरीकाक्ष की बुआ से बातें कर करके उसके विषय की सारी बातें जान लीं ।

पुण्डरीकाक्ष के विषय की बातें जानने के लिए एना के मन में भी कम आग्रह नहीं था । वह एकान्त मन से बुढ़िया की बातें सुनती और उस समय उसे हँसी भी न आती ।

एक दिन पुण्डरीकाक्ष की बुआ के चले जाने पर एना ने मेना से कहा—दीदी, रवि बाबू ने कहा है कि साधारण मनुष्यों के बीच भी भीष्म और द्रोण जैसे वीर विद्यमान हैं । यह बात मिथ्या नहीं है । ये बम्भोलानाथ देखने में पागलों के से हैं तो क्या हुआ, परन्तु इनमें भी त्याग और स्वेच्छा से कष्ट को अपनाने का वीरत्व मौजूद है !

मेना ने भी मुग्धभाव से कहा—प्रत्येक मनुष्य में महत्त्व निहित है, उसके प्रकाशित होने का अवसर आने पर ही लोगों को उस महत्त्व का परिचय मिलता है । पुण्डरीकाक्ष बाबू केवल हम लोगों के लिए ही तो जेल भोग रहे हैं ।

एना की चञ्चलता फिर जाग्रत हो उठी । उसने हँसते हँसते कहा—तुम्हारे लिए वह अपने प्राण दे सकता है दीदी, छः महीने जेल में रहना कौन सी बड़ी बात है ? देखती नहीं थीं नित्य मुँह बाये ताकता हुआ खड़ा रहता था । ऐसा लगता था मानो राहु चन्द्रमा के समीप पहुँच कर उसे निगल लेना चाहता है ।

मेना ने हँस कर कहा—वह मुझे देखा करता था अथवा तुम्हें, यह तूने कैसे जाना ?

एना ने कहा—उसकी आँखों की दृष्टि-रेखा देखकर जान गई थी, ठीक तुम्हारे मुँह पर आकर पड़ती थी।

मेना बोली—अच्छा वह लौट आये, उससे बात-चीत करके उसकी दृष्टि-रेखा को तेरी ओर ही बदलवा दूँगी। क्यों, तब तो तू सन्तुष्ट हो जायगी ?

एना तुरन्त कह उठी—न न दीदी, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। मैं उस भोलानाथ से बात-चीत न कर सकूँगी, मेरा तो हँसते-हँसते इतना पेट फूल जायगा कि मैं मर ही जाऊँगी।

दोनों बहनें एक-दूसरे की ओर देख कर हँसने लगीं।

चौथे महीने एक दिन उनकी मोटर पुण्डरीकाक्ष के मकान के सामने मेना के आदेश से खड़ी हुई और शोफर भोंपू बजाने लगा।

आवाज़ सुनकर उसकी बुढ़िया बुआ तत्क्षण बाहर निकल आई और हँसमुख होकर मेना से बोली—बेटी, तुम लोगों की कृपा से आज मेरा पुण्डरीकाक्ष छोड़ दिया गया है, शायद जेलखाने में अधिक स्थान नहीं है, इसी लिए पुराने कैदियों को छोड़कर नये कैदियों के लिए जगह बनाई जा रही है। अब तुमसे मुझे कुछ लेने की आवश्यकता न पड़ेगी। तुम लोग राजराजेश्वरी बनो बेटी, तुम्हारा सौभाग्य-सिन्दूर अटल रहे, स्वामी और बाल-बच्चों के साथ सुख-स्वच्छन्दता-पूर्वक गृहस्थी का आनन्द प्राप्त करो। तुम्हारी कृपा-करुणा की प्रत्येक बात मैंने पुण्डरीकाक्ष से बताई है। वह सुनकर बड़ा खुश हुआ, बोला—उनमें दया क्यों न हो, वे देवी ही जो ठहरीं ! वे साक्षात् लक्ष्मी, मूर्तिमती श्री और शरीरिणी वाणी हैं। पुण्डरीक इस समय मकान में नहीं है, नहीं तो वह स्वयं आकर तुमसे ये बातें कहता। जाने कितनी बार उसने मुझसे ये सब बातें कहीं, सुनते सुनते मुझे सुखाग्र हो गया है। परन्तु मैं मूर्ख उन सबका अर्थ क्या जानूँ ? उच्चारण तक तो कर नहीं पाती।

पुण्डरीकाक्ष आकर कहीं देवीसूक्त का पाठ न शुरू कर दे इस डर के मारे मेना ने तुरन्त कहा—अच्छा, तो अब हम लोग चलें। कोई असुविधा अथवा आवश्यकता आ पड़े तो हमें बताइएगा।

एना-मेना की मोटर उनके मकान के फाटक के भीतर जा पहुँची। बुढ़िया के मुँह से वे तमाम संस्कृत के शब्द सुन कर मेना को भी हँसी आ रही थी। एना तो हँसती हुई बहन की गोद में लोट-पोट होकर बोली—दीदी, दीदी, तुमने देवीवन्दना सुनी न। स्वयं लक्ष्मी, मूर्तिमती श्री, शरीरिणी वाणी ! वाह रे भोलानाथ ! तुममें कवित्व भी है, संस्कृत-स्तोत्र-पाठ भी कर लेते हो। तुम्हारा ऐसा गम्भीर स्वभाव है कि यह प्रशंसा सुनकर तुम्हारा अहङ्कार और अधिक बढ़ जायगा।

मेना हँस कर बोली—तेरी सभी बातों में प्रतिहिंसा है। यह वन्दना और स्तव क्या केवल मेरे लिए है; तेरा भी तो उसमें आधा भाग है।

एना ने जोर से सिर हिला कर कहा—बिलकुल नहीं, ज़रा भी नहीं। यदि सजीव हँसी का फुवारा कहता तो मैं अवश्य समझती कि यह केवल मेरे लिए कहा गया है। उन विशेषणों का प्रयोग मेरे लिए तो किसी प्रकार किया ही नहीं जा सकता।

मेना गाड़ी से उतर कर मकान में घुसती हुई बोली—जब भावों का आतिशय होता है तब इस प्रकार के न जाने कितने अप्रयोग हो जाते हैं री पगली। और शरीरिणी वाणी से तेरे अतिरिक्त मेरा परिचय तो मिलता ही नहीं। तेरी नाक से, मुँह से, सब कहीं से वाणी फूटी पड़ती है।

एना ने कहा—यह कैसा प्रयोग है, जानती हो, इसे फ़िगरेटिव स्पोच, रूपक कहते हैं। तुम विदुषी, विद्यावती हो न, इसी लिए तुम्हें शरीरिणी वाणी कहा है।

मेना ने हँसकर कहा—बातों में तो मैं तुमसे जीत नहीं सकती। एक दिन पुण्डरीकाक्ष बाबू को बुला कर इस बात की मीमांसा करके सन्देह निवृत्त कर लिया जाय।

एना बोली—नहीं दीदी, मैं उस भोलानाथ के सामने निकल भी न सकूँगी, बड़ी बड़ी आँखों से एकटक ताकता रह जाता है, मानो पूरा राक्षसों से हो ! नाम भी तो राक्षसों से मिलता-जुलता हुआ ही है—पुण्डरीकाक्ष, पिण्डभोजी राक्षस !

मेना ने कृत्रिम भर्त्सना के स्वर में कहा— छिः एना, भले आदमी के नाम को इस प्रकार विद्वेष करना उचित नहीं है।

एना वैसे ही विस्मय के स्वर में बोल उठी—ओहो, इतना दर्द है, नाम बिगाड़ना प्राणों से सहा नहीं जाता ! अच्छा, तब आज से अत्यन्त आदरपूर्वक कहूँगी— परम सम्मान्य श्रीमान् पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड महोदय।

मेना ने कृत्रिम क्रोध दिखाकर कहा—चल हट, तुम्हसे कोई नहीं जीत सकता !

उसके दूसरे ही दिन कालेज जाते समय मेना और एना ने देखा कि पुण्डरीकाक्ष अपने मकान के दरवाजे पर वही धूसर वर्ण का छाता हाथ में लिये आफिस की पोशाक पहने हुए खड़ा राह देख रहा है। इस बार उसकी दृष्टि पहले की तरह अर्थहीन और भाव-शून्य नहीं थी, आज उसमें कुछ हँसी की झलक दिखाई पड़ रही थी और कृतज्ञता-पूर्ण आनन्द का भाव प्रकट हो रहा था।

पुण्डरीकाक्ष जेल से छूटते ही अपने जीवन के एकमात्र अवलम्ब चाकरी की ममता से दफ़्तर भागा गया था। यह जानने के लिए उसके मन में अदृश्य आग्रह था कि उसकी नौकरी छूट गई अथवा अभी है। इसी लिए कल जिस समय मेना और एना का मोटर उसके मकान के सामने खड़ा हुआ था, उस समय वह मकान में नहीं था और इस प्रकार वह अपने जीवन का परम सुयोग शायद चिरकाल के लिए खो बैठा। कल यदि वह उस समय मकान में होता तो वह अपने मुँह से मेना के प्रति धन्यवाद और कृतज्ञता का भाव व्यक्त करता और उससे वार्तालाप करके अपने जीवन को धन्य और सार्थक बना ले। पागल पुण्डरीक पारस पत्थर ढूँढ़ता फिरता था, परन्तु जिस समय वह पारस पत्थर उसके जीवन और मन को सुवर्णमय बना दे सकता था, उस परम मुहूर्त में वह अपने दफ़्तर के बड़े बाबू दैत्यनाथ की गाली-गलौज सुनकर साहब के श्रीमुख से सुन रहा था कि उसकी नौकरी का अन्त हो गया है। जो लोग कांग्रेस के दल के आदमी हैं उन विद्रोहियों के लिए इस दफ़्तर में स्थान नहीं है। पुण्डरीक ने अनेक अनुनय-विनय करके अपने को निर्दोष प्रमाणित करने की चेष्टा की। उसका यह फल हुआ कि वह

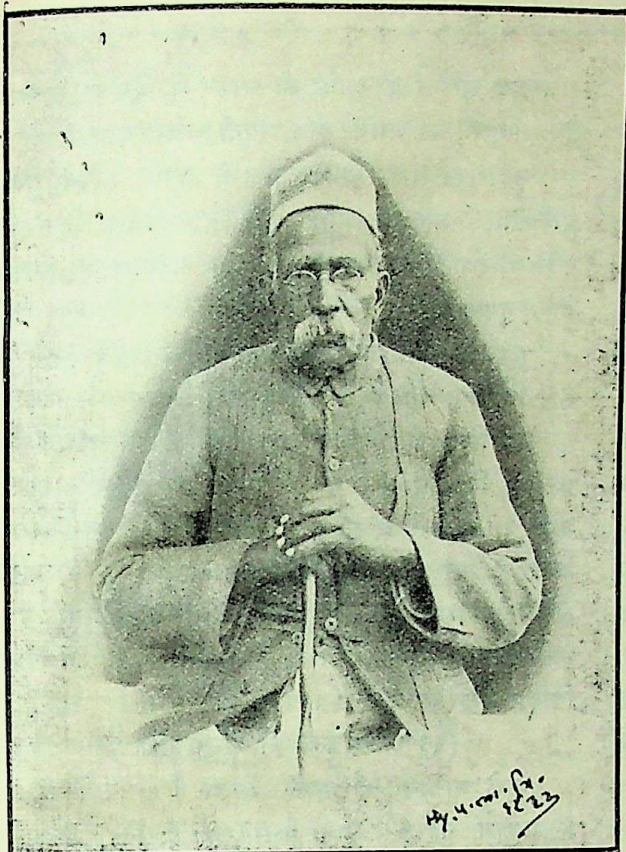
तुरन्त नौकरी से बरखास्त नहीं किया गया, बल्कि एक महीने का नोटिस दे दिया गया और जितने दिन वह काम करके जेल गया था, दयापूर्वक उसे उतने दिनों का वेतन भी दे दिया गया।

पुण्डरीक सोच रहा था कि एक दिन वह राजा बहादुर से मिलकर उनसे उनकी कन्याओं की कृपा-करुणा की बात बता आये, और यदि सुयोग से स्वयं मेना देवी के दर्शन सौभाग्यवश उसे मिल जायँ तो उन्हें भी वह अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करके उनसे वार्तालाप करके अपने जीवन की साध पूरी कर आये। परन्तु दफ़्तर में जाकर जब उसने जाना कि एक महीने के बाद उसकी नौकरी नहीं रह जायगी तब उसके मन से मेना से मिलने का सङ्कल्प विलीन हो गया। उसने सोचा कि यदि मैं ऐसे समय राजा बहादुर अथवा मेनादेवी से मिलने जाऊँगा तो वे लोग सोचेंगे कि मैं अपनी दरिद्रता व्यक्त करने के लिए याचक के रूप में उनके द्वार पर उपस्थित हुआ हूँ। शायद मेनादेवी सोचेंगी कि बेचारा हम लोगों को बचाते हुए जेल चला गया और नौकरी खो बैठा, अतएव उसे प्रतिमास कुछ सहायता दे दिया करूँ। यह बात मैं किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकूँगा। मैं अपने प्राणोपम स्नेह को अन्त में इस प्रकार कहीं बँच सकता हूँ ? कदापि नहीं। यह सब सोच-समझ कर उसने मेना के दर्शन अथवा उससे वार्तालाप करने की आशा और चेष्टा को बिलकुल त्याग दिया और पहले जिस प्रकार दूर से मेना को एक निमेष के लिए देखकर सुखी हो लेता था, उसी प्रकार अपने अभ्यास के अनुसार यथासमय अपने मकान के सामने खड़ा रहने लगा। किसी दिन वह मेना को देख पाता और किसी दिन न देख पाकर अपने हृदय में एक दीर्घ निश्वास दबाये हुए निरुत्साहित गति से दफ़्तर चला जाता। अब उसके जीवन में कोई उत्साह नहीं रह गया था। परन्तु तिस पर भी उसके मन के निभृत कोण में एक क्षीण आशा बनी हुई थी कि यदि डर्बी की घुड़दौड़ के रुपये मिल जायँ तो उसके सारे अभाव एक क्षण में ही न जाने कहां विलीन हो जायँ।

[क्रमशः]

आत्म-निवेदन

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी



इस मास में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की ७० वीं वर्ष गाँठ जिस उत्साह के साथ हिन्दी-प्रेमियों ने मनाई है वह हमारी मातृभाषा के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना है। इस अवसर पर आचार्य द्विवेदी ने जो उद्गार प्रकट किये हैं उनसे उनके सम्पादकीय जीवन पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है।

आत्म-निवेदन

वक्ता! न विज्ञो न च पण्डितोऽहम्,
क्षीणः शरीरेण गुणैर्विहीनः ।
सम्भाषणं मे लिखितं कथञ्चि-
च्छृण्वन्तु सभ्या। दययास्तएव ॥



मान् सवाई महेन्द्र महाराजा
साहब ओड़छा, काशी की
नागरी-प्रचारिणी सभा के
सभासद् तथा अन्य उपस्थित
सज्जन !

(१) सज्जनों का स्वभाव
मेरे विषय में जो कुछ कहा

गया उसे सुनकर और सभा ने मेरा जो अभिनन्दन किया
उसे देखकर मुझे भर्तृहरि की यह उक्ति याद आ रही है—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्ण-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।

परगुणपरमाणू पर्वतीकृत्य नित्यं

निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

इस श्लोक में जो कुछ कहा गया है उसे मैं अब तक केवल कवि-कल्पना समझता था। मुझे बड़ा खेद, नहीं पश्चात्ताप है जो मैंने इस सर्वदर्शी कवि की इस उक्ति को वैसा समझा। उसके कथन की सत्यता का पूरा प्रमाण आज मुझे मिल गया। दूसरे के बड़े से भी बड़े दोषों पर, सैकड़ों मन धूल डाल कर, उसी धूल के एक छोटे से भी छोटे कण के सदृश गुण को पर्वताकार करके संसार के सामने उपस्थित करना—और यही नहीं, ऐसा करके स्वयं भी आनन्दातिरेक का अनुभव करना—महाजनों और सज्जनों ने अपना आदर्श ही बना रखा है। वे सदा यही करते हैं। ऐसे उदारचरित

सज्जन संसार में बहुत नहीं, थोड़े ही हैं। मेरा अभिनन्दन करनेवाले इसी श्रेणी के सज्जन हैं। उनका क्रिया-कलाप तो देवों के भी आराध्य देव, महादेव, के सदृश है—

गुणदोषो बुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडाविवेश्वरः ।

शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे निषच्छति ॥

समुद्र-मन्थन से निकली हुई चौदह चीजों में से दो चीजें बाबा विश्वनाथ के हिस्से में पड़ीं—एक तो हलाहल विष, दूसरी चीज चन्द्रमा। विष को तो निगल कर उन्होंने अपने गले के भीतर छिपा लिया। मतलब यह कि कहीं उसे कोई देख न ले। पर चारुता-चक्र-चूडामणि चन्द्रमा को सिर पर स्थान दिया। इसलिए कि दुनिया देखे कि रत्नाकर से उन्हें वह अनमोल रत्न प्राप्त हुआ। मेरा अभिनन्दन करनेवाले सज्जनों ने भी, इस विषय में, ठीक सर्वसमर्थ शङ्कर ही का अनुकरण किया है। उन्होंने भी मेरे दोषों पर दृक्पात न करके गुणों ही का प्रकटीकरण किया है।

आज सभा ने मुझे जो दिव्य दान दिया है वह इस जन्म में मुझे प्राप्त हुई सभी वस्तुओं से अधिक मूल्यवान् और सम्मानसूचक है। उसकी प्राप्ति से मैं सर्वथा कृतार्थ हो गया।

सभा ने इस ग्रन्थ का समर्पण श्रीमान् सवाई महेंद्र महाराज वीरसिंह जू देव ओड़छा-नरेश के करकमलों से कराकर मेरे अभिनन्दन की महत्ता सौगुनी कर दी है। यह मेरा परम सौभाग्य है जो पण्डितों के प्रेमी, विद्वानों के आश्रय-स्थान और कवियों के कल्पवृक्ष ओड़छा-नरेश ने मेरी सम्मान-वृद्धि की। क्यों न हो, ओड़छा तो चिर-काल ही से सरस्वती के साधकों और आराधकों की संवर्धना के लिए प्रख्यात है। महाराजा साहब के पूर्वज तो सदा ही अपनी गुणग्राहकता का परिचय देते रहे हैं। ओड़छा-राज्य के सिंहासन में कुछ ऐसी अलौकिकता है जिससे आकृष्ट होकर साक्षर जन उस राज्य की वदान्यवरिष्ठ राजधानी का आश्रय लेते ही रहते हैं, मुझे इसका प्रत्यक्ष ज्ञान है। रत्नवे के काम से मैं दो दफे टीकमगढ़ गया हूँ और दोनों दफे, वहाँ के एक मन्दिर में

राजप्रदत्त सरकार की प्राप्ति की आशा से, दूर दूर से आये हुए पण्डितों का जमघट मैंने अपनी आँखों देखा है।

महाराजा साहब ने आज, अभी अभी, अपनी गुण-ग्राहकता, मातृभाषाभक्ति और दानशीलता का जो परिचय दिया है वह आपके राज्य की परम्परा के सर्वथा ही अनुकूल है—

कण्ठे सरस्वती तस्य राज्ञो लक्ष्मीः कराम्बुजे ।

नित्यमेव वसत्वेवं प्रार्थयेऽहं सदा शिवम् ॥

समर्पित ग्रन्थ में जिन महानुभावों ने मेरा अभिनन्दन करने के लिए मुझमें अनेक सद्गुणों की कल्पना की है उनके उन निर्देशों को मैं, आशीर्वाद समझकर, शिरोधारण करता हूँ और परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि अन्य संस्कारों के साथ वे भी मुझे अगले जन्म में प्राप्त रहें। ऐसा होने से, मुझे आशा है, मैं जन्मान्तर में उन सभी निर्दिष्ट गुणों का पात्र अवश्य ही हो सकूँगा।

(२) आचार्यत्व की अनुपयुक्ति

मुझे आचार्य की पदवी मिली है। क्यों मिली है, मालूम नहीं। कब, किसने दी है, यह भी मुझे मालूम नहीं। मालूम सिर्फ इतना ही है कि मैं बहुधा इस पदवी से विभूषित किया जाता हूँ—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।

सकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥

यह लक्षण मुझ पर तो घटित होता नहीं; क्योंकि मैंने कभी किसी को इक्का एक भी नहीं पढ़ाया। शङ्कराचार्य, मध्वाचार्य, सांख्याचार्य आदि के सदृश किसी आचार्य के चरणरजःकण की बराबरी मैं नहीं कर सकता। बनारस के संस्कृत-कालेज या किसी विश्व-विद्यालय में भी मैंने कभी कदम नहीं रक्खा। फिर इस पदवी का मुस्तहक मैं कैसे हो गया? विचार करने पर, मेरी समझ में, इसका एक-मात्र कारण मुझ पर कृपा करनेवाले सज्जनों का अनुग्रह ही जान पड़ता है। जो जिसका प्रेम-पात्र होता है उसे उसके दोष नहीं दिखाई देते। जहाँ दोष देख पड़ते हैं, वहाँ तो प्रेम का प्रवेश ही नहीं हो सकता। नगरों की बात जाने दीजिए, देहात तक में माता-पिता और गुरुजन

अपने लूले, लँगड़े, काने, अन्धे, जन्मरोगी और महाकुरूप लड़कों का नाम श्यामसुन्दर, मदनमोहन, चारुचन्द्र और नयनसुख रखते हैं। जिनके कब्जे में अङ्गुल भर भी ज़मीन नहीं वे पृथ्वीपति और पृथ्वीपाल कहाते हैं। जिनके घर में टका नहीं वे करोड़मल कहे जाते हैं। मेरी आचार्य-पदवी भी कुछ-कुछ इसी तरह की है। पर इससे पदवीदाता जनों का जो भाव प्रकट होता है उसका अभिनन्दन मैं हृदय से करता हूँ। यह पदवी उनके प्रेम, उनके औदार्य, उनके वात्सल्य-भाव की सूचक है। अतएव प्रेमपात्र मैं अपने इन सभी उदारशाय प्रेमियों का ऋणी हूँ। बात यह है कि—

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि

अर्थात् गुणों का सबसे बड़ा आधार प्रेम होता है, वस्तु-विशेष नहीं। जो जिस पर कृपा करता है—जिसका प्रेम जिस पर होता है—वह उसे आचार्य क्या यदि जगद्गुरु समझ ले तो आश्चर्य की बात नहीं।

(३) अहंकार का निरसन

तथापि, मेरी घृष्टता क्षमा की जाय, मुझे ऐसी बातों से—स्तुति और प्रशंसा से—बहुत डर लगता है; क्योंकि वे अहंकार को जन्म देनेवाली ही नहीं, उसे बढ़ानेवाली भी हैं। और इस अहंकार-नामक शत्रु का शिकार मैं चिर काल तक हो चुका हूँ। यह उसी की कृपा का फल था जो कभी मैंने किसी सभा की खबर नहीं ली, कभी किसी लाला या बाबू पर वचन-रूपी शर-सन्धान किया; कभी किसी ग्रन्थकार या ग्रन्थ-प्रकाशक पर अपना रोब जमाया। उस ज़माने में मेरी क्या हालत थी और अब क्या है, इसका निदर्शन भर्तृहरि ने बहुत पहले ही कर रक्खा है—

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं

तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलपितं मम मनः।

यदा किञ्चित्किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतं

तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥

जब मुझमें ज्ञान की कुछ यों ही ज़रा सी झलक थी तब मैं मदान्ध हाथी-सा हो रहा था—तब मुझमें अहंकार की मात्रा इतनी अधिक थी कि मैं अपने को

सर्वज्ञ समझता था। परन्तु किसी अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से, जब मुझे कुछ विज्ञ विद्वानों की संगति नसीब हुई और जब मैंने प्रकृत पण्डितों की कुछ पुस्तकों का मनन किया तब मेरी आँखें खुल गईं; तब मेरा सारा अहंकार चूर्ण हो गया। उस समय मुझे ज्ञात हुआ कि मैं तो महामूर्ख हूँ। नतीजा यह हुआ कि मेरी झूठी सर्वज्ञता का वह नशा उसी तरह उतर गया जिस तरह कि १०४° दर्जे तक चढ़ा हुआ ज्वर उतर जाता है।

मेरी झूठी विज्ञता के आवेश ने, मुझसे पूर्वावस्था में, अनेक अनुचित काम करा डाले। उस दशा में मुझसे जो दुष्कृत्य हो गये उन्होंने मेरी आत्मा को कलुषित कर दिया। उन्होंने उस पर काला पर्दा सा डाल रक्खा है। इस कारण मैं थोड़ा-सा प्रायश्चित्त करके उस पर्दे के बहुत न सही, थोड़े ही, अंश को हटा देना चाहता हूँ। मेरी प्रार्थना है कि सभा के कार्यकर्ता और सभासद् तथा अन्य भी सज्जन, इस विषय में, मेरी सहायता करें। सहायता इतनी ही कि आज से वे मुझे अपना—अपना ही क्यों, सभी का—दास समझें और मुझे कोई ऐसा काम करने दें जिससे मेरा दास्य-भाव सब पर प्रकट हो जाय।

(४) सेवाभाव को यात्रा

मैं सभा के प्रधान मन्त्रीजी को यह लिफाफा दे रहा हूँ। इसके भीतर कुछ धन है। वह इतना थोड़ा है कि उसका उल्लेख करते मुझे लज्जा मालूम होगी। खैर, जो कुछ है, हाज़िर है। मैं चाहता हूँ कि छः महीने या साल भर, जब तक के लिए वह काफी हो, सभा के दो मुलाज़िमों को उसी से तनख्वाह दी जाय और वे दोनों ही मेरे प्रतिनिधि समझे जायें—एक तो सभा का एक चपरासी, दूसरा वह आदमी जो सभा-भवन के भीतर और बाहर प्राङ्गण में झाड़ू लगाता हो। आशा है, इससे मेरी आत्मा कुछ तो ज़रूर ही निर्मल हो जायगी और मुझमें यह धारणा जागृत होने लगेगी कि मुझसे सभी बड़े; मैं सभी से छोटा ही नहीं, सभी का सेवक भी हूँ—

शठ सेवक मैं, चर अचर आप सभी भगवान ।
 दिन हीन मुझको अधम समझो दयानिधान ॥
 अब मेरी आत्म-शुद्धि के लिए आप भी मुझे आज्ञा दीजिए—

अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु हित्वा

सेवासुधारसमहो नितरां पिब त्वम् ।

अहंकार की व्याप्ति से बचने ही के लिए मैंने आज तक, आमंत्रित होने पर भी, साहित्य-सम्मेलन के सभा-पति-पद का स्वीकार नहीं किया । अनेक महानुभावों ने जिस आसन की शोभा बढ़ाई उसी पर बैठना मेरे लिए बहुत बड़ी गुस्ताखी भी होती ।

(५) जीवन-कथा

मैं क्या हूँ, यह तो प्रत्यक्ष ही है । परन्तु मैं क्या था, इस विषय का ज्ञान मेरे मित्रों और कृपालु हितैषियों को बहुत ही कम है । उन्होंने मुझे अनेक पत्र लिखे हैं; अनेक उलाहने दिये हैं, अनेक प्रणयानुरोध किये हैं । वे चाहते हैं कि मैं अपनी जीवन-कथा अपने ही मुँह से कह डालूँ । पर पूर्ण-रूप से उनकी आज्ञा का पालन करने की शक्ति मुझमें नहीं । अपनी कथा कहते मुझे संकोच भी बहुत होता है । उसमें कुछ तत्त्व भी तो नहीं । उससे कोई कुछ सीख भी तो नहीं सकता । तथापि जिन सज्जनों ने मुझे अपना कृपापात्र बना लिया है उनकी आज्ञा का उल्लंघन भी घटता होगी । अतएव, इस अवसर पर, मैं अपने जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बातें, सूत्ररूप में सुना देना चाहता हूँ । बड़े बड़े लोगों ने, इस विषय में, मेरे लिए मैदान पहले ही से साफ़ भी कर रखा है । मेरी इस कथा से यह फलप्राप्ति भी हो सकती है कि आज आप जिसका इतना अभिनन्दन कर रहे हैं वह उस अभिनन्दन का कहीं तक पात्र है ।

मैं एक ऐसे देहाती का एक-मात्र आत्मज हूँ जिसका मासिक वेतन सिर्फ १०५ था । अपने गाँव के देहाती मंदरसे मैं थोड़ी सी उर्दू और घर पर थोड़ी सी संस्कृत पढ़कर, १३ वर्ष की उम्र में, मैं ३६ मील दूर, रायबरेली के जिला-स्कूल में अंगरेजी पढ़ने गया । आटा-दाल घर

से पीठ पर लाद कर ले जाता था । दो आने महीने फीस देता था । दाल ही में आटे के पेड़े या टिकियाएँ पका कर पेटपूजा करता था । रोटी बनाना तब मुझे आता ही न था । संस्कृत-भाषा उस समय उस स्कूल में वैसी ही अद्वैत समझी गई थी जैसी कि मदरास के नम्बूदरी ब्राह्मणों में वहाँ की शूद्रजाति समझी जाती है । विवश होकर अंगरेजी के साथ फ़ारसी पढ़ता था । एक वर्ष किसी तरह वहाँ कटा । फिर पुरवा, फतेहपुर और उन्नाव के स्कूलों में चार वर्ष काटे । कौटुम्बिक दुरवस्था के कारण मैं उससे आगे न बढ़ सका । मेरी स्कूली शिक्षा की वहीं समाप्ति हो गई ।

(६) रेलवे में नौकरी

एक साल अजमेर में १५ महीने पर नौकरी करके, पिता के पास बम्बई पहुँचा और तार का काम सीखकर जी० आई० पी० रेलवे में, २० महीने पर तारबाबू बना । बचपन ही से मेरी प्रवृत्ति सुशिक्षित जनों की संगति करने की ओर थी । दैवयोग से हरदा और हुशंगाबाद में मुझे ऐसी संगति सुलभ रही । फल यह हुआ कि मैंने अपने लिए चार सिद्धान्त या आदर्श निश्चित किये । यथा (१) वक्त की पाबन्दी करना, (२) रिश्वत न लेना, (३) अपना काम ईमानदारी से करना, और (४) ज्ञान-वृद्धि के लिए सतत प्रयत्न करते रहना । पहले तीन सिद्धान्तों के अनुकूल आचरण करना तो सहज था; पर चौथे के अनुकूल सचेष्ट रहना कठिन था । तथापि सतत अभ्यास से उसमें भी सफलता होती गई । तारबाबू हो कर भी, 'टिकट-बाबू, मालबाबू, स्टेशन मास्टर, यहां तक कि रेल की पटरियाँ बिछाने और उसकी सड़क की निगरानी करनेवाले प्लेट-लेयर (Permanentway Inspector) तक का भी काम मैंने सीख लिया । फल अच्छा ही हुआ । थफ्सरों की नज़र मुझ पर पड़ी । मेरी तरक्की होती गई । वह इस तरह कि एक दफ़े छोड़ कर मुझे कभी तरक्की के लिए दरखास्त नहीं देनी पड़ी । जब इंडियन मिडलैंड रेलवे बनी और उसके दफ़्तर माँसी में खुले तब जी० आई० पी० रेलवे के मुलाज़िम

जो साहब वहाँ के जनरल ट्राफिक मैनेजर मुकर्रर हुए वे मुझे भी अपने साथ भाँसी लाये और नये नये काम मुझसे लेकर मेरी पदोन्नति करते गये। इस उन्नति का प्रधान कारण मेरी ज्ञानलिप्सा और गौण कारण उन साहब बहादुर की कृपा या गुण-ग्राहकता थी। दस-बारह वर्ष बाद मेरी मासिक आय मेरी योग्यता से कई गुनी अधिक हो गई।

जब इंडिया मिडलैंड रेलवे जी० आई० पी० रेलवे से मिला दी गई तब कुछ दिन बम्बई में रहकर मैंने अपना तबादिला भाँसी को करा लिया। वहीं रहना मुझे अधिक पसन्द था। पाँच वर्ष मैं वहाँ डिस्ट्रिक्ट ट्राफिक सुपरिण्टेंडेंट के दफ्तर में रहा। वे दिन मेरे अच्छे नहीं कटे। लार्ड कर्जन का देहली-दरबार उसी जमाने में हुआ था। मेरे गौरांग प्रभु अपनी रातें अपने बँगलों या क़ुब में बिताते थे। मैं दिन भर दफ्तर का काम करके रात भर, अपनी कुटिया में पड़ा हुआ, उनके नाम आये हुए तार लेता और उनके जवाब देता था। ये तार उन स्पेशल रेलगाड़ियों के सम्बन्ध में होते थे जो दक्षिण से देहली की ओर दौड़ा करती थीं। उन चाँदी के टुकड़ों की बदौलत जो मुझे हर महीने मिलते थे, मैंने अपने ऊपर किये गये इस अत्याचार को महीनों बरदाश्त किया।

(५) नौकरी से इस्तीफा

मैं यदि किसी के अत्याचार को सह लूँ तो उससे मेरी सहनशीलता तो अवश्य सूचित होती है; पर उससे मुझे औरों पर अत्याचार करने का अधिकार नहीं प्राप्त हो जाता। परन्तु कुछ समयोत्तर बानक कुछ ऐसा बना कि मेरे प्रभु ने मेरे द्वारा औरों पर भी अत्याचार कराना चाहा। हुकम हुआ कि तुम इतने कर्मचारियों को लेकर रोज़ सुबह ८ बजे दफ्तर में आया करो और ठीक दस बजे मेरे कागज़ मेरे मेज़ पर मुझे रखे मिलें। मैंने कहा—मैं आऊँगा; पर औरों को आने के लिए लाचार न करूँगा। उन्हें हुकम देना हुज़ूर का काम है। बस बात बढ़ी और बिला किसी सोच-विचार के मैंने इस्तीफा दे दिया। बाद को उसे वापस लेने के लिए इशारे ही नहीं; सिफारिशें तक की गईं। पर सब व्यर्थ

हुआ। क्या इस्तीफा वापस ले लेना चाहिए, यह पूछने पर मेरी पत्नी ने विषण्ण होकर कहा—“क्या थूककर भी कोई उसे चाटता है?” मैं बोला—“नहीं, ऐसा कभी न होगा; तुम धन्य हो। तब उसने तो ॥) रोज़ तक की आमदनी से भी मुझे खिलाने-पिलाने और गृह-कार्य चलाने का दृढ़ संकल्प किया और मैंने “सरस्वती” की सेवा से मुझे हर महीने जो २०) उजरत और ३) डाक-खर्च की आमदनी होती थी उसी से सन्तुष्ट रहने का निश्चय किया। मैंने सोचा—किसी समय तो मुझे महीने में १५) ही मिलते थे; २३) तो उसके ड्यूदे से भी अधिक हैं। इतनी आमदनी मुझ देहाती के लिए कम नहीं।

(८) मेरे पूर्वज

मेरे पिता ईस्ट इंडिया कम्पनी की एक पलटन में सैनिक या सिपाही थे। मामूली हिन्दी पढ़े थे। बड़े भक्त थे। सिपाहियाने काम से छुट्टी पाने पर राम-लक्ष्मण की पूजा किया करते थे। इसी से साथी सिपाहियों ने उनका नाम रक्खा था—लखिमन जी। ग़दर में पिता की पलटन बागी होगई। जो बच निकले वे बच गये; बाकी जवान तोपों से उड़ा दिये गये। पलटन उस समय होशियारपुर (पंजाब) में थी। पिता ने भाग कर अपना शरीर सतलज की वेगवती धारा को अर्पण कर दिया। एक या दो दिन बाद, बेहोशी की हालत में, सैकड़ों कोस दूर, आगे की तरफ़, कहीं वे किनारे लग गये। होश आने पर सँभले और हरी हरी मोटी घास के तिनके चूस चूस कर कुछ शक्ति सम्पादन की। मांगते-खाते, साधु-वेश में, कई महीने बाद, वे घर आये। घर पर कुछ दिन रह कर, इधर-उधर भटकते हुए, वे बम्बई पहुँचे। वहाँ बल्लभ-सम्प्रदाय के एक गोस्वामी जी के यहाँ वे नौकर हो गये। इस तरह वहाँ भी उन्हें ठाकुर जी की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे समर्थ होने तक वे इसी सम्प्रदाय के गोस्वामियों की मुलाज़िमत में रहे। फिर सदा के लिए उसे छोड़ कर घर चले आये।

मेरे पितामह अलबत्ते संस्कृतज्ञ थे और अच्छे पण्डित भी थे। बंगाल की छावनियों में स्थित पलटनों को वे

पुराण सुनाया करते थे। उनकी एकत्र की हुई सैकड़ों हस्तलिखित पुस्तकें बेच बेच कर मेरी पितामही ने मेरे पिता और पितृव्य आदि का पालन किया। व्यस्क होने पर दो-चार पुस्तकें मुझे भी घर में पड़ी मिलीं।

मेरे पितृव्य दुर्गाप्रसाद नाम-मात्र को हिन्दी क्या कैथी जानते थे। पर उनमें नये नये किस्से बनाकर कहने की अद्भुत शक्ति थी। रायबरेली ज़िले में दीनशाह के गौरा के तत्कालीन तअल्लुकेदार, भूपालसिंह, के यहां किस्से सुनाने के लिए वे नौकर थे।

मेरे नाना और एक मामा भी संस्कृतज्ञ थे। मामा की संस्कृतज्ञता का परिचय स्वयं मैंने, उनके पास बैठकर, प्राप्त किया था।

(८) साहित्य-प्रेम

नहीं कह सकता, शिक्षाप्राप्ति की तरफ़ प्रवृत्त होने का संस्कार मुझे किससे प्राप्त हुआ—पिता से या पितामह से या मातामह से या अपने ही किसी पूर्व-जन्म के कृत कर्म से। बचपन ही से मेरा अनुराग तुलसीदास की रामायण और ब्रजवाहीदास के ब्रजविलास पर हो गया था। फुटकर कवित्त भी मैंने सैकड़ों कण्ठ कर लिये थे। दुर्गाबाद में रहते समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कविवचनसुधा और गोस्वामी राधाचरण के एक मासिक पत्र ने मेरे उस अनुराग की वृद्धि कर दी। वहीं मैंने बाबू हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ नाम के एक सज्जन से, जो वहाँ कचहरी में मुलाज़िम थे, पिङ्गल का पाठ पढ़ा। फिर क्या था, मैं अपने को कवि ही नहीं, महाकवि समझने लगा। मेरा यह रोग बहुत समय तक ज्यों का त्यों बना रहा। फ़ाँसी आने पर जब मैंने, पण्डितों की कृपा से, प्रकृत कवियों के काव्यों का अनुशीलन किया तब मुझे अपनी भूल मालूम हो गई और छन्दोबद्ध प्रलापों के जाल से मैंने सदा के लिए छुट्टी ले ली। पर गद्य में कुछ न कुछ लिखना जारी रखवा। संस्कृत और अँगरेज़ी पुस्तकों के कुछ अनुवाद भी मैंने किये।

(१०) इंडियन प्रेस से परिचय

जब मैं फ़ाँसी में था तब वहाँ के तहसीली स्कूल के एक अध्यापक ने मुझे फ़ोर्स की एक पुस्तक दिखाई।

नाम था तृतीय रीडर। उसने उसमें बहुत-से दोष दिखाये। उस समय तक मेरी लिखी हुई कुछ समालोचनायें प्रकाशित हो चुकी थीं। इससे उस अध्यापक ने मुझसे उस रीडर की भी आलोचना लिख कर प्रकाशित करने का आग्रह किया। मैंने रीडर पढ़ी और अध्यापक महाशय की शिकायत को ठीक पाया। नतीजा यह हुआ कि उसकी समालोचना मैंने पुस्तकाकार में प्रकाशित की। इस रीडर का स्वत्वाधिकारी था, प्रयाग का इंडियन प्रेस। अतएव इस समालोचना की बदौलत इंडियन प्रेस से मेरा परिचय हो गया और कुछ समय बाद उसने “सरस्वती” पत्रिका का सम्पादन-कार्य मुझे दे डालने की इच्छा प्रकट की। मैंने उसे स्वीकार कर लिया। यह घटना रेल की नौकरी छोड़ने के एक साल पहले की है।

नौकरी छोड़ने पर मेरे मित्रों ने कई प्रकार से मेरी सहायता करने की इच्छा प्रकट की। किसी ने कहा—आओ, मैं तुम्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बनाऊँगा। किसी ने लिखा—मैं तुम्हारे साथ बैठकर संस्कृत पढ़ूँगा। किसी ने कहा—मैं तुम्हारे लिए एक छापाखाना खुलवा दूँगा—इत्यादि। पर मैंने सबको अपनी कृतज्ञता की सूचना दे दी और लिख दिया कि अभी मुझे आपके साहाय्यदान की विशेष आवश्यकता नहीं। मैंने सोचा—अव्यवस्थित-चित्त मनुष्य की सफलता में सदा सन्देह रहता है। क्यों न मैं अङ्गीकृत कार्य ही में अपनी सारी शक्ति लगा दूँ? प्रयत्न और परिश्रम की बड़ी महिमा है। अतएव “सब तज, हरि भज” की मसल को चरितार्थ करता हुआ, इंडियन प्रेस के प्रदत्त काम ही में मैं अपनी शक्ति खर्च करने लगा। हाँ, जो थोड़ा-बहुत अवकाश कभी मिलता तो उसमें अनुवाद आदि का कुछ काम और भी करता। समय की कमी के कारण मैं विशेष अध्ययन न कर सका। इसी से “सम्पत्ति-शास्त्र” नामक पुस्तक को छोड़कर और किसी अच्छे विषय पर मैं कोई नई पुस्तक न लिख सका।

(११) मेरी रसीली पुस्तकें

हरे ! हरे ! मैंने भूल की। और भी नई पुस्तकें मैंने ज़रूर लिखीं। उस समय तक मैंने जो कुछ लिखा

था उससे मुझे टकों की प्राप्ति तो कुछ हुई ही न थी। हाँ, ग्रन्थकार, लेखक, समालोचक और कवि की जो पदवियों में स्वयं अपने ऊपर लाद ली थीं उनसे मेरे गर्व की मात्रा में बहुत कुछ इजाफ़ा जरूर हो गया था। मेरे तत्कालीन मित्रों और सलाहकारों ने उसे पर्याप्त न समझा। उन्होंने कहा—अजी कोई ऐसी किताब लिखो जिससे टके सीधे हों। रुपये का लोभ चाहे जो करावे। मैं उनके चक्रमे में आगया। योरप और अमेरिका तक मैं प्रकाशित पुस्तकें मँगाकर पढ़ीं। संस्कृत-भाषा में प्राप्त सामग्री से भी लाभ उठाया। बहुत परिश्रम करके कोई दो सौ सफ़े की एक पुस्तक लिख डाली। नाम उसका रक्खा तरुणोपदेश। मित्रों ने उसे देखा। कहा, अच्छी तो है, पर इसमें काफ़ी सरसता नहीं। पुस्तक ऐसी होनी चाहिए जिसका नाम ही सुनकर और विज्ञापन-मात्र ही पढ़कर खरीदार पाठक उस पर इस तरह टूटें जिस तरह गुड़ नहीं, बहते हुए व्रण या गन्दगी पर मक्खियों के झुण्ड के झुण्ड टूटते हैं। कामकला लिखो, कामकिल्लोल लिखो, कन्दर्पदर्पण लिखो, रति-रहस्य लिखो, मनोज-मञ्जरी लिखो, अनङ्गरङ्ग लिखो। मैं सोच-विचार में पड़ गया। बहुत दिनों तक चिन्त दोलायमान रहा। अन्त में जीत मेरे मित्रों ही की रही। उनके प्रस्तावित नाम मुझे पसन्द न आये। मैं उनसे भी बाँस भर आगे बढ़ गया। कवि तो मैं था ही, मैंने चार चार चरणवाले लम्बे लम्बे छन्दों में एक पद्यात्मक पुस्तक लिख डाली—ऐसी पुस्तक जिसके ग्रंथके पथ से रस की नदी नहीं तो बरसाती नाला जरूर बह रहा था। नाम भी मैंने ऐसा चुना जैसा कि उस समय तक उस रस के अधिष्ठाता को भी न सूझा था। मैं तीस-चालीस साल पहले की बात कह रहा हूँ, आज-कल की नहीं। आज-कल तो वह नाम बाज़ारू हो रहा है—और अपने अलौकिक आकर्षण के कारण निर्धनों को धनी और धनियों को धनाधीश बना रहा है। अपने बूढ़े मुँह के भीतर धँसी हुई ज़बान से, आपके सामने, उस नाम का उल्लेख करते मुझे बड़ी लज्जा मालूम होगी। पर पापों का प्रायश्चित्त

करने के लिए, आप, पञ्चसमाजरूपी परमेश्वर, के सामने, शुद्ध हृदय से, उसका निर्देश करना ही पड़ेगा। अच्छा तो उसका नाम था या है—सोहागरात। उसमें क्या है, यह आप पर प्रकट करने की जरूरत नहीं, क्योंकि—

परेजितज्ञानफला हि बुद्धयः

मेरे मित्रों ने इस पिछली पुस्तक को बहुत पसन्द किया, उसे बहुत सरस पाया। अतएव उन्होंने मेरी पीठ खूब ठोंकी। मैंने भी अपना परिश्रम सफल समझा। अब लगा मैं हवाई किले बनाने। पुस्तक प्रकाशित होने पर उसे युक्तिपूर्वक बेचूँगा। मेरे घर रुपयों की वृष्टि होने लगेगी। शीघ्र ही मैं मोटर नहीं, तो एक विकटोरिया खरीद कर उस पर हवा खाने निकला करूँगा। देहात छोड़कर दशाश्वमेधघाट पर कोई तिमंजिला मकान बनवा कर या मोल लेकर वहाँ काशीवास करूँगा। कई कर्मचारी रखूँगा। अन्यथा हजारों वेल्यू-पेण्डिल कौन रवाना करेगा !

परन्तु अभागियों के सुखस्वप्न सच्चे नहीं निकलते। मेरे हवाई महल एक पल में ढह पड़े। मेरी पत्नी कुछ पढ़ी-लिखी थी। उससे छिपा कर ये दोनों पुस्तकें मैंने लिखी थीं। दुर्घटना कुछ ऐसी हुई कि उसने ये पुस्तकें देख लीं। देख ही नहीं, उलट-पलट कर उसने उन्हें पढ़ा भी। फिर क्या था, उसके शरीर में कराला काली का आवेश हो आया। उसने मुझ पर वचन-विन्यास-रूपी इतने कड़े कशाघात किये कि मैं तिलमिला उठा। उसने उन दोनों पुस्तकों की कापियों को आजन्म कारावास या कालेपानी की सज़ा दे दी। वे उसके सन्दूक में बन्द हो गईं। उसके मरने पर ही उनका छुटकारा उस दाय-मुल्हब्बस से हुआ। छूटने पर मैंने उन्हें एकान्त-सेवन की आज्ञा दे दी है। क्योंकि सती की आज्ञा का उल्लङ्घन करने की शक्ति मुझमें नहीं। इस तरह मेरी पत्नी ने तो मुझे साहित्य के उस पङ्क-पयोधि में डूबने से बचा लिया; आप भी मेरे उस दुष्कृत्य को क्षमा कर दें तो बड़ी कृपा हो। इसी से मैंने इस बहुत कुछ अप्रासङ्गिक विषय के उल्लेख की यहाँ, इस विद्वत्समाज में, जरूरत समझी।

(१२) सरस्वती के सम्पादन में मेरे आदर्श

सरस्वती के सम्पादन का भार उठाने पर मैंने अपने लिए कुछ आदर्श निश्चित किये । मैंने सङ्कल्प किया कि (१) वक्त की पाबन्दी करूँगा; (२) मालिकों का विश्वास-पात्र बनने की चेष्टा करूँगा; (३) अपने हानि-लाभ की परवा न करके पाठकों के हानि-लाभ का सदा खयाल रखूँगा और (४) न्याय-पथ से कभी न विचलित हूँगा । इसका पालन कहाँ तक मुझसे हो सका, संक्षेप में, सुन लीजिए—

१—सम्पादक जी बीमार हो गये; इस कारण “स्वर्ग-समाचार” दो हफ्ते बंद रहा । मैंनेजर महाशय के मामा परलोक-प्रस्थान कर गये; लाचार “विश्वविमोहिनी” पत्रिका देर से निकल रही है । “प्रलयङ्करी” पत्रिका के विधाता का फौटनपेन टूट गया । उसके मातम में १३ दिन काम बन्द रहा । इसी से पत्रिका के प्रकटन में विलम्ब हो गया । प्रेस की मैशीन नाराज़ हो गई । क्या किया जाता । “त्रिलोकमित्र” का यह श्रंक, इसी से, समय पर न छप सका । इस तरह की घोषणायें मेरी दृष्टि में बहुत पड़ चुकी थीं । मैंने कहा—मैं इन बातों का कायल नहीं । प्रेस की मैशीन टूट जाय तो उसका ज़िम्मेदार मैं नहीं । पर कापी समय पर न पहुँचे तो उसका ज़िम्मेदार मैं हूँ । मैंने अपनी इस ज़िम्मेदारी का निर्वाह जी-जान होमकर किया । चाहे पूरा का पूरा श्रंक मुझे ही क्यों न लिखना पड़ा हो, कापी समय पर ही मैंने भेजी । मैंने तो यहाँ तक किया कि कम से कम छः महीने आगे की सामग्री सदा अपने पास प्रस्तुत रखी । सोचा कि यदि मैं महीनों बीमार पड़ जाऊँ तो क्या हो ? सरस्वती का प्रकाशन तब तक बन्द रखना क्या ग्राहकों के साथ अन्याय करना न होगा ? अस्तु, मेरे कारण, सोलह सत्रह वर्षों के दीर्घ काल में, एक बार भी सरस्वती का प्रकाशन नहीं रुका । जब मैंने अपना काम छोड़ा तब भी मैंने नये सम्पादक को बहुत से बचे हुए लेख अर्पण किये । आप विश्वास कीजिए, उस समय के उपार्जित और अपने लिखे हुए कुछ लेख अब भी मेरे संग्रह में सुरक्षित हैं ।

२—मालिकों का विश्वासभाजन बनने की चेष्टा में मैं यहाँ तक सचेत रहा कि मेरे कारण उन्हें कभी उलझन

में पड़ने की नौबत नहीं आई । सरस्वती के जो उद्देश थे उनकी रक्षा मैंने दृढ़ता से की । एक दफे अलबत्ते मुझे इलाहाबाद के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के दँगले पर हाज़िर होना पड़ा । पर मैं भूल से तलब किया गया था । एक गैर कानूनी लाटरी का विज्ञापन सरस्वती में निकल गया था । उसी के सम्बन्ध में मैजिस्ट्रेट को चेतावनी देनी थी । वह और किसी को मिली । क्योंकि विज्ञापनों की छपाई से मेरा कोई सरोकार न था ।

मेरी सेवा से सरस्वती का प्रचार जैसे जैसे बढ़ता गया और मालिकों का मैं जैसे जैसे अधिकाधिक विश्वास-भाजन होता गया, वैसे ही वैसे मेरी सेवा का बदला भी मिलता गया और मेरी आर्थिक स्थिति प्रायः वैसी ही हो गई जैसी कि रेलवे की नौकरी छोड़ने के समय थी । इसमें मेरी कारगुजारी कम, दिवङ्गत बाबू चिन्तामणि घोष की उदारता ही अधिक कारणीभूत थी । उन्होंने मेरे सम्पादन-स्वातन्त्र्य में कभी बाधा नहीं डाली; वे मुझे अपना कुटुम्बी-सा समझते रहे; और उनके उत्तराधिकारी अब तक भी मुझे वैसा ही समझते हैं ।

३—इस समय तो कितनी ही महारानियाँ तक हिन्दी का गौरव बढ़ा रही हैं; पर उस समय एक-मात्र सरस्वती ही पत्रिकाओं की रानी नहीं; पाठकों की सेविका थी । तब उसमें कुछ छपाना या किसी के जीवन-चरित आदि प्रकाशन कराना ज़रा बड़ी बात समझी जाती थी । दशा ऐसी होने के कारण मुझे कभी-कभी बड़े-बड़े प्रलोभन दिये जाते थे । कोई कहता—मेरी मौसी का मरसिया छाप दो; मैं तुम्हें निहाल कर दूँगा । कोई लिखता—अमुक सभा में दी गई, अमुक सभापति की “स्पीच” छाप दो; मैं तुम्हारे गले में बनारसी डुपट्टा डाल दूँगा । कोई आज्ञा देता—मेरे प्रभु का सचित्र जीवन-चरित चिकाल दो तो तुम्हें एक बढ़िया घड़ी या पैरगाड़ी नज़र की जायगी । इन प्रलोभनों का विचार करके मैं अपने दुर्भाग्य को कोसता और कहता कि जब मेरे आकाश-महलों को खुद मेरी ही पत्नी ने गिराकर चूर कर दिया तब भला ये घड़ियाँ और गाड़ियाँ मैं कैसे हज़म कर सकूँगा । नतीजा यह होता कि मैं बहरा और गूँगा बन जाता और सरस्वती में वही मसाला

जाने देता जिससे मैं पाठको का लाभ समझता। मैं उनकी रुचि को सदैव खयाल रखता और यह देखता रहता कि मेरे किसी काम से उनको, सत्पथ से विचलित होने का साधन न प्राप्त हो। संशोधन-द्वारा लेखों की भाषा अधिक-संख्यक पाठकों की समझ में आने लायक कर देता। यह न देखता कि यह शब्द अरबी का है या फ़ारसी का, या तुर्की का। देखता सिर्फ़ यह कि इस शब्द, वाक्य या लेख का आशय अधिकांश पाठक समझ लेंगे या नहीं। अल्पज्ञ होकर भी किसी पर अपनी विद्वत्ता की झूठी छाप लगाने की कोशिश मैंने कभी नहीं की।

४—सरस्वती में प्रकाशित मेरे लघु लेखों (नोटों) और आलोचनाओं ही से सर्वसाधारण जन इस बात का पता लगा सकते हैं कि मैंने कहाँ तक न्याय-मार्ग का अवलम्बन किया है। जान-बूझ कर मैंने कभी अपनी आत्मा का हनन नहीं किया। न किसी के प्रसाद की प्राप्ति की आकांक्षा की, न किसी के कोप से विचलित ही हुआ। इस प्रान्त के कितने ही न्यायनिष्ठ सामाजिक सत्पुरुषों ने सरस्वती का जो “बायकाट” कर दिया था वह मेरे किस अपराध का सूचक था, इसका निर्णय सुधीजन ही कर सकते हैं।

(१३) उपसंहार

मैं जानता हूँ कि आत्म-कथा से सम्बन्ध रखनेवाली मेरी यह विवक्षिता, उपस्थित सज्जनों की विरक्ति और अरुचि का हेतु हो रही होगी। परन्तु मेरे इस प्रलाप की आवश्यकता का कारण है। मैं आपके इस आयोजन और अभिनन्दन का कहाँ तक पात्र हूँ, यह बात मेरे कृतपूर्व कथन से आपको अच्छी तरह ज्ञात हो गई होगी। मुझ तुच्छ ने किया ही क्या है। न बड़े मोल की कोई पुस्तक ही लिखी और न कोई और ही अभिनन्दनीय काम किया। जो कुछ किया, साफ़-साफ़ मैंने कह दिया। मेरे कृत कार्यों का सम्बन्ध केवल मेरी उदर-पूर्ति से रहा है। इस दशा में भी आप मुझे जो दाद दे रहे हैं वह एक-मात्र आपकी महत्ता और औदार्य का सूचक है। हिन्दी-भाषा के साहित्य की उन्नति और

देवनागरी-चरित्रों के प्रचार के लिए आज तक इस सभा ने जो प्रयत्न और व्यय किया है और उसे अपने इस काम में जो सफलता मिली है वह सर्वश्रुत है। मेरा यह अभिनन्दन, जो आज हो रहा है, उसी उद्योग का अन्तक है जो मातृभाषा की उन्नति के लिए वह कर रही है। मेरे हिन्दी-प्रेम की प्रवर्तक, बहुत अंशों में, स्वयं यह सभा ही है। मेरे सदृश आत्मम्भरि के सत्कार से मानो वह यह साबित कर रही है कि जिन्होंने अन्य कारणों से भी हिन्दी-भाषा को अपनाया उन्होंने भी किसी अंश तक सभा के उद्देश की सिद्धि कर दी। सज्जन और महाजन स्वभाव ही से उदार होते हैं। वे औरों के यत्किञ्चित् अथवा नगण्य कामों को भी बहुत अधिक महत्त्व दिया करते हैं। इसका उल्लेख मैं पहले भी कर चुका हूँ।

आपके आदर-सत्कार ने मेरे हृदय पर कृतज्ञता की इतनी गहरी छाप लगा दी है कि वह आमरण मिटने या धूमिल होने की नहीं। मैं तो चाहता हूँ कि अन्य संस्कारों के साथ वह जन्मान्तर में भी वैसी ही बनी रहे। मुझे तो उसने इतना मोह लिया है कि मेरा मन अब मुझे छोड़कर यहाँ रह जाना चाहता है। मैं अब बे-मन ही अपने घर लौटूँगा। पर आप सज्जनों का मन आप ही के पास, आप ही के कृष्ण में रहेगा। और स्मरण करना मन ही का धर्म है। अतएव हाथ जोड़कर मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे भूल न जाइएगा। यदा कदा मुझ दीन, अनात्मनीन, सुतदारादिहीन, और क्षीण प्राण का स्मरण कर लिया कीजिएगा, और यदि कष्ट न हो तो भूले-भटके, छड़े-छमासे, परमात्मा से मेरी कल्याण-कामना भी कर दिया कीजिएगा। मेरी इस प्रार्थना की स्वीकृति में मुँह से नहीं तो मन ही मन तो दया करके कह दीजिए— तथास्तु।

श्रेयः प्रयच्छतु परं सुविशुद्धवर्णा

पूर्णाभिलाषविबुधाधिपवन्दनीया।

पुण्या कविप्रवरवागिव बालचन्द्र-

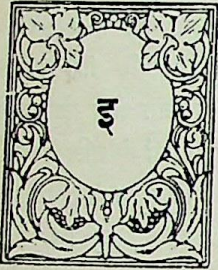
चूडामणेश्वरगणेशकृष्णवली वः ॥*

*अभिनन्दन-ग्रन्थ-प्रदानोत्सव के अवसर पर दिया गया भाषण।

यह पुस्तक विवरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED



आचार्य का अभिनन्दन



सी मई की दूसरी तारीख को काशीजी में और ४ थी, ५ वीं तथा ६ ठी को प्रयागराज में आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी का सार्वजनिक रूप से अभिनन्दन किया जायगा।

उनका यह अभिनन्दन उनके

सत्तरवें वर्ष में प्रवेश करने के उपलक्ष्य में किया गया है और ऐसा करके हिन्दी के प्रेमियों और विद्वानों ने आचार्य द्विवेदी जी की आड़ में राष्ट्र-भाषा हिन्दी की गौरव-वृद्धि ही नहीं की है, किन्तु उन्होंने अपने इस महत्त्वपूर्ण कार्य से यह घोषित किया है कि हिन्दी अब अपने पैरों खड़ी हो गई है और उसे भारत की राष्ट्र-भाषा होने का आत्म-बोध हो गया है। इस प्रकार हिन्दी के क्षेत्र का यह पहला नूतन भव्य आयोजन सब प्रकार से सार्थक हुआ है।

द्विवेदी जी के इस सार्वजनिक सम्मान से 'सरस्वती' का माथा ऊँचा हुआ है, क्योंकि उनके इस गौरव के प्राप्त करने का साधन स्वयं उनकी यह 'सरस्वती' ही रही है। अतएव इस अवसर पर वह अपना जीवन सार्थक समझती है।

आचार्य द्विवेदी जी का जन्म रायबरेली जिले के दौलतपुर नाम के एक गाँव में सन् १८६४ में हुआ था। इनके पिता मध्य-श्रेणी के सद्गृहस्थ ब्राह्मण थे। वे कान्यकुब्ज द्विवेदी थे।

द्विवेदी जी की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। गाँव के मदरसे में उन्होंने हिन्दी-उर्दू पढ़ी। इसके सिवा

६२८

कुछ संस्कृत भी सीखी। जब १३ वें वर्ष में प्रवेश किया तब वे अँगरेजी पढ़ने को रायबरेली भेजे गये। परन्तु रायबरेली के दूर होने से वे उन्नाव-जिले के पुरवा के स्कूल में लाये गये। पर यह स्कूल शीघ्र ही टूट गया। तब वे फतेहपुर और वहाँ से उन्नाव गये। उनकी पढ़ाई की प्रारम्भ में ऐसी ही अव्यवस्था रही। अतएव उन्होंने पढ़ना छोड़ कर सन् १८८२ में रेलवे में नौकरी कर ली। परन्तु साल भर बाद इसे भी छोड़ कर वे अपने पिता के पास बम्बई चले गये। उनके पिता जी बम्बई में नौकर थे। वहाँ वे अँगरेजी और संस्कृत पढ़ने लगे। परन्तु कुछ ही दिनों में फिर पढ़ना छोड़कर उन्होंने रेलवे में नौकरी कर ली।

द्विवेदी जी स्वभाव से ही प्रतिभाशाली और महत्त्वा-कांक्षी थे। रेलवे की नौकरी में उन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा का पूरा परिचय दिया। उसके भिन्न भिन्न सीगों में नौकरी की और सभी जगह अपनी योग्यता से बाजी मारते गये। यही नहीं, उन्होंने तार भेजने की पद्धति में एक नया आविष्कार भी किया, जो रेलवे में जारी किया गया। अपनी कारगुजारियों से उन्होंने बराबर पदोन्नति ही नहीं की, किन्तु यश का भी अर्जन किया। अन्त में बम्बई की अधिक ऊँचे पद पर पहुँचानेवाली नौकरी पर न जाकर स्वेच्छा से भाँसी के ट्रैफिक सुपरिटेण्डेंट के दफ्तर में चीफ क्लर्क की जगह स्वीकार कर ली।

द्विवेदी जी को पढ़ने-लिखने का प्रारम्भ से ही शौक था। उनका जन्म ही राजगुरुओं और कवियों के ग्राम में हुआ था और उसका संस्कार उन पर पूरा पड़ा था। रेलवे की नौकरी में उनका अध्ययन बराबर जारी रहा, साथ ही हिन्दी में कविता-रचना भी करते रहे। धीरे धीरे वे

सामयिक पत्रों में भी लिखने लगे। अपनी सुन्दर कविताओं और महत्त्वपूर्ण लेखों से वे शीघ्र ही हिन्दी के श्रेष्ठ लेखकों में परिणत हो गये। यहाँ तक इंडियन-प्रेस के स्वामी बाबू चिन्तामणि घोष ने उनको सरस्वती का सम्पादक मनोनीत किया।

सन् १९०४ की जनवरी में सरस्वती का सम्पादनभार उन्होंने ग्रहण किया। इसके कोई साल भर बाद उन्होंने विशेष कारणवश अपनी २० वर्ष की नौकरी छोड़ दी और हिन्दी के क्षेत्र में दिल खोलकर काम करने को स्वतन्त्र हो गये। उन्होंने अठारह वर्ष तक सरस्वती का सम्पादन किया। अपने सम्पादन-काल में सरस्वती का उत्कृष्ट ढंग से सम्पादन कर हिन्दी में सम्पादन-कला का आदर्श उपस्थित किया और अपनी रचना-शैली से हिन्दी की अनस्थिरता को दूर कर उसको परिष्कृत रूप प्रदान किया। यही नहीं, अपने उदार सहयोग से अनेक युवकों को सुलेखक बनाकर हिन्दी के सेवकों की महत्त्वपूर्ण संख्या-वृद्धि की। अहर्निश के सतत परिश्रम से उनके स्वास्थ्य ने जवाब दे दिया। अन्त में अस्वस्थ रहने के कारण सन् १९२० में उन्होंने सरस्वती का सम्पादन-कार्य छोड़ दिया। परन्तु प्रकट और अप्रकट नाम से वे पत्रों में विशेष कर सरस्वती में सन् १९२८ तक बराबर लिखते रहे। फल-स्वरूप सन् १९२९ में वे साङ्घातिक रूप से बीमार पड़ गये। नीरोग होने पर डाक्टरों की सलाह से तथा अपनी निर्बलता से भी उन्हें लिखना-पढ़ना एक-दम छोड़ देना पड़ा। अब वे अपनी कलम रखकर ग्राम्य-जीवन के सुख का उपभोग तथा भगवद्भजन कर रहे हैं।

आचार्य द्विवेदी जी के जीवन का यह संक्षिप्त परिचय उनके इस अभिनन्दन के समय हम हिन्दी के नवयुवकों के लिए उत्साहप्रद और आदर्श दोनों है। भगवान् करे, वे दीर्घजीवी हों और इस प्रकार हम हिन्दीवालों में चिर काल तक नवजीवन की स्फूर्ति प्रदान करते रहें।

स्त्री-कवि-सम्मेलन

प्रयाग का महिला-विद्यापीठ एक उदीयमान हिन्दी-शिक्षा-संस्था है। यह स्त्रियों को अपने पीठ में शिक्षा-दान करती है, साथ ही स्त्रियों की परीक्षाएँ लेकर उनको तदनुसार सनद भी देती है। यह राष्ट्रभाषा की एक सजीव संस्था स्त्रियों में हिन्दी की शिक्षा का खासा प्रचार कर रही है। इसी अग्रेल में इसने स्त्री-कवियों के एक सम्मेलन का आयोजन किया था। यह आयोजन हिन्दी के क्षेत्र में बिल्कुल अभिनव था। प्रसन्नता की बात है कि इसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। इसके लिए विद्यापीठ के कार्यकर्ता बधाई के पात्र हैं।

इस कवि-सम्मेलन में चालीस स्त्री-कवियों ने भाग लिया था। इसका कार्य-सम्पादन श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के सभापतित्व में हुआ था। स्त्री-कवियों ने अपनी रचनाएँ सुनाईं, जिनमें कई एक को उनकी सुन्दर रचनाओं के लिए मेडल दिये गये। श्रीमती तोरनदेवी लली (लखनऊ), श्रीमती विष्णुकुमारी देवी (कानपुर) और श्री राजकुमारी (झाँसी) की रचनाओं की विशेष रूप से प्रशंसा की गई।

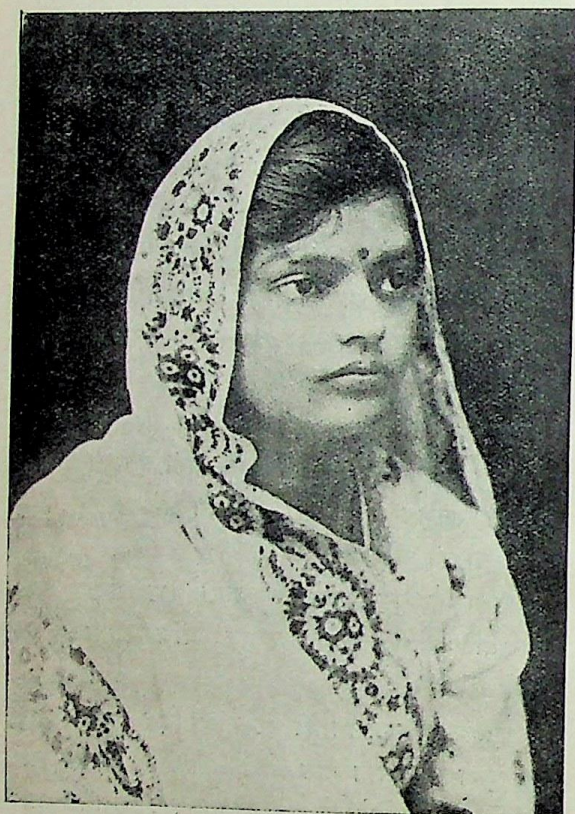
आशा है, यह सम्मेलन स्थायी रूप ग्रहण करेगा और भविष्य में इसका प्रभाव अधिक व्यापक रूप धारण करेगा।

इस कवि-सम्मेलन की बैठकें दो दिन हुईं। दूसरे दिन पुरुष भी आमन्त्रित किये गये थे। इसके साथ ही यदि पुरुष-कवियों से भी कविता-पाठ कराया जाता तो एक लाभ यह होता कि कविता पढ़ने के सम्बन्ध में स्त्रियों की जानकारी कुछ और भी बढ़ती। खैर।

सभापत्री महोदया श्रीमती चौहान ने अपने भाषण में यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि कविता के मैदान में स्त्रियाँ पुरुषों से बहुत आगे जा सकती हैं, क्योंकि उनकी शरीर-रचना और मन पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक परिष्कृत हैं और उनमें पुरुषों की अपेक्षा भावुकता भी अधिक होती है। हम चाहते हैं कि महिलाएँ अपने

इस अपूर्व गुण का परिचय दें। साहित्य में उनकी जितनी ही उन्नति होगी, देश और राष्ट्र की उन्नति में उतनी ही अधिक सहायता मिलेगी।

इस कवि-सम्मेलन में कई एक उपयोगी प्रस्ताव भी पास किये गये हैं और रानी-महारानियों से तथा अन्य धनी-मानी व्यक्तियों से प्रार्थना की गई है कि वे महिला-कवि-सम्मेलन करायें और महिलाओं को पुरस्कार आदि



[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

द। यह बात हमारी समझ में नहीं आई। कवि-सम्मेलनों का आदर्श बदल रहा है। कवि-सम्मेलन अब जनता या उसकी संस्थाओं की ओर से होते हैं—व्यक्तियों की ओर से नहीं। इसलिए इस बात की अपील जनता से होनी चाहिए, व्यक्तियों से नहीं। किसी समय में राजे-महाराजे बेशक कवियों को अपने दरबार में रखते थे और उनकी सब प्रकार सहायता भी

करते थे। पर अब राजाओं से कवियों को बहुत कम प्रोत्साहन मिलता है और कवि भी ऐसा आश्रय नहीं पसन्द करते। रानियाँ बेचारी पराधीन और पर्दे में बन्द हैं। वे कवि-सम्मेलन कहाँ और कैसे करायेंगी, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। इसलिए रानी-महारानी आदि का भरोसा छोड़कर यदि हमारी ये कवि-बहनें अपनी निज की एक संस्था इस कार्य के लिए बना लें तो अपनी जाति और साहित्य की कहीं अधिक सेवा कर सकती हैं। आर्थिक सहायता की अपील वे सबसे कर सकती हैं, पर दूसरों का आश्रय खोजने की अपेक्षा वे स्वावलम्बी बनें तो अधिक उत्तम होगा।

जैन-साधु-सम्मेलन

अप्रैल के महीने में श्रीयुत ब्रह्मदत्त सोडा अपने १६-२-३३ के एक पत्र में लिखते हैं—

अजमेर में स्थानकवासी जैन साधुओं का जो सम्मेलन प्रारम्भ हुआ था वह अभी हो रहा है। सभाओं और सम्मेलनों की दृष्टि से यह साधुसम्मेलन अभूतपूर्व है। भारत में १०-१२ लाख जैन हैं। उनमें आधे से अधिक दिगम्बर-आग्नाय के हैं, उससे कम श्वेताम्बर-आग्नाय के मूर्ति-पूजक हैं। इस प्रकार अनुमान है कि स्थानकवासी जैनियों की संख्या ४ लाख होगी। इन चार लाख जैनियों में से लगभग ५० हजार के इन दिनों अजमेर में हैं। इन ४ लाख जैनियों के २२ सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं। और इन दिनों तो ३२ के लगभग उनके सम्प्रदाय हो गये हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय का एक वा अधिक श्री पूज्य होते हैं। बाकी दीक्षा लेकर साधु व आर्यका बन जाते हैं। वे श्री पूज्य के शिष्यमंडल में सम्मिलित होते हैं। इन स्थानकवासी उपाश्रयसेवियों के आचार, आहार आदि के नियम बहुत ही कड़े हैं। ये सवारी आदि का उपयोग नहीं करते, संग्रह करना इनको वर्जित है, चौके का अवशिष्ट अन्न ही इनका भोजन है।

इस समय लगभग २५० मुनि अजमेर में हैं। इनका नियम है कि एक सम्प्रदाय का साधु दूसरे सम्प्रदाय के साधु से वार्तालाप न करे। यहाँ तक भी होता है कि जिस ग्राम में किसी स्थानकवासी सम्प्रदाय का कोई साधु ठहरा होता है, वहाँ दूसरे स्थानकवासी सम्प्रदाय का साधु नहीं ठहरता। इतना पृथक्करण होते हुए भी इस अवसर के लिए यह नियम शिथिल कर दिया गया है और आज १५ दिन से यहाँ इनका सम्मेलन हो रहा है। और यह हो रहा है इस निमित्त कि स्थानकवासी जैन-आम्नाय में समयप्रवाह को देखते हुए क्या संशोधन होने चाहिए। लगभग ४५ श्री पूज्य इस सम्मेलन में भाग ले रहे हैं। परन्तु एक भी बात अभी तक प्रकट नहीं हुई है। स्वयम् श्री पूज्य ही उसे प्रकट करेंगे। वर्तमान समय में मंत्रणा का इतना गुस्सा रहना वह भी परस्पर-विरोधी ४५ व्यक्तियों में, एक अभूतपूर्व घटना है।

हर्ष की बात है कि यह अपूर्व समारोह सफलतापूर्वक समाप्त हो गया।

स्वर्गीय जाम साहब

नवानगर (काठियावाड़) के हिज़ हाइनेस सर महाराज रणजीतसिंह के निधन से भारतवर्ष के एक योग्य शासक की कमी हो गई है। इसमें सन्देह नहीं कि राजभक्ति के कारण स्वर्गीय जाम साहब भारत के लोकमत को अपने पक्ष में कभी नहीं ला सके, तथापि आप में आदर्श शासक के बहुत-से गुण थे।

योरुपीय महायुद्ध के दिनों में आपने ब्रिटेन की मुक्तहस्त होकर सहायता की थी। आपने अपनी सारी शक्ति ब्रिटेन के हवाले कर दी थी और अपना खज़ाना खोल दिया था। झाड़वरो के सहित चौदह मोटर और एक 'अम्बुलेंस कार' और कितने ही घोड़े और ऊँट अँगरेज़-सरकार को दिये थे। लंदन की अपनी विशाल कोठी को युद्ध के घायलों का अस्पताल बना दिया था और उसमें घायलों की चिकित्सा का उत्तम प्रबन्ध किया गया था। स्वयं जाम साहब भी वालंटियर

बने थे। अँगरेज़-सरकार ने भी आपको के० सी० एस० आई० की उपाधि देकर आपका सम्मान किया।

परन्तु इससे यह अनुमान करना कि आपमें ब्रिटेन की भक्ति के सिवा और कुछ न था, आप के साथ अन्याय करना होगा। आपको अपनी प्रजा की भलाई का बड़ा ध्यान था और अपने राज्य के निवासियों की आर्थिक स्थिति को उत्तम बनाने की बात आप सदैव सोचा करते थे।



[स्वर्गीय महाराज रणजीतसिंह विभाजी, जी० सी० एस० आई०]

राज्य का शासन-सूत्र आपके हाथ में १९०७ में आया था। यदि राज्य की उस समय की अवस्था से वर्तमान अवस्था की तुलना की जाय तो आकाश-पाताल का अन्तर मिलेगा। आप अपने राज्य और उसके निवासियों को सब प्रकार से सम्पन्न बनाने में बराबर लगे रहे।

प्रायः सभी रियासतों में किसानों की अवस्था सोचनीय है। नवानगर इसका अपवाद नहीं है। पर अपने राज्य के किसानों की अवस्था सुधारने के लिए जाम साहब ने बड़े बड़े उपाय किये। सिंचाई के लिए प्रत्येक कुआँ खोदनेवाले को १२५ सहायता देकर इस कार्य को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया गया। १९०७ में जहाँ राज्य में केवल ६,५८१ कुएँ थे, वहाँ अब उनकी संख्या बढ़कर १६,००० हो गई है। इस कार्य में आपने लगभग सत्ताईस लाख रुपया व्यय किया है। सिंचाई के लिए गंगा-सागर नाम का एक बड़ा भारी तालाब भी आपने बनवाना आरम्भ किया था। पूरा होने पर काठियावाड़ में यह सबसे बड़ा तालाब होगा। राज्य के अन्दर व्यापार की उन्नति में सुविधा प्रदान करने के लिए पक्की सड़कें भी बनवाई गईं। सन् १९०७ में केवल २१ मील पक्की सड़क थी। अब २६१ मील पक्की सड़क है। पक्की सड़कें ही नहीं, रेलवे भी खोली गई। और इस ओर लगभग ६० लाख रुपया राज्य की ओर से व्यय किया गया। विदेशों के साथ व्यापार करने के लिए एक अच्छा बन्दरगाह भी बनवाया गया, जहाँ योरप और जापान आदि के अनेक बन्दरों से १२,००० टन तक के जहाज़ बराबर आते-जाते रहते हैं। राज्य के बन्दरगाहों की उन्नति में भी लगभग १८ लाख रुपये व्यय किये गये। राजधानी को आधुनिक नगर का रूप देने की ओर भी लाखों रुपये व्यय किये गये। इसके साथ ही राज्य की आय भी बढ़ाई गई है। परन्तु यह सब करने में इसका ध्यान रखा गया है कि कोई कर बढ़ाया न जाय, बल्कि आय के नये नये मार्ग निकाले जायँ। विदेशों से आनेवाले माल पर जितनी चुङ्गी लगती है उसकी सारी आय अंगरेज़-सरकार ले लेती है और रियासतों को कुछ नहीं मिलता। इस सम्बन्ध में जब देशी राज्यों की ओर से आन्दोलन

आरम्भ हुआ तब जाम साहब ने उसमें प्रमुख भाग लिया था।

राज-काज में इतनी तत्परता से लगे रहने पर भी आप खेल और व्यायाम आदि के बड़े प्रेमी थे। क्रिकेट खेलने में तो आपने अपनी विद्यार्थी-अवस्था में ही जब आप लन्दन के ट्रिनिटी कालेज में पढ़ते थे, बड़ा नाम पैदा कर लिया था और आप संसार-प्रसिद्ध क्रिकेट के खिलाड़ी माने जाते थे।

आपके जीवन के सभी पहलुओं पर ध्यान देने से यह मानना पड़ेगा कि आप एक अत्यन्त योग्य और अनुभवी शासक थे।

चित्र-परिचय

मेधाभिवादन—इस चित्र में 'सरस्वती' के सुयोग्य चित्रकार श्रीयुत रामगोपाल विजयवर्गीय ने कवि कालिदास के मेघदूत नामक लोकप्रिय काव्य में वर्णित विरही यक्ष की उस समय की अवस्था का चित्र अंकित किया है जब उसने अपना धैर्य खो देने के कारण हत-बुद्धि होकर आपाढ़ के प्रथम बादलों से अपने प्रेम का सन्देश ले जाने की प्रार्थना की थी। बादलों को प्रसन्न करने के लिए वह नव पुष्पों से उनका अभिवादन भी कर रहा है।

नन्द-परिवार—यह चित्र भी श्रीयुत रामगोपाल विजयवर्गीय का बनाया हुआ है। इसमें उन्होंने कृष्ण जी की बाल-लीला और उनके प्रति नन्द-यशोदा आदि के वात्सल्य-भाव को दिखलाने का प्रयत्न किया है।

भूल-सुधार

पृष्ठ ६१६ के 'लेख-सूचक' की २ री पंक्ति में पाठक '७० वीं' के स्थान में '६६ वीं' पढ़ें।

कविविनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य

आविष्कारक अमृतधारा द्वारा निर्मित

सौन्दर्य-सम्बन्धी कुछ ओषधियाँ

चित्तमोहनी—(रजिस्टर्ड) इस उषटन को स्नान के समय मलने से चेहरे के कील झाड़्याँ इत्यादि दूर हो जाती हैं। चेहरे की कान्ति दिन प्रति दिन निखरती जाती है। (मूल्य १), नमूना १)

दिलसुन्दरी—(रजिस्टर्ड) इस तैल को स्नान के बाद मलते हैं। जो चेहरे को चमकाता है और दाग व कील आदि को दूर करता है। स्नान के पहले चित्तमोहनी और स्नान के बाद दिलसुन्दरी लगावें तो फिर क्या कहना है। (मूल्य १), नमूना १)

बागफूल तैल—(रजिस्टर्ड) यह बालों के समस्त तैलों का राजा है। बालों को नर्म और मुलायम बनाता है और बढ़ाता है, सिर को ठण्डा रखता है। केवल सुगन्धित ही नहीं मस्तिष्क के लिए भी गुणकारी है। (मूल्य १)

बाल उड़ाने की अद्वितीय ओषधि—इस दवाई को पानी में घोल कर लगाने से एक मिनट के अन्दर कोमल से कोमल स्थान के बाल साफ हो जाते हैं। जिसने मँगवाया उसी ने गुण गाया। (मूल्य १), नमूना २)।

पान का मसाला—पान खानेवालों को साफ पान नहीं मिलता बड़ा कष्ट होता है, इस वास्ते यह मसाला बनाया गया है। एक चुटकी पान पर रख लीजिए पान तैयार है। वैसा ही रंग और स्वाद आवेगा। इसके उपरान्त मुख की दुर्गन्धि को दूर करता है कफ व रतूबत को सुखा देता है। (मूल्य १), नमूना २)।

पत्रव्यवहार करने का पता—अमृतधारा ११, लाहौर।

विज्ञापक—मैनेजर अमृतधारा औषधालय, अमृतधारा भवन, अमृतधारा रोड, अमृतधारा डाकखाना, लाहौर

बालकों के लिए एक अनेखी पुस्तक

नया खिलौना

(श्रीयुत शालिग्राम वर्मा, एम० ए०, बी० एस-सी)

यह बालकों के मनोरञ्जन की एक नई और बढ़िया किताब है। इसकी भाषा जैसी सरल है, वैसी ही मनोरञ्जक भी है। हर एक पाठ में रङ्ग-विरङ्गी तस्वीरें हैं। रेलगाड़ी के फफ फफ का पाठ पढ़ते वक्त ऐसा लगता है, मानों हम सचमुच उस पर बैठ कर सैर कर रहे हैं। मीठे आम का पाठ पढ़ते ही, मुँह में उसका रस घुलने लगता है। हर एक पाठ के बारे में यही बात है। बच्चों के हाथ में पुस्तक आते ही वे हँसेंगे, पढ़ेंगे और उसका स्वाद लेंगे। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सारी पुस्तक में प्रायः एक भी संयुक्त अक्षर नहीं आया। इस सचित्र और रङ्ग-विरङ्गी स्थाही से छपी पुस्तक का मूल्य केवल छः आने है।



मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शरद - ग्रन्थावली का नया उपन्यास



इसमें एक हिन्दू के संयुक्त परिवार का चित्रण बड़े मनोरञ्जक ढङ्ग से किया गया है। एक निठल्ले और बेरोजगार भाई की सहायता उपार्जनशील भाई को किस तरह करनी चाहिए यह बात इस उपन्यास से भली भाँति सीखी जा सकती है। मूल्य १) एक रुपया। स्थायी ग्राहकों से ।।।। बारह आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

डाक्टर मंगलदेव शास्त्री की तीन पुस्तकें

संस्कृत में निबन्ध-रचना का अपूर्व ग्रन्थ

प्रबन्ध-प्रकाशः

(लेखक डाक्टर मङ्गलदेव शास्त्री,
एम० ए०, डी० फिल)

इस पुस्तक के प्रारम्भ में, एक बड़े प्रकरण में सरल संस्कृत-भाषा में प्रबन्ध-रचना-सम्बन्धी सब नियमों आदि का विशेष वर्णन किया गया है। उसके पश्चात्, उदाहरणरूप से सुप्रसिद्ध प्राचीन तथा आधुनिक विद्वानों के, तथा स्वयं ग्रन्थकार के भी लिखे हुए धर्म, धैर्य, उद्योग, मितव्ययता आदि कई परीक्षोपयोगी विषयों पर निबन्ध दिये गये हैं। पुस्तक के अन्त में चार प्रकरणों में गद्य-पद्यमय सुभाषित तथा लोकन्याय भी दिये गये हैं, जो निबन्ध-रचना के लिए बहुत उपयोगी हैं। मूल्य केवल १) रुपया।

नई पुस्तक !

भाषा-विज्ञान

अर्थात्

तुलनात्मक भाषा-शास्त्र

(डाक्टर मङ्गलदेव शास्त्री, एम० ए०,
डी० फिल-लिखित)

हिन्दी में यही एक ऐसी पुस्तक है जिसमें वैज्ञानिक ढङ्ग से संस्कृत, हिन्दी, फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी, जर्मनी, चीनी और तुर्की आदि भाषाओं के स्वरूप और सम्बन्ध का वर्णन है। जर्मन, अँगरेज़ी आदि भाषाओं में लिखी गई पुस्तकों के आधार पर भारतीय विद्यार्थियों की आवश्यकता की दृष्टि से, इसकी रचना की गई है।

इसमें आधुनिक भाषाविज्ञान के साथ-साथ प्राचीन शिक्षा, व्याकरण और निरुक्त के अनेक दुरूह सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण है। हिन्दी और संस्कृत के, उच्च कक्षाओं के, विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की पुस्तक है। प्रख्यात विद्वानों और प्रतिष्ठित पत्रों ने इसकी प्रशंसा की है। पृष्ठ-संख्या पौने चार सौ के लगभग। मूल्य २॥=) दो रुपये दस आने।

नई पुस्तक !!

श्रीशौनकीयम्

ऋग्वेदप्रातिशाख्यम्

(उवटकृत भाष्यसहितम्)

सम्पादक—

डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम० ए०, डी० फिल०

वेद के विद्यार्थियों के लिए प्रातिशाख्य का पढ़ना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि प्रातिशाख्य की सहायता से ही वेद में आये हुए वर्णों, स्वरों, पदों तथा संयुक्ताक्षर आदि के स्थान और उच्चारण आदि का ज्ञान होता है। शास्त्रीजी ने यह पुस्तक योरप तथा भारत के सुप्रसिद्ध पुस्तकालयों में प्राप्त जीर्णातिजीर्ण पुस्तकों की आलोचना करके तथा उनकी सहायता से पाठ शुद्ध करके यह पुस्तक तैयार की है। इसमें सूत्र-रूप में प्रातिशाख्य का मूल तथा उवटकृत भाष्य प्रकाशित किया गया है और साथ ही विष्णुमित्रकृत वर्णद्वयावृत्ति भी दी गई है। प्रत्येक पृष्ठ के नीचे टिप्पणी भी दी गई है, जो विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। मूल्य ६॥) साढ़े छः रुपये।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

केवल सात रुपये में

फोटोग्राफी

अर्थात्

घर बैठे फोटोग्राफ़र बनने का सबसे
आसान तरीका

फोटो खींचने के लिए जिन-जिन बातों का जानना ज़रूरी है, उन सबका इस पुस्तक में समावेश किया गया है और स्थान-स्थान पर चित्र देकर एक-एक बात को ऐसे विस्तार के साथ समझाया है कि शिष्याओं के हृदय में शंका का लेश तक नहीं रह जाता। भारतीय भाषाओं में यह पुस्तक अपने विषय की बेजोड़ तो है ही साथ ही अंगरेज़ों तथा अन्यान्य उन्नत भाषाओं में भी इसके टकर की बिरली ही पुस्तकें मिलेंगी।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

शीघ्रता कीजिए

थोड़ी सी प्रतियाँ और हैं

कुमारसम्भव

(आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी)

संसार के साहित्य में महाकवि कालिदास का स्थान कितना उच्च है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। संसार के सभी देशों में उनके ग्रन्थों का समान रूप से आदर है और सभी उन्नत भाषाओं में उनके एक नहीं बल्कि दर्जनों अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। यह पुस्तक उन्हीं महाकवि के प्रसिद्ध ग्रन्थ का अनुवाद है। अनुवाद भी ऐसी रौचक तथा सजीव भाषा में किया गया है कि पढ़ते-पढ़ते मूल ग्रन्थ का-सा आनन्द आ जाता है। तारीफ़ यह कि कवि के मौलिक भावों में कहीं ज़रा भी शिथिलता नहीं आने पाई। मूल्य १) एक रुपया।

आचार्य द्विवेदीजी-कृत जीवन-चरित-सम्बन्धी दो पुस्तकें

विदेशी विद्वान्

आचार्य द्विवेदीजी ने इस पुस्तक में कोपनिकस, गैलीलियो, न्यूटन, हर्बर्ट स्पेंसर, तथा अलबरूनी आदि कई ऐसे विदेशी विद्वानों के चरितों का सङ्कलन किया है, जिन्होंने अपनी विद्या-बुद्धि की बड़ौलत सारे संसार में धाक जमा ली है और संसार के ज्ञान-भाण्डार में जो अच्युत और अमूल्य निधि छोड़ गये हैं, वह सदा स्थायी रहेगी। ऐसे महान् व्यक्तियों के चरितों का अनुशीलन करने से मनुष्य को बड़ी शिक्षा मिलती है और उन्नति की ओर अग्रसर होने के लिए वह उत्साहित होता है। मूल्य केवल १) एक रुपया।

चरित-चर्या

इस पुस्तक में आचार्य द्विवेदीजी ने जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करनेवाले बारह महान् पुरुषों की जीवनियाँ लिख कर संग्रह किया है। जिन-जिन महानुभावों के चरित इसमें प्रकाशित हुए हैं, वे सभी वर्तमान युग के हैं और सभी के जीवन तरह-तरह की शिक्षाओं से पूर्ण हैं। लेखक का नाम ही पुस्तक की उत्तमता का प्रमाण है। मूल्य केवल ॥=) चौदह आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्त प्रान्त, प्रयाग की पुस्तकें

- (१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ़अली, एम० ए०, एल्-एल० एम० । उर्दू या हिन्दी संस्करण, मूल्य १।) रु० ।
- (२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक रायबहादुर महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओम्का । मूल्य ३) रु०
- (३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट्, मू० १।) रु०
- (४) अरब और भारत के सम्बन्ध—लेखक, मौलाना सय्यद सुलैमान साहब नदवी; उर्दू या हिन्दी-संस्करण, मू० ४) रु०
- (५) चर्म बनाने के सिद्धान्त—लेखक बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस-सी० सचित्र, आयवरी फ़िनिस पेपर, कपड़े की जिल्द, रायल साइज़ के ३०४ पृष्ठ, मूल्य ३) रु०
- (६) हिन्दी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०, मूल्य १।) रु०
- (७) अयोध्या का इतिहास—लेखक रायबहादुर लाला सीताराम बी० ए०, मूल्य १।) रु०
- (८) चन्द्रगुप्त—(सचित्र) लेखक प्रो० गङ्गाप्रसाद मेहता एम० ए०, मूल्य २।) रु०

जॉन गॉल्सवर्दी के नाटकों का हिन्दी-अनुवाद

(१) हड़ताल २) रु०, (२) न्याय २।) रु०, (३) धोखा-धड़ी १।।) रु०

और (४) चाँदी की डिविया १।) रु०

नातन—प्रसिद्ध जर्मन नाटककार गॉल्ड होल्ड इफ़राइम लेसिंग के नातन दरवाइजे का हिन्दी तथा उर्दू अनुवाद २।) रु०

जन्तु-जगत्—पृथिवी के स्तनपोषित प्राणियों का वैज्ञानिक वर्णन ६।) रु०

सौर-परिवार—सूर्य तथा उसके चारों ओर परिक्रमा करनेवाले नक्षत्रों का रोचक वर्णन १२) रु०

हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता—मूल्य ६) रु०

सतसई सप्तक—मूल्य ६) रु०

गोस्वामी तुलसीदास—मूल्य ३) रु०

बेलि क्रिसन रुक्मणी री राठौड़राज पृथीराज री कही—मूल्य ६) रु०

घाघ और भड्डरी—मूल्य ३) रु०

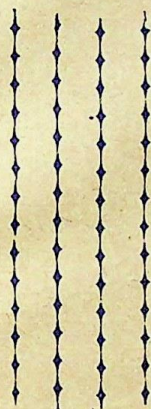
मिलने का पता:—

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

भू-प्रदर्शिका

मूल-लेखक

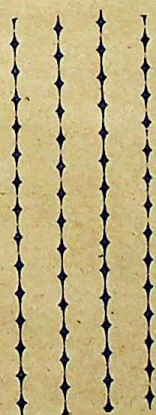
श्रीयुत चन्द्रशेखर सेन बैरिस्टर



अनुवादक

हिन्दी के यशस्वी लेखक

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय



यह पुस्तक कई वर्ष के कठिन परिश्रम से तैयार की गई है। लेखक महोदय ने जो कुछ लिखा है, स्वयं उसका अनुभव किया है, और जिस स्थान या वस्तु का वर्णन किया है, स्वयं उसे देखा है। इसके पन्ने उलटते ही धन-धान्य तथा व्यापार-व्यवसाय के केन्द्र विशाल नगरों के दृश्य आँखों के सामने नाचने लगते हैं। भिन्न भिन्न देशों के निवासियों की रहन-सहन, उनका स्वभाव तथा वहाँ की प्राकृतिक अवस्था का सजीव चित्र 'भू-प्रदर्शिका' की सहायता से आप घर बैठे देख सकते हैं।

यदि देश-विदेश की बातें पढ़कर व्यवहार-कुशलता और चतुरता प्राप्त करनी हो तो इस अमूल्य पुस्तक को मँगाकर अवश्य पढ़िए और थोड़े व्यय में अपूर्व मनोरञ्जन तथा साथ ही साथ ज्ञान-सञ्चय भी कीजिए।

पृष्ठ-संख्या ७८०, चित्र-संख्या ३७, मनोरम जिल्द, मूल्य केवल ५५ पाँच रुपये।

मैनेजर (बुकडिपो),

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

उपन्यास-सम्राट् श्रीयुत प्रेमचन्दजी के ॐ ॐ ॐ ॐ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ उत्तमोत्तम उपन्यास और कहानियाँ

प्रेमचन्द की रचनाओं का देश में कितना सम्मान है, वह इसी से प्रकट है कि उनकी प्रायः सभी पुस्तकें, उर्दू, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में अनूदित हो गई हैं। उनके उपन्यास साहित्य के स्थायी ग्रन्थ हैं और इस योग्य हैं कि उनका संग्रह किया जाय।

कर्मभूमि मूल्य ३) सुन्दर जिल्द।

प्रतिज्ञा ... मूल्य १॥)

ग़बन ... मूल्य ३) सुन्दर जिल्द।

आज़ाद कथा—हास्यरस का अद्भुत ग्रन्थ। उर्दू के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'फ़िसाना आज़ाद' के चार भागों का हिन्दीरूपान्तर, उर्दू में इसके १६ एडिशन हो चुके हैं और चारों भाग का मूल्य १६) है। हिन्दी एडिशन केवल ४॥) में। प्रथम भाग का २॥), दूसरे का २)।

कहानियों के संग्रह

प्रेमतीर्थ ... १॥)

प्रेरणा ... १॥)

समरयात्रा ... १)

प्रेमप्रतिमा ... २)

नारीहृदय (श्रीमती शिवरानी देवी) ... ॥)

अन्य पुस्तकें

वृक्षविज्ञान—वृक्षों के फूल, पत्ते,

फल, जड़, छाल आदि क्या

क्या काम आते और उनसे

कौन कौन से रोग दूर होते हैं।

इसका सविधि वर्णन। १,०००

उत्तमोत्तम नुसखे भी इसमें हैं। मूल्य १॥)

मुरलीमाधुरी—सूरदास के मुरली-सम्बन्धी पदों का संग्रह टिप्पणियों और भूमिका सहित ॥)

सुघड़ बेटी ... ॥)

सुशीला कुमारी ... ॥)

अवतार ... ॥)

स्तरंग ... ॥)

पंच लोक ... ॥)

गरम तलवार ... १)

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

साहित्य-समीक्षा

(श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए०, एल-टी०)

इस पुस्तक में हिन्दी और उर्दू का विरोध, समालोचना, रामचरितमानस का महत्त्व, हिन्दी में नाटक, द्विजेन्द्रनाटकावली, हिन्दी में उपन्यास-साहित्य, सेवासदन, प्रेमाश्रम, तथा रंगभूमि आदि दस लेखों का संग्रह किया गया है। ये सभी लेख बहुत ही सारगर्भित और विद्वत्पूर्ण हैं, और इनके लिखने में पाश्चात्य लेखकों की आलोचनात्मक शैली का अनुसरण किया गया है। अन्त में छड़ी नामक एक कहानी भी दी गई है, जो बहुत ही सुन्दर और भावपूर्ण है। प्रत्येक साहित्य-प्रेमी को एक बार इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिए।

मूल्य ॥) बारह आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

चीनी के व्यवसाय में आपको घाटा नहीं हो सकता ।
 क्योंकि सरकार ने क़ानून बनाकर इस व्यवसाय को बाहरी
 आक्रमण से वर्षों के लिए सुरक्षित कर दिया है । यदि आप
 इस व्यवसाय में रुपया लगाना निश्चय करें तो शीघ्र ही

शीतलपुर शूगर वर्क्स, लिमिटेड

के हिस्से खरीदें । क्योंकि इसकी बुनियाद बहुत दृढ़ है जैसा कि
 आपको इसकी नियमावली से ज्ञात होगा । और इसके डाइरेक्टरों में

इंडियन प्रेस, लिमिटेड के सञ्चालक

श्रीयुत हरिकेशव घोष

जैसे व्यवसाय-कला में निपुण व्यक्ति हैं और वे ही इसके मैनेजिंग
 डाइरेक्टर हैं । प्रत्येक हिस्सा (१००) का है पर एक व्यक्ति को पाँच
 हिस्से से कम नहीं दिया जायगा । नियमावली के लिए पृष्ठ उलटिए ।

नियमावली

शीतलपुर शूगर वर्क्स, लिमिटेड

इंडियन कम्पनीज़ एक्ट (१९१३-१९२०) के आदेशानुसार संगठित

निर्धारित पूँजी १५,००,००० रु०

१५,००० साधारण हिस्सों में विभाजित—प्रत्येक १०० रु०

वितरित पूँजी— १०,००,००० रु०

डाइरेक्टरों ने ३,००,००० रु० के हिस्से ले लिये हैं। शेष ७००० हिस्से सार्वजनिक चन्दे के लिए खाली हैं जो नीचे लिखे अनुसार लिये जा सकते हैं।

आवेदनपत्र के साथ २५ रु० प्रति हिस्सा

हिस्सा लेने पर २५ रु० "

पहली किश्त—हिस्सा लेने के तीन मास बाद २५ रु० प्रति हिस्सा

दूसरी किश्त—हिस्सा लेने के ६ मास बाद २५ रु० "

डाइरेक्टर्स

१—श्रीयुत हेमचन्द्र मित्र, बी० एल०, एडवोकेट, छपरा (ज़िला, सारन)।

२—डाक्टर मेघनाथ साहा, डी० एस० सी०, एफ० आर० एस०, प्रोफेसर आफ़ फिज़िक्स, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी।

३—श्रीयुत एच० के० घोष, जेनरल मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद और कलकत्ता।

४—श्रीयुत त्रैलोक्यनाथ दत्त एम० एस० सी०, बी० एल०, एडवोकेट छपरा, (ज़िला, सारन)।

५—पण्डित जयगोविन्द पांडे, मचेंट और ज़मींदार, शीतलपुर (ज़िला, सारन)।

६—श्रीयुत ज्योतिषचन्द्र चटर्जी, एम० एस० सी०, मैनेजर साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेण्ट कम्पनी, लिमिटेड, इलाहाबाद।

७—श्रीयुत भूपेन्द्रनाथ विश्वास, मचेंट, अनाथनाथ-देव लेन, कलकत्ता।

८—श्रीयुत जनकप्रसाद दीक्षित, बी० एल०, प्लीडर, छपरा, (ज़िला, सारन)।

९—श्रीयुत जनक तिवारी, बी० एल०, प्लीडर, छपरा, (ज़िला, सारन)।

मैनेजिंग डाइरेक्टर्स

श्रीयुत एच० के० घोष, मैनेजिंग डाइरेक्टर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड।

और

श्रीयुत त्रैलोक्यनाथ दत्त, एम० एस० सी०, बी० एल०, छपरा।

बैंकर्स

इम्पीरियल बैंक आफ़ इण्डिया। इलाहाबाद बैंक, लिमिटेड।

रजिस्टर्ड आफिस

नं० ६३, धर्मतल्ला, कलकत्ता

लोकल आफिस

साहेबगंज, छपरा ।

नियमावली

कम्पनी के उद्देश्य—इस कम्पनी का निर्माण संघ के मेमोरेन्डम में उल्लिखित कार्यों के लिए और मुख्यरूप से चीनी बनाने, उसकी सफाई करने और सब प्रकार की चीनी बेचने, तैयार करने और ऐसे व्यवसाय से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य उत्पादक कार्यों के लिए हुआ है ।

चीनी का व्यवसाय सरकार ने कानून बनाकर कुछ वर्षों के लिए बाह्य आक्रमण से सुरक्षित कर दिया है । देश में बनी चीनी की बहुत बड़ी मांग है । हाल में बहु-संख्यक चीनी के कारखानों के खुलने पर भी भारतवर्ष में अभी १०० से अधिक कारखानों की आवश्यकता है । साधारण रूप से भारत में प्रतिवर्ष लगभग १० लाख टन सफेद चीनी विदेश से आती है । इस वर्ष भारतवर्ष में चीनी के जितने कारखाने चल रहे हैं उन सबको मिलावें तो भी भारतवर्ष की चीनी की वर्तमान उत्पत्ति ३ लाख टन से अधिक नहीं अनुमान की जाती । इससे यह स्पष्ट है कि अभी बहुत से कारखानों की यथेष्ट गुंजाइश है ।

फैक्टरी का स्थान—कम्पनी के सञ्चालकों ने फैक्टरी खड़ी करने के लिए शीतलपुर (बी० एन० डब्ल्यू रेलवे) में एक अत्यन्त अनुकूल स्थान निश्चित किया है । यह स्थान शीतलपुर स्टेशन के अत्यन्त निकट है । बिहार के डाइरेक्टर आफ इंडस्ट्रीज ने फैक्टरी खोलने के लिए इस स्थान को बहुत ही उपयुक्त बताया है । इसी स्थान पर पहले एक नील का कारखाना था । उसके खंडहर अब तक खड़े हैं । जहाँ यह फैक्टरी है वहाँ ईख की सर्वोत्तम उपज होती है । और इसके बीस मील के गिर्द कोई दूसरी फैक्टरी नहीं है । इस प्रकार इस प्रस्तावित मिल को किसी प्रकार की अस्वास्थ्यकर प्रतिद्वन्द्विता का सामना नहीं करना पड़ेगा । शीतलपुर गंगा से केवल ढाई मील के फासले पर है और पटना से रेल द्वारा केवल दो घंटे के रास्ते पर है । इस प्रकार माल के लाने, ले जाने में यहाँ रेल और स्टीमर दोनों की सुविधा है । इस स्थान के बगल से एक छोटा नाला

भी बहता है । पड़ोस में सस्ती मजदूरी भी यथेष्ट मात्रा में प्राप्य है ।

फैक्टरी की योजना—मैनेजिंग डाइरेक्टरों ने एक प्रसिद्ध फर्म को एक प्लैंट के लिए आर्डर दे दिया है । इस प्लैंट की शक्ति प्रतिदिन—जो बाईस घंटों का होगा—५०० से ६०० टन ईख कुचलने की होगी । उन्होंने शीतलपुर में पण्डित जयगोविन्द पांडे से ३४ बीघा भूमि खरीदने के लिए लिखा-पढ़ी कर ली है और फैक्टरी के निर्माण के लिए ३० लाख ईंटों का ठीका भी दे दिया है । ईंटें करीब करीब तैयार हैं । इससे फैक्टरी की इमारत के शीघ्र बनने में सहायता मिलेगी । प्लैंट जैसा कि उसके विक्रेता से तय हो चुका है १५ नवम्बर से कार्य करने के लिए तैयार हो जायगा । यह आशा की जाती है कि यह प्लैंट प्रतिदिन १२०० मन सफेद चीनी तैयार करेगा । कार्य करने के दिनों की औसत संख्या १५० मानी जाय तो भी एक वर्ष में १,८०,००० मन चीनी तैयार होगी । उत्पत्ति को प्रतिदिन १६०० मन तक बढ़ाने का भी प्रबन्ध कर लिया गया है । आशा की जाती है कि दूसरी फसल में यह उत्पत्ति होने लगेगी । मिल के साथ एक गुड़ साफ करनेवाला प्लैंट भी जोड़ा जायगा । इस प्रकार फैक्टरी साल में १ महीने कार्य कर सकेगी ।

ईख की प्राप्ति—जैसा कि कहा जा चुका है यह फैक्टरी ईख उत्पन्न करनेवाले प्रदेश के केन्द्र में बनाई जायगी । वहाँ यथेष्ट मात्रा में ईख फैक्टरी के द्वार पर ही मिल जायगी । अनुमान किया जाता है कि दस मील के गिर्द में ही उत्तम जाति की ईख २० लाख मन तक बड़ी आसानी से मिल जायगी । ईख की प्राप्ति में भी अस्वास्थ्यकर प्रतिद्वन्द्विता का सामना नहीं करना पड़ेगा ।

प्रबन्ध—इसका प्रबन्ध डाइरेक्टरों के एक पुष्ट बोर्ड के अधीन रहेगा जो समय समय पर कम्पनी के रजिस्टर्ड कार्यालय में या जहाँ उचित समझेंगे, मिलते रहेंगे ।

कम्पनी का कार्य दो मैनेजिंग डाइरेक्टरों की देखरेख में होगा । पहले टर्म के लिए श्रीयुत एच० के० घोष और त्रैलोक्यनाथ दत्त नियुक्त हुए हैं । पहले टर्म में मैनेजिंग डाइरेक्टरों को इन्कमटैक्स आदि निकाज देने पर कम्पनी के लाभ का ७½ प्रतिशत पारिश्रमिक मिलेगा, परन्तु यह किसी अवस्था में १२,००० रु० प्रति-

वर्ष से कम न होगा। श्रीयुत एच० के० घोष, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, जिसकी तमाम शाखाएँ उत्तर-भारत में हैं, के जेनरल मैनेजर हैं और उन्हें अनेक व्यवसाय-सम्बन्धी आयोजनों का सफल अनुभव है। श्रीयुत त्रैलोक्यनाथ दत्त चीनी के व्यवसाय से खूब परिचित हैं और स्थानीय व्यापार और चीनी-निर्माण-सम्बन्धी परिस्थितियों का यथेष्ट अनुभव रखते हैं।

लाभ की सम्भावना—जैसा कि कहा जा चुका है यह फैक्टरी प्रतिवर्ष एक लाख अस्सी हजार मन चीनी और लगभग साठ हजार मन शीरा तैयार करेगी। सब प्रकार का व्यय निकाल देने पर लागत का औसत ६॥ प्रतिमन होगा। जो प्रबन्ध हम लोगों ने सोचा है उसके अनुसार यह आशा की जाती है कि अभी इस व्यय में और भी कमी होगी। चीनी का बाज़ार भाव मिल के द्वार पर १॥ प्रतिमन अधिक से अधिक उचित कहा जा सकता है। इस प्रकार २॥ प्रतिमन के हिसाब से कुल लाभ साढ़े चार लाख अनुमान किया जाता है। अन्य समस्त अज्ञात कारणों के लिए समुचित स्थान छोड़ दें तो कम्पनी को ३ लाख से अधिक अर्थात् जो पूँजी इस व्यवसाय में लगाई जायगी उसके ३० प्रतिशत की आय होगी। वर्तमान समय में शीरा का भाव मँदा है, इसलिए यहाँ उसे नहीं जोड़ा गया है।

कम्पनी को पूर्ण तर्क के साथ इस बात की आशा है कि वह कार्य के प्रथम वर्ष में ही एक अच्छे बटवारे की घोषणा कर सकेगी।

डाइरेक्टर की योग्यता यह होगी कि उसके हिस्से १०,००० रु० से कम के नहीं हैं।

प्रत्येक डाइरेक्टर को कम्पनी के फंड से उसकी सेवाओं के लिए पुरस्कार-स्वरूप २५ या कम्पनी जेनरल मीटिंग में जो तय करेगी, प्रत्येक मीटिंग पर मिलेगा। यात्रा आदि का व्यय अलग से मिलेगा।

कम्पनी का आरम्भिक व्यय रजिस्ट्रेशन फीस, और अन्य सब मिलाकर पाँच हजार से अधिक न स्वीकृत दलालों या कनवेसरों के हस्ताक्षर से आवेदन-पत्रों के अनुसार जो हिस्से उठेंगे उन दो प्रतिशत दलाली या कमीशन दिया जायगा।

जहाँ कोई हिस्सा नहीं दिया जायगा वहाँ आ व्यय काटकर डिपॉजिट का सब रुपया लौटा जायगा।

पंडित जयगोविन्द पांडे ने फैक्टरी के लिए ३४ ज़मीन बेचना स्वीकार कर लिया है और उन्होंने बनाने के लिए ईंटों का भी प्रबन्ध करना स्वीकृत किया है।

श्रीयुत एच० के० घोष और श्रीयुत त्रैलोक्यनाथ जो मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं, के अतिरिक्त और डाइरेक्टर को कम्पनी की उन्नति में कोई दिलचस्पी न इस कार्य के लिए कोई धन न तो दिया न दिया जायगा।

कम-से-कम चन्दा जिस पर डाइरेक्टर अलाउमेंट कर सकते हैं ३ लाख रुपया नियत कर गया है।

हिस्सों के लिए आवेदन-पत्र कम्पनी के रजिस्ट्रार आफिस से लिया जा सकता है और डिपॉजिट के निम्नलिखित स्थानों में से कहीं भी भेजा जा सकता

(१) श्रीयुत एच० के० घोष, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद या १३ धर्मतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता।

(२) श्रीयुत त्रैलोक्यनाथ दत्त, साहेबगंज, छपरा

(३) इलाहाबाद बैंक लिमिटेड, इलाहाबाद कलकत्ता या अन्य शाखाएँ।

कम्पनी के एसोसियेशन का विवरण-पत्र नियमावली उसके रजिस्टर्ड आफिस कलकत्ता या स्थानीय आफिस छपरा में कार्य के समय में देखे जा सकते हैं।



卐 卐 महिलाओं को उपहार देने योग्य आठ पुस्तकें

दर्श महिला—इस पुस्तक में सीता, सावित्री, दमयन्ती, शैव्या और चिन्ता इन पाँच देवियों की जीवन-घटनाओं का सजीव वर्णन किया गया है। मूल्य २) दो रुपये।

सीता-धनवास—श्रीसीताजी के पावन चरित के सम्बन्ध में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बँगला में एक बहुत ही सुन्दर पुस्तक लिखी थी, उसी का यह अनुवाद है। इस पुस्तक की एक एक पंक्ति करुण-रस से ओतप्रोत है। मूल्य ॥=) दस आने।

डी दीदी—यह पुस्तक शरद बाबू के बँगला-उपन्यास का अनुवाद है। इसमें एक हिन्दू-विधवा की करुण-कथा का वर्णन है। सजिन्द पुस्तक का मूल्य १) एक रुपया।

भल्ली दीदी—मकली दीदी हेमाङ्गिनी ने अपनी जेठानी कादम्बिनी के सौतेले भाई के प्रति कितना स्नेह किया था, और सौतेली बहन के अत्याचारों से किस प्रकार उसकी रक्षा की थी, यही इस उपन्यास का विषय है। इसकी एक एक पंक्ति सरस तथा भावपूर्ण है। मूल्य केवल ॥=) बारह आने।

रानी—इस उपन्यास की नायिका ललिता ने खेल-खेल में शेखर को माला पहना दी थी,

और उसी दिन से उस अपना पति मान लिया, यद्यपि शेखर के धनवा पिता ललिता जैसी निर्धन पिता की कन्या का विवाह अपने पुत्र के साथ करने पर सहमत नहीं हुए। अन्त में शेखर की स्मृति में ही उसने अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया था। उपन्यास बहुत ही शिक्षाप्रद है। मूल्य केवल १) एक रुपया।

नव-विधान—पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करनेवाली महिलाओं की अपेक्षा पुरानी चाल की महिलायें घर-गृहस्थी का प्रबन्ध कैसी उत्तमता से कर सकती हैं, इसी बात का इस उपन्यास में दिग्दर्शन कराया गया है। हर एक गृहस्थ के घर में इसकी एक प्रति होनी आवश्यक है। मूल्य केवल १) एक रुपया।

शिशु-पालन—यह पुस्तक स्त्रियों के बड़े काम की है। इसमें प्रसूति-चर्या से लेकर बच्चों के पालन-पोषण के सम्बन्ध की सभी आवश्यक बातों पर प्रकाश डाला गया है। मूल्य १॥=) डेढ़ रुपया।

नीरोग कन्या—यह पुस्तक स्वास्थ्य-सुधार के सम्बन्ध में है। इसे पढ़ कर कन्याओं को तो अपना स्वास्थ्य सुधारने में सहायता मिलती ही है, साथ ही बड़ी और परिपक्व अवस्था की स्त्रियों के लिए भी यह लाभदायक है। मूल्य १) एक रुपया।



परिणत उदयशङ्कर भट्ट-द्वारा रचित

तत्त्वशिला

नामक ऐतिहासिक काव्य के सम्बन्ध में—

मन्त्री पञ्जाब टेक्स्ट-बुक कमिटी, लाहौर ने लिखा है—

महोदय,
आपने तत्त्वशिला काव्य लिख कर हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, उसके उपलक्ष्य में पारिश्रमिक स्वरूप ४५०) का चेक इस पत्र के साथ भेजा जा रहा है।

श्रीयुत कालिदास कपूर एम० ए० एल० टी० ने लिखा है—

“अभी तक हम तत्त्वशिला के ऐतिहासिक कङ्काल से ही परिचित थे। भट्टजी ने अपनी काव्य-शक्ति से इस कङ्काल में जीवन-मन्त्र फूँककर ‘स्वान्तःसुखाय’ तत्त्वशिला को षोडशी शृङ्गार किये हुए हमें दिखाया है। देश के प्राचीन गौरव की स्मृति पर ही आधुनिक राष्ट्र-मन्दिर निर्माण होगा, जो कवि इस स्मृति को हरा-भरा कर देता है वह साहित्य-सेवा ही नहीं, देश-सेवा भी करता है। अतः साहित्य और देश के नाते हम भट्टजी को प्रस्तुत कृति पर बधाई देते हैं। भट्टजी हिन्दी के उदीयमान कवि हैं।.....हिन्दी-साहित्य को आपसे बहुत कुछ आशा है।

श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टण्डन एम० ए० एल०-एल० बी० ने लिखा है—

“तत्त्वशिला का महत्त्व आज साधारण लोग बहुत कम जानते हैं। मुझे विश्वास है, इस काव्य के द्वारा भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति के इस प्रसिद्ध केन्द्र की ख्याति जनता में फैल जायगी।”

मेरठ कालेज के प्रोफेसर श्रीयुत धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री एम० ए०, एम० सी० एल० ने लिखा है—

“भारतीय गौरव का यह शानदार अध्याय न केवल स्कूल के ऐतिहासिक विद्यार्थियों के अध्ययन का विषय होना चाहिए, प्रत्युत उसके अज्ञ और तेज से हमारे हृदय चमत्कृत और गर्वित हो जाने चाहिए। इस उद्देश्य से आपकी यह रचना, जिसे हिन्दी खड़ी बोली का ऐतिहासिक (Epic) महाकाव्य कहना चाहिए, बहुत सहायक होगी। आपका काव्य ‘ओजस’ गुण से ओत-प्रोत है जो कि ऐतिहासिक काव्य का मुख्य गुण होना चाहिए। मैं तत्त्वशिला महाकाव्य का अभिनन्दन करता हूँ।”

अँगरेजी के सुप्रसिद्ध पत्र ट्रिव्यून ने लिखा है—

“We are sure, the work will be hailed by the Hindi world as a welcome addition to modern Hindi poetry.”

सजिल्द पुस्तक का मूल्य २।) सवा दो रुपये।

मैनेजर (बुकडिपो),

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग



पूर्व-मध्यकालीन भारत

लेखक—महाराजकुमार श्रीरघुवीरसिंह

(बी० ए०, एल-एल० बी०)

यह मध्यकालीन भारत का इतिहास है । इसमें सन् १२०६ से लेकर सन् १५२६ तक के भारत के पठान मुसलमान बादशाहों का इतिहास विस्तार के साथ लिखा गया है । सन् १२०६ में दिल्ली में पहले-पहल मुसलमानी राज्य की स्थापना हुई थी । और मुगलों के भारत में आने तक जिन मुसलमान घरानों ने दिल्ली से भारत के अधिकांश भाग पर राज्य किया है, उनका व्योरेवार वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है । अभी तक हिन्दी में इस तरह का क्रमबद्ध इतिहास भारत के किसी भी युग का नहीं लिखा गया । परन्तु इस एक पुस्तक से पूर्व-मध्यकालीन भारत के इतिहास के एक युग की कमी की पूर्ति होती है । इसमें तत्कालीन मुसलमान बादशाहों का इतिहास ही नहीं वर्णित है, किन्तु उसके साथ साथ देश की तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा आर्थिक स्थितियों की भी बहुत ही अच्छे ढङ्ग से विवेचना की गई है । हिन्दी के प्रेमियों को इस ग्रन्थ का संग्रह कर अपने देश के तत्कालीन इतिहास का परिचय प्राप्त करना चाहिए ।

आचार्य द्विवेदीजी, डाक्टर बेनीप्रसाद एम० ए०, पी-एच० डी०, रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा आदि अनेक विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से ग्रन्थ की प्रशंसा की है । यह ग्रन्थ इंडियन प्रेस द्वारा प्रकाशित हो गया है । मूल्य लेखक के आज्ञानुसार लागतमात्र ३) ६० है ।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग



मरिा-माला

रवि बाबू का कहना है कि प्रभात बाबू कहानी-लेखन-कला के सव्यसाची अर्जुन हैं। उनकी कहानियाँ सूर्य-किरणों के समान छोटी, प्रभावशालिनी और लक्ष्य पर पहुँचनेवाली होती हैं। मणिमाला में उन्हीं की छः कहानियों का सङ्कलन है। कहानियाँ एक से एक सरस, रोचक और निराली हैं। मूल्य केवल २॥) रुपये।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

